हिन्दी के महाकाव्यों में चित्रित
भगवान महावीर

डॉ. सुषमा गुणवन्त रोटे

भारतीय ज्ञानपीठ

प्राक्कथन

एम.ए. तथा एम. फिल्. की उपाधि के पाठ्यक्रमों में रामचरित, कृष्णचरित सम्बन्धी आधुनिक महाकाव्यों का अध्ययन करने का अवसर कई वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था। राम और कृष्ण भारतीय परम्परा में प्राचीन पुराण पुरुष होते हुए भी आधुनिक कवियों ने युगीन सन्दर्भ में उनके चरित्र में आधुनिकता का बोध हमें कराया है। हमारी पारिवारिक संस्कृति के अनुसार भगवान महावीर के चरित्र की पौराणिक, अतिलौकिक भगवान का स्वरूप मेरे मानस-पटल पर एक परम्परागत प्रतिमा के रूप में साकार हुआ था। फलस्वरूप मैं उनकी पूजा, भक्ति भी करती रही हूँ। फिर भी अन्तर्मन यह कहता था कि मैं महावीर के चरित्र के मानवीय स्वरूप की तलाश करूँ।

भगवान महावीर आज ऐतिहासिक चरित्र के रूप में सर्वमान्य हो चुके हैं, फिर भी उनके चरित्र पर युग-युगान्तर में अलौकिकता, पौराणिकता, ईश्वरीय भगवत्ता एवं दिव्यता के आवरण युगीन सन्दर्भ में डाले गये हैं। उन्हें हटाकर आज के सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में उनके चरित्र की विभिन्न सन्दर्भों में तलाश करने की जिज्ञासा मेरे मन में जाग उठी। महान् व्यक्तित्व के जीवन पर जैसे अतीत आवरण डालता जाता है, वैसे-वैसे उनके भक्त भी उनके चरित्र के साथ दैवी अलौकिक घटनाओं को जोड़ते हैं। वस्तुतः भगवान महावीर उत्कट यथार्थवादी थे। महावीर की यथार्थवादी प्रतिमा पौराणिक युग में चमत्कारों, अतिशयोक्तियों और दैवी घटनाओं से लद गयी। मध्ययुग में महावीर की एक तपस्यामूलक छवि उपस्थापित हुई। लोकमानस ने उन्हें अतिवादी माना। आधुनिक युग में भगवान महावीर का मानवीय रूप में अंकन करने का प्रयास हो रहा है। भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण का प्रस्तुत अनुशीलन इसी दिशा में एक प्रयास है।

साहित्य के इतिहास के ग्रन्थों में अनूप शर्मा कृत 'वर्द्धमान' महाकाव्य का उल्लेख मिलता है। आधुनिक महाकाव्य की परम्परा का आज तक का अध्ययन करने पर पता चलता है कि महावीर चरित विषयक दस काव्यग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं। भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण के अनुशीलन के लिए इनमें से छह महाकाव्यों का प्रतिनिधि काव्यों के रूप में चयन किया है। चरित्र के अनुशीलन के पूर्व मन में प्रमुखतः तीन प्रश्नों की जिज्ञासा रही है।

1. महापुरुष भगवान महावीर की प्रामाणिक एवं विश्वसनीय जीवनी को ज्ञात करने के लिए कौन से स्रोत उपलब्ध हैं?

2. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण पर आधुनिकता का प्रभाव कहाँ तक हुआ है?

3. भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता क्या है?

मूलतः इन्हीं प्रश्नों ने मुझे शोध-कार्य के लिए प्रेरित किया था। अनुसन्धान सम्पन्न करने के बाद मैंने इन प्रश्नों के उत्तर उपसंहार में दिये हैं। जिज्ञासा की तृप्ति के लिए मैंने देश के विभिन्न विद्वानों एवं जैनाचार्यों से साक्षात्कार किया। दिल्ली स्थित राष्ट्रसन्त, आचार्य विद्यानन्द मुनि से महावीर चरित्र पर अनुसन्धान करने की प्रेरणा मुझे मिली और आशीर्वाद भी प्राप्त हुए। 'अनुत्तर योगी' उपन्यास के कलाकार वीरेन्द्रकुमार जैन, मुम्बई से मुझे इस सन्दर्भ में उपयुक्त सामग्री प्राप्त हुई और उन्होंने मुझे इस अनुसन्धान के लिए प्रोत्साहित भी किया। इन्दौर के निवासी डॉ. नेमिचन्द्र जैन से मैंने साक्षात्कार किया। उन्होंने मेरे शोध-विषय को सराहा और आधार ग्रन्थ (आलोच्य महाकाव्य) उपलब्ध कराने में मार्गदर्शन किया।

आलोच्य महाकाव्य के ग्रन्थ मुझे उज्जैन के एक जिनमन्दिर के ग्रन्थ भण्डार से उपलब्ध हुए। भगवान महावीर की प्रामाणिक जीवनी के वृत्तों को संकलित करने के लिए मैंने उत्तर भारत के मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश एवं बिहार के कई स्थलों की शोध-यात्रा की। भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली के निकट (बसाढ़गाँव) क्षत्रिय कुण्डग्राम, उनकी तपोभूमि राजगृही, उनका समवसरणस्थल विपुलाचल एवं उनकी निर्वाणभूमि पावापुरी आदि तीर्थक्षेत्रों में जाकर छायाचित्र, चरित्र विषयक सामग्री, जहाँ जो भी प्राप्त हुई, उनका संकलन मैंने किया। दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति, कोल्हापुर के भट्टारक लक्ष्मीसेन तथा सोलापुर के जैन साहित्य के अन्वेषक डॉ. भगवानदास तिवारी आदि विद्वानों ने महावीरचरित्र विषयक वस्तुपरक दृष्टि से अध्ययन करने में सहायता प्रदान की। कोल्हापुर के जैनदर्शन के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. विलास संगवे की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रस्तुत विषय के चयन में एवं अनुशीलन में सदैव मुझे प्राप्त हुआ है। शिवाजी विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष, राष्ट्रपुरुष छत्रपति शिवाजी-चरित्र के गम्भीर अन्वेषक एवं प्रखर प्रवक्ता डॉ. वसन्तराव मोरे जी से साक्षात्कार करके मैंने पी-एच.डी. उपाधि हेतु भगवान महावीर चरित्र के अनुशीलन करने की अपनी मनीषा व्यक्त की। उन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के शीर्षक के निर्धारण में एवं अनुशीलन की दिशा-दिग्दर्शन में मेरी अमूल्य सहायता की है।

भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण पर मेरी जानकारी के अनुसार अभी तक किसी भी विश्वविद्यालय में हिन्दी में अनुसन्धान का कार्य नहीं हुआ है। भगवान महावीर विषयक प्रबन्धकाव्यों के आलोचनात्मक अध्ययन के प्रयास अवश्य हुए हैं।

'हिन्दी के महावीर प्रबन्ध-काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन' नामक शोध-प्रबन्ध डॉ. दिव्यगुणाश्री का 1998 ई. में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ था। हिन्दी में भगवान महावीर के चरित्र विषयक आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की विशिष्ट परम्परा का यह अनुशीलन प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। आधुनिक हिन्दी में प्रकाशित भगवान महावीर चरित्र सम्बन्धी छह महाकाव्यों का चयन मैंने मूल आधार ग्रन्थों के रूप में किया है। उन आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण का अनुशीलन इस पुस्तक में किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक मूल में एक शोध-प्रबन्ध के रूप में लिखी गयी थी। उसकी सार सामग्री का यह प्रकाशन है। प्रबन्ध लेखन की कालावधि में विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं ग्रन्थालयों, विशेषरूप से उज्जैन के जैन ग्रन्थभण्डार एवं इन्दौर के जैन शोध संस्थान एवं पार्श्वनाथ शोध-संस्थान, वाराणसी के अधिकारियों के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। मैं उन ऋषियों, महर्षियों एवं विद्वानों के प्रति अपनी आदरांजलि समर्पित करती हूँ, जिनके विचारों का मैंने इस प्रबन्ध में निःसंकोच भाव से उपयोग किया है।

मैं परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, खास कर श्वसुर ध. श्री. गणपतरावजी एवं सौ. लीलावती, ध. श्री. नेमिनाथजी एवं सौ. पद्मावती तथा आदरणीया श्रीमती रत्नाबाई, जिन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ लेखन में मुझे सदैव प्रोत्साहन दिया है। मेरे पति गुणवन्तजी एवं मेरे पिताजी साँगली के प्राचार्य नेमिनाथ गुण्डेजी एवं माताजी देवयानी तथा शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के साहू शोध केन्द्र के मानद संचालक डॉ. विलास संगवेजी की मैं ऋणी रहूँगी, जिन्होंने शोधकार्य में निरन्तर प्रेरणा देकर मुझे आत्मबल प्रदान किया है। मेरी बेटी पूजा एवं बेटे पारस ने प्रबन्ध की लेखन-कालावधि में मुझे जो सहयोग दिया है, उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगी। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों से प्राप्त सहयोग के लिए मैं अपने सभी हितैषियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने में जो आत्मीयता और सहृदयता भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्धकों ने दिखायी, उसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

यह एक संयोग तथा परम सन्तोष की बात रही है कि इस पुस्तक का प्रकाशन भगवान महावीर की छब्बीसवीं जन्मशताब्दी जयन्ती-समारोह के वर्ष के अवसर पर हो रहा है। मुझे आशा है कि प्रस्तुत अनुशीलन स्वान्तःसुखाय होते हुए भी बहुजनहिताय सहायक होगा।

—सुषमा गुणवन्त रोटे

प्रथम अध्याय

भगवान महावीर की जीवनी के स्रोत

तीर्थंकर-परम्परा

जैनधर्म में मान्य तीर्थंकरों का अस्तित्व वैदिक काल के पूर्व भी विद्यमान था। इतिहास इस परम्परा के मूल तक अभी तक नहीं पहुँच सका है। उपलब्ध पुरातत्त्व सम्बन्धी तथ्यों के निष्पक्ष विश्लेषण से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि तीर्थंकरों की परम्परा अनादिकालीन है। वैदिक वाङ्मय में वात-रशना मुनियों, केशीमुनि और व्रात्य क्षत्रियों के उल्लेख आये हैं, जिनसे स्पष्ट है कि पुरुषार्थ पर विश्वास रखनेवाले धर्म के प्रगतिशील व्याख्याता तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल में भी विद्यमान थे। मोहन-जो-दड़ो के खँडहरों से प्राप्त योगीश्वर ऋषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा इसका जीवन्त प्रमाण है। यहाँ से उपलब्ध पुरातत्त्वसम्बन्धी सामग्री भी तीर्थंकर-परम्परा की पुष्टि करती है। आचार्य विद्यानन्दजी के अनुसार वैदिक 'पद्मपुराण' में तीर्थंकर का उल्लेख प्राप्त है। कहा है—

> "अस्मिन्वै भारते वर्षे, जन्म वै श्रावके कुले।
> तपसा युक्तमात्मानं केशोत्पाटन पूर्वकम् ॥
> तीर्थंकराश्चतुर्विंशत्तथातैस्तु पुरस्कृतम्।
> छायाकृतं फणीन्द्रेण ध्यानमात्र प्रदेशिकम् ॥"[1]

जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता है, वह तीर्थंकर कहलाता है। 'तीर्थ' का अभिधागत अर्थ घाट, सेतु या गुरु है और लाक्षणिक अर्थ धर्म है। श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघ को भी 'तीर्थ' कहा गया है। इस तीर्थ की जो स्थापना करते हैं उन विशिष्ट व्यक्तियों को तीर्थंकर कहते हैं। भारतवर्ष में चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए। उन्होंने केशलुंचनपूर्वक निर्विकल्प समाधि में लीन रहकर तपस्या कर निर्ग्रन्थ पद को पुरस्कृत किया था।

चौबीस तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं—

1. ऋषभनाथ, 2. अजितनाथ, 3. सम्भवनाथ,

1. विद्यानन्दमुनि : तीर्थंकर वर्द्धमान, पृ. 13

4. अभिनन्दननाथ	5. सुमतिनाथ	6. पद्मप्रभनाथ
7. सुपार्श्वनाथ	8. चन्द्रप्रभनाथ	9. पुष्पदन्तनाथ
10. शीतलनाथ	11. श्रेयांसनाथ	12. वासुपूज्यनाथ
13. विमलनाथ	14. अनन्तनाथ	15. धर्मनाथ
16. शान्तिनाथ	17. कुन्थुनाथ	18. अरहनाथ
19. मल्लिनाथ	20. मुनिसुव्रतनाथ	21. नमिनाथ
22. नेमिनाथ	23. पार्श्वनाथ	24. महावीर (वर्द्धमान)

जैन इतिहास में त्रेसठ शलाका पुरुषों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। इनमें से 24 तीर्थंकर ऐसे शलाका पुरुष हैं, जिन्होंने मानव सभ्यता के उस काल में समाज को एक क्रमबद्ध रूप देने का प्रयास किया।

चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ, इक्कीसवें नमिनाथ, बाईसवें नेमिनाथ, तेईसवें पार्श्वनाथ तथा चौबीसवें भगवान तीर्थंकर महावीर पुराण और इतिहास की पहुँच में हैं। शेष तीर्थंकरों के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं। भगवान वृषभनाथ प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख जैन पुराणों के अतिरिक्त, ऋग्वेद, श्रीमद्भागवत, शिवपुराण इत्यादि में मिलता है। मोहन-जो-दड़ो के खँडहरों से प्राप्त योगीश्वर वृषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा उसकी प्रागैतिहासिकता को सिद्ध करती है। जैनमत में आत्मविद्या के प्रथम पुरस्कर्ता प्रवर्तक भगवान वृषभदेव माने गये हैं। भरतक्षेत्र के कालचक्र में वे प्रथम केवली, प्रथम जिन, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे। गृहस्थों के लिए अणुव्रतों का तथा साधुओं के लिए महाव्रतों के धर्मोपदेश की वह विमल स्रोतस्विनी अतिदीर्घ मार्ग को पार करती हुई भगवान महावीर के समय तक प्रवाहित होती आयी है। महावीर ने अनेकान्त द्वारा जैनधर्म को युगानुकूल रूप दिया। 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर और प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव के बीच का समय असंख्यात वर्षों का है। तीर्थंकर नेमिनाथ का काल ई. पू. 1000 के लगभग माना जाता है। भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण काल ई. पू. 777 है। ई. पू. 599 में भगवान महावीर का जन्म हुआ था। भगवान महावीर जैनधर्म के तीर्थप्रवर्तक कहे गये हैं। अतः यह सुविदित है कि जैन तीर्थंकरों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भगवान महावीर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे।

आधुनिक हिन्दी के महाकाव्यों में भगवान महावीर की जीवनी

आधुनिक हिन्दी के महावीर चरित महाकाव्यों में कवियों ने भगवान महावीर की जीवनी को सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर ऐतिहासिक महापुरुष थे। वे जैनधर्म के प्रवर्तक थे। हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल में जो महावीर चरित्र पर महाकाव्य लिखे गये, उनका मूल आधार प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं पुरानी प्राचीन हिन्दी के जैन साहित्य एवं महावीर पुराण ही रहे हैं। आधुनिक

हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर की जीवनी पौराणिक, ऐतिहासिक एवं रोमाण्टिक शैलियों में प्रस्तुत की गयी है। इन महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर का जीवनवृत्त कहाँ तक प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक सत्यता को लेकर चित्रित हुआ है, इस तथ्य के अनुशीलन के लिए भगवान महावीर की जीवनी के विविध स्रोतों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

भगवान महावीर की जीवनी के विविध स्रोत

ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान महावीर की वास्तविक एवं प्रामाणिक जीवनी के अध्ययन की सामग्री विविध तरह की हैं। प्राचीन शिलालेख, भगवान महावीर की प्राचीनतम मूर्तियाँ, बौद्ध-त्रिपिटक ग्रन्थ, महावीर समकालीन ऐतिहासिक पुरुष, जैन साहित्य-आगम-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश-प्राचीन हिन्दी साहित्य आदि में महावीर-जीवन-चरित्र विषयक सामग्री प्राप्त होती है। अतः उपर्युक्त स्रोतों का विवेचन क्रमशः संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

अभिलेखों में भगवान महावीर

भगवान महावीर की जीवनी के कुछ निर्देश जैन अभिलेखों में मिलते हैं। डॉ. कस्तूरचन्द जैन 'सुमन' के शब्दों में—"जैन अभिलेख दो तरह से उत्कीर्ण मिलते हैं, पाषाण पर और धातु-फलकों पर। पाषाण पर मिलनेवाले अभिलेख प्रतिमाओं के आसन पर, प्रतिमाओं के पृष्ठभाग पर, तीर्थंकर एवं आचार्यों के चरण-चिह्नों पर, स्तम्भ, गुफा, मानस्तम्भ, मन्दिर की वेदिका, चौकोर शिलाफलक, ध्वजस्तम्भ इत्यादि पर उत्कीर्ण हैं। धातुफलक-ताम्रपट्ट, पीतल एवं गिलट धातु से निर्मित प्रतिमाओं, मेरु, यन्त्रलेख, सिद्ध प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण हैं। ये अभिलेख सामाजिक आधार पर राजनीतिक अभिलेख एवं सांस्कृतिक अभिलेख दो भागों में विभाजित हैं।"[1]

ये अभिलेख भगवान महावीर के जीवनवृत्त के कुछ निर्देशों को जानने, समझने के लिए प्रामाणिक स्रोत हैं। जैनधर्म के तीर्थंकरों में भगवान महावीर ही ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनकी ऐतिहासिकता निर्विवाद रूप से स्वीकार की गयी है। सामान्यतः किसी व्यक्तित्व की ऐतिहासिकता का निश्चय करने के लिए अभिलेखीय और साहित्यिक साक्ष्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत में अभी तक पढ़े जा सके जो भी प्राचीनतम अभिलेख उपलब्ध हुए हैं वे मौर्यकाल के हैं। डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं—

"मौर्यकालीन मथुरा के अभिलेखों में तीर्थंकर, भगवान शब्द का प्रयोग नहीं है, अपितु उसके स्थान पर 'अर्हत्' शब्द का प्रयोग है, यथा अर्हत् वर्द्धमान, अर्हत् पार्श्व आदि। मथुरा में ईसा की प्रथम शताब्दी की उपलब्ध प्रतिमाओं में सर्वाधिक प्रतिमाएँ

1. शोधादर्श, अंक 27, पृ. 268

वर्द्धमान की हैं। उसके पश्चात् ऋषभ, पार्श्व और अरिष्टनेमि की प्रतिमाओं का क्रम लगता है। उस काल तक ये चार तीर्थंकर प्रमुख रूप से मान्य थे और 'कल्पसूत्र' में इन्हीं के सम्बन्ध में साहित्यिक विवरण प्राप्त हैं। महावीर के सम्बन्ध में एक अभिलेख उनके निर्वाण के 84 वर्ष पश्चात् का बडली, राजस्थान से प्राप्त है।"[1] भगवान महावीर विषयक यह अभिलेख अतिप्राचीन और सर्वप्रथम है।

विद्यानन्द मुनि को एक अभिलेख सेठ भागचन्द सोनी के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। इस सन्दर्भ में मुनिजी का कथन है—" 'मियाण' नामक ग्राम में, जो अजमेर से 32 मील दूर है, पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (अजमेर के पुरातत्त्वान्वेषी) ने एक किसान से पत्थर प्राप्त किया, जिस पर वह तम्बाकू कूटा करता था। पत्थर पर अंकित कुछ अक्षर थे, जिन्हें उन्होंने पढ़ा, अक्षर प्राचीन लिपि में थे, वे अक्षर थे—

"विरय भगवताय चतुरसीतिवस काये सालामालानियरंनि विठ माज्झमिके"...।

अर्थात् महावीर भगवान से 84 वर्ष पीछे शालामालिनी नाम के राजा ने मज्झमिका नामक नगरी में, जो कि पहले मेवाड़ की राजधानी थी, किसी बात की स्मृति के लिए यह लेख लिखवाया था। यह शिलालेख वीर निर्वाण के 84 वर्ष बाद लिखाया गया है।"[2] इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पहले से ही वीर निर्वाण संवत् प्रचलित था और लेखादि में उसका उपयोग किया जाता था। उक्त शिलालेख अजमेर म्यूजियम में सुरक्षित है।

शिलालेखों में भगवान महावीर

पाषाण-शिलाओं-मूर्तियों में महावीर-चरित्र विपुल मात्रा में प्राप्त होता है। "खण्डगिरि, उदयगिरि के हाथीगुम्फा वाले शिलालेख विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। बडली (राजस्थान) से प्राप्त महावीर विषयक शिलालेख अतिप्राचीन है जिसे काशीप्रसाद जायसवाल ने 374 ई. पू. का माना है।"[3] महावीर का प्रथम उपदेश विपुल पर्वत पर हुआ था। विपुल पर्वत पर उकेरा हुआ शिलालेख पूर्ण तो नहीं है, किन्तु उसका निम्न भाग शेष है जो श्रेणिक से सम्बन्ध रखता है, जिस पर स्पष्ट लिखा है—"पर्वतो विपुल-राजा श्रेणिक" अतः यह स्पष्ट है कि यह उल्लेख राजा श्रेणिक का महावीर के समवसरण में जाने के सम्बन्ध में है। कंकालीटीला मथुरा से महावीर विषयक अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं उनमें स्तुतियाँ वर्णित हैं।...नमो अरहतो वर्द्धमानस।

"दानसाले के (1108 ई.) चालुक्य सामन्त महामण्डलेश्वर सान्तारदेव, जो भगवान पार्श्व के वंश में जन्मे थे, उनके शिलालेख में महावीर के तीर्थ और गौतम

1. डॉ. सागरमल जैन : अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा, पृ. 1,2
2. विद्यानन्द मुनि : तीर्थंकर वर्द्धमान, पृ. 22
3. जर्नल ऑफ़ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भा. 16 (1930), पृ. 67, 68

गणधरादि का उल्लेख निम्न रूप में है—वर्द्धमानस्वामिगल तीर्थवर्ति से गौतमर्गणधर रागं—(पूर्व, पृष्ठ 369-370)"[1]

"भीनमाल में 1277 ई. का एक स्तम्भ लेख जयकूप झील के उत्तरी किनारे पर है। इसमें महावीर के श्रीमाल नगर में आने का उल्लेख है। इस लेख को कायस्थों के नैगमकुल के वाहिका राजाध्यक्ष श्री सुभट आदि ने महावीर की वार्षिक पूजा व रथयात्रा के प्रसंग में उत्कीर्ण कराया था।"[2] इस प्रकार भगवान महावीर की ऐतिहासिकता एवं उसके चरित के प्रामाणिक अध्ययन में शिलालेखों से सहायता प्राप्त होती है।

मूर्तिलेखों में भगवान महावीर

भारतीय संस्कृति में मूर्ति को कलाकृति के रूप में नहीं, बल्कि देवता के रूप में मान्यता प्राप्त रही है। 'प्रतीक' ऐतिहासिक अन्वेषण में भी सहायक हैं। प्राचीन मूर्तियाँ और उनके अवशेष प्रमाणित करते हैं कि मांगलिक प्रतीकों की परम्परा जैन, वैदिक और बौद्ध धर्म में प्राचीन काल से रही है।

"जैन आम्नाय के अनुसार जैनदर्शन में मूर्तिपूजा का तात्पर्य उस व्यक्तिपूजा से नहीं, जो सामान्य अर्थ में प्रचलित है, बल्कि किसी भी मुक्त आत्मा की उस गुणराशि की पूजा से है, जिसका तीर्थंकर-मूर्ति की पूजा के रूप में कोई पूजक अनुस्मरण करता है।"[3] भगवान तीर्थंकर की मूर्ति-पाषाणप्रतिमा अपने अतीत का अस्तित्व सुरक्षित रखती है। भगवान महावीर की प्रतिमा-मूर्ति देखने से सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का भाव झलकने लगता है। चरित ही स्वयं उनकी मूर्तियों से प्रस्फुटित होता है।

डॉ. कुमुदगिरि 'जैन महापुराण : कलापरक अध्ययन' शोध प्रबन्ध में लिखती हैं—"सर्वप्रथम मथुरा में कुषाण काल में महावीर की स्वतन्त्र मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जिनमें किसी चिह्न या लांछन के स्थान पर पीठिका लेखों में दिये गये 'वर्द्धमान' और 'महावीर' के नामों के आधार पर तीर्थंकर की पहचान की गयी। महावीर के सिंह लांछन का अंकन लगभग छठी शती ई. में प्रारम्भ हुआ, जिसका प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण वाराणसी से प्राप्त और भारत कलाभवन वाराणसी (क्र. 161) में सुरक्षित है। महावीर के यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका हैं। महावीर की मूर्तियों में लगभग नौवीं शती ई. से यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ, जिनके सर्वाधिक उदाहरण उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश स्थित मथुरा, देवगढ़, ग्यारसपुर एवं खजुराहो से मिले हैं।"[4] उक्त कथन से महावीर के जीवनवृत्त के प्राचीन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

---

1. अहिंसा वाणी, अप्रैल-मई 1956, पृ. 110.
2. द गजेटियर ऑफ़ द बम्बई प्रेसीडेन्सी भाग 1, खण्ड 1, पृ. 480.
3. पवनकुमार जैन : जैन कला में प्रतीक, पृ. 51.
4. डॉ. कुमुदगिरि : जैन महापुराण : कलापरक अध्ययन, पृ. 106.

"कंकाली टीले से महावीर की एक अति सुन्दर व प्राचीनतम मूर्ति सम्भवतः 53 ई. पू. की मिली है। दिल्ली में संग्रह क्र. 48-4/3 महावीर प्रतिमा भी अनूठी है।"[1]

"मथुरा संग्रहालय में क्र. 2126 की महावीर प्रतिमा नौ इंच ऊँची एक पीठिका पर सुशोभित है। इसके पादपीठ में खुदे हुए अधूरे लेख में 'वर्द्धमान' नाम स्पष्ट है, किन्तु समय निश्चित नहीं हो सका है।"[2]

"कुम्भरिया के महावीर और शान्तिनाथ मन्दिरों में (11वीं शती ई.) और कल्पसूत्र के चित्रों में महावीर के पंचकल्याणकों तथा पूर्वभवों एवं तपस्या के समय शूलपाणि यक्ष, संगमदेव आदि के उपसर्गों, चन्दनबाला से महावीर के प्रथम भिक्षा ग्रहण के कथा-प्रसंग दिखाये गये हैं। तथा एलोरा में महावीर की लगभग 12 मूर्तियाँ हैं, जिनमें से 6 मूर्तियाँ गुफा सं. 30, 4 गुफा सं. 32 और दो मूर्तियाँ गुफा सं. 33 में हैं।"[3] विद्यानन्द मुनि का कथन है—"सेनापतिचामुण्डरायकृत 'वर्द्धमान पुराणम्' (कन्नडभाषा) के पृष्ठ 291 पर एक चित्र है। प्रस्तुत चित्र यमुना, मथुरा से प्राप्त 8 इंची मूर्ति की शिलापट्टिका पर उत्कीर्ण है। यह मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय, संग्रह सं. 1115 (हरीनाई गणेश) की कुषाणकालीन प्रतिमा का है। इस चित्र में क्रीडारत राजकुमार हैं—वर्द्धमान, चलधर, काकधर, पक्षधर, बकरे जैसे मुखवाला संगमदेव जो वर्द्धमान की निर्भयता से प्रभावित होकर उन्हें कन्धे पर बैठाये नृत्य-विभोर है।"[4] इन उद्धरणों से भगवान महावीर की ऐतिहासिकता एवं जीवनी के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ता है।

बौद्ध-'त्रिपिटक' में भगवान महावीर

जैन आगम ग्रन्थों में गौतम बुद्ध के कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलते। किन्तु बौद्ध 'त्रिपिटक' में निगण्ठ नातपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नाम से महावीर और उनके उपदेश आदि के सम्बन्ध में अनेक संकेत पाये जाते हैं। "इनका पता लगभग सौ वर्ष पूर्व तब चला जब लन्दन की 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' तथा 'सेक्रेड बुक्स ऑफ़ दि ईस्ट' नामक ग्रन्थमालाओं में बौद्ध एवं जैन आगम ग्रन्थों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। डॉ. हर्मन याकोबी ने आचारांग, कल्पसूत्र, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन सूत्र का अनुवाद किया (से.बु.क्र. 22 व 45) और उनकी प्रस्तावना में पालि साहित्य के उन उल्लेखों की ओर ध्यान आकृष्ट किया, जिनमें निगण्ठ नातपुत्त के उल्लेख आये हैं।"[5]

---

1. महावीर जयन्ती स्मारिका, राजस्थान जैन सभा, जयपुर, 1963, पृ. 21.
2. नवनीत पत्रिका, जून 1973, पृ. 78.
3. कुमुदगिरि : जैन महापुराण : कलापरक अध्ययन, पृ. 106.
4. विद्यानन्द मुनि : तीर्थंकर वर्द्धमान, पृ. 37.
5. डॉ. हीरालाल जैन : महावीर : युग और जीवन दर्शन, पृ. 42.

मुनिनगराज ने 'आगम और त्रिपिटक' : एक अनुशीलन शीर्षक ग्रन्थ (कलकत्ता, 1969) में छोटे-बड़े ऐसे 42 पालि ग्रन्थों के उद्धरणों का संकलन किया है, जिनसे यह सिद्ध होता है कि दोनों महापुरुष समकालीन थे। उन्होंने पूरी छान-बीन के साथ वीर निर्वाण काल ई. पू. 527 प्रमाणित किया है। बौद्ध साहित्य में प्रयुक्त महावीर विषयक प्रसंग तीन दृष्टियों से चित्रित हैं—चर्चा प्रसंग, घटना प्रसंग, उल्लेख प्रसंग। डॉ. शोभनाथ पाठक लिखते हैं—

"भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध समकालीन थे। तत्कालीन समाज को सँवारने की दृष्टि से दोनों विभूतियों द्वारा क्रमशः अर्द्धमागधी (प्राकृत) व पालि भाषा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य व पंचशील आदि की गरिमा को समझाया।"[1]

इस प्रकार उनके शिष्यों ने उसे सूत्रबद्ध (आगम और त्रिपिटक) करके उनकी वाणी को स्थायित्व प्रदान किया है। डॉ. सागरमल जैन 'ऋषिभाषित : एक अध्ययन' में महावीर की ऐतिहासिकता पर विवेचन करते हुए लिखते हैं—"मेरी यह मान्यता है कि ऋषिभाषित के वद्धमाण और थेर गाथा के वद्धमाण एक ही व्यक्ति हैं। साथ ही पालि त्रिपिटक के 'निग्गण्ठ नातपुत्त' और जैन परम्परा के वर्द्धमान महावीर भी ऋषिभाषित और थेर गाथा के वर्द्धमान ही हैं। इस आधार पर वर्द्धमान की ऐतिहासिकता भी सुस्पष्ट है।"[2] बौद्धग्रन्थों में महावीर को 'णाठपुत्त', 'निगण्ठ नातपुत्त' कहा गया है, महावीर के माता-पिता ज्ञातृकुल के थे, इसीलिए इन्हें 'ज्ञातृपुत्र' कहा गया। 'ज्ञातृपुत्र' संस्कृत का, 'णाठपुत्त' प्राकृत का, 'नातपुत्त' पालि का शब्द है। महावीर बाह्याभ्यन्तर परिग्रह की गाँठों में बँधे हुए नहीं थे, अतः वे 'णिग्गण्ठ' निर्ग्रंथ हैं।

भगवान महावीर और समकालीन ऐतिहासिक पुरुष

वैशालीनरेश चेटक—अपभ्रंश के 'महापुराण' ग्रन्थ में तथा संस्कृत के उत्तरपुराण में वैशाली-राजा चेटक का वृत्तान्त आया है। उनकी सात पुत्रियाँ थीं। सबसे बड़ी पुत्री का नाम प्रियकारिणी था, जिसका विवाह कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था। वे ही महावीर के माता-पिता थे। चेटक की छठी पुत्री का नाम चेलना था, जिसका विवाह राजा श्रेणिक से हुआ था। सातवीं कन्या चन्दना थी, जिसने बन्दिनी अवस्था में भक्ति से महावीर को आहार दिया था। महावीर से दीक्षा लेकर वह आर्यिकासंघ की प्रमुख बनी। इससे स्पष्ट है कि वैशालीनरेश चेटक महावीर के नाना थे। मगध नरेश श्रेणिक, कौशाम्बीराजा शतानीक उनके मौसिया थे। चन्दना उनकी मौसी थी।

मगधनरेश श्रेणिक बिम्बिसार—मगध देश के राजा श्रेणिक का भगवान

---

1. डॉ. शोभनाथ पाठक : भगवान महावीर, पृ. 40
2. डॉ. सागरमल जैन : ऋषिभाषित : एक अध्ययन, पृ. 72

महावीर से दीर्घकालीन और घनिष्ठ सम्बन्ध था। जैन कथा-परम्परा की पौराणिक परम्पराओं में श्रेणिक के प्रश्न और महावीर के उत्तर अथवा उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम के उत्तर से प्राप्त होते हैं। श्रीचन्द्रकृत 'कहाकोसु' में श्रेणिक तथा उनके पुत्रों का वृत्तान्त आया है। एक दिन राजा श्रेणिक महावीर के उपदेश सुनने विपुलाचल पर्वत पर गये और वहाँ—

"धर्म-साधना के प्रभाव से उनके सम्यक्त्व की परिपुष्टि होकर सप्तम नरक की आयु घटकर प्रथम नरक की शेष रही। यही नहीं, उनके तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध भी हो गया। इस अवसर पर राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा कि हे भगवान्, मेरे मन में जैन मत के प्रति इतनी महान् श्रद्धा हो गयी है, तथापि व्रत-ग्रहण करने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। गणधर ने उत्तर दिया कि—तुम्हारी नरक की आयु बँध चुकी है। देव आयु को छोड़कर अन्य किसी भी गति की आयु जिसने बाँध ली है, उसमें व्रतग्रहण करने की योग्यता नहीं होती।[1] श्रेणिक ने जब से जैन धर्म ग्रहण किया तब से उनकी धार्मिक श्रद्धा दृढ़ होती गयी।

श्रेणिक-पुत्र—अभय कुमार ने मुनि-दीक्षा ग्रहण की और वे मोक्षगामी हुए। दूसरे पुत्र वारिषेण ने भी धर्म-साधना करके मुनिव्रत धारण किया। तीसरे पुत्र गजकुमार ने भी मुनि-दीक्षा ग्रहण की।

कौशाम्बी नरेश—शतानीक और उदयन तथा उज्जैनी नृप चण्डप्रद्योत। चेटक की पुत्री मृगावती का विवाह शतानीक राजा से हुआ था। उनके पुत्र उदयन का विवाह उज्जैनी-नरेश चण्डप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से हुआ था। बौद्ध साहित्यिक परम्परानुसार उदयन का और बुद्ध का जन्म एक ही दिन हुआ था। यह एक सुदृढ़ जैन परम्परा है कि जिस रात्रि में प्रद्योत के मरण के पश्चात् पुत्र पालक का राज्याभिषेक हुआ, उसी रात्रि महावीर का निर्वाण हुआ था। इस प्रकार ये उल्लेख दोनों महापुरुषों के समसामयिक तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

महात्मा गौतम बौद्ध—भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध समकालीन थे। तत्कालीन समाज-व्यवस्था में परिवर्तन लाने के हेतु दोनों महामानवों ने क्रमशः प्राकृत और पालि भाषा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और पंचशील आदि की महिमा जनसाधारण को समझायी तथा उसे सूत्रबद्ध करके उनके अनुयायियों ने आगम-त्रिपिटक आदि ग्रन्थ रूप में स्थायित्व प्रदान किया।

महावीर और बुद्ध का एक-दूसरे से कभी साक्षात्कार हुआ है, ऐसा कोई उल्लेख किसी आगम ग्रन्थ में नहीं मिलता। बौद्ध वाङ्मय में प्रयुक्त महावीर विषयक प्रसंगों की परख के दृष्टिकोण से निर्मिति हुई है। प्रचलित बुद्ध निर्वाण संवत् और वीर निर्वाण

---

1. डॉ. हीरालाल जैन : महावीर : युग और जीवन दर्शन, पृ. 35

संवत् के आधार पर वर्द्धमान महावीर से बुद्ध लगभग 30 वर्ष छोटे सिद्ध होते हैं। पालि-साहित्य में महावीर को बुद्ध के समकालीन छह तीर्थंकरों में माना गया है।

डॉ. रमेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं--"जैनधर्म के समान ही बौद्धधर्म भी श्रमण परम्परा का एक निवृत्तिमार्गी धर्म है। सामान्यतया इस धर्म के संस्थापक के रूप में गौतम बुद्ध को माना जाता है। गौतम बुद्ध जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर के समकालीन हैं।"[1]

निष्कर्ष

प्राचीन अभिलेखों में श्रमण-परम्परा तथा उसके प्रमुख प्रवक्ता महावीर के सम्बन्ध में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। तत्सम्बन्धी अनेक साहित्यिक मान्यताओं को मूर्तिकारों तथा चित्रकारों ने भी अपनी कृतियों में मूर्तरूप प्रदान किया। महावीर के जीवन से सम्बन्धित पुरालेखों, मूर्तियों के रूप में प्रामाणिक और विश्वसनीय निर्देश मिलते हैं। जैनमत में मान्य 24 तीर्थंकरों का अस्तित्व वैदिककाल के पूर्व भी विद्यमान था, लेकिन इतिहास के साधन इस परम्परा के मूल तक अभी तक पहुँच नहीं पाये हैं।

उपर्युक्त उपलब्ध पुरातत्त्व अभिलेखों, शिलालेखों, प्राचीन पाषाणप्रतिमाओं एवं समकालीन ऐतिहासिक पुरुषों के विवेचन के आधार पर भगवान महावीर के जीवन विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों के संकेत प्राप्त होते हैं। ऐतिहासिक काल में भगवान महावीर की वीतराग मूर्ति का अधिक मात्रा में प्रचलन था। यह तथ्य हाथीगुम्फा, खण्डगिरि, उदयगिरि आदि के मूर्ति अभिलेखों से प्राप्त होता है।

जैन आगमों में भगवान महावीर

भगवान महावीर के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। 'ऋषिभाषित' में महावीर और बुद्ध के पूर्ववर्ती तथा समकालीन 45 ऋषियों के नामोल्लेखपूर्वक उपदेश संकलित हैं। इनमें ब्राह्मण परम्परा के, बौद्ध परम्परा के तथा अन्य स्वतन्त्र श्रमण परम्परा के ऋषियों में मंखलि गोशालक आदि के तथा जैन परम्परा के पार्श्व एवं वर्द्धमान के उपदेश भी संकलित हैं। अतः वर्द्धमान की ऐतिहासिकता में कोई सन्देह नहीं है।

'आचारांग' के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में महावीर के माता-पिता को स्पष्ट रूप से पार्श्व का अनुयायी बताया गया है। महावीर के पूर्व निर्ग्रन्थों की परम्परा थी और यह पार्श्वनाथ की हो सकती है। 'उत्तराध्ययन' में स्पष्ट रूप से महावीर को अचेल धर्म का प्रतिपादक कहा गया है। सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, भगवती आराधना एवं अन्य आगम ग्रन्थों में पार्श्वनाथ को चातुर्याम धर्म का और महावीर को पंचमहाव्रत धर्म का

1. डॉ. रमेशचन्द्र गुप्त : तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार, पृ. 13

प्रतिपादक कहा गया है। परन्तु महाव्रत सभी कालों में पाँच ही रहे हैं, चाहे वह वृषभनाथ का हो या महावीर का।

'ऋषिभाषित' एवं 'भगवती' आदि के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि महावीर ने तत्त्वज्ञान सम्बन्धी अनेक अवधारणाएँ यथावत् रूप से पार्श्वापत्यों से ग्रहण की थीं। परन्तु यथार्थ यह है कि जन्म से ही वे मति-श्रुत-अवधिज्ञान—इन तीनों ज्ञान के धारक थे।

तीसरी-चौथी शताब्दी के बाद 24 तीर्थंकरों की मान्यता स्थिर होने के बाद ही भगवान महावीर के चरित के सब वर्णन कल्पसूत्र, समवायांग, आवश्यक निर्युक्ति एवं तिलोयपण्णत्ति में मिलते हैं। प्राचीन युग में जीवनी की अपेक्षा केवल उपदेश भाग की ही प्रधानता थी। जीवनी मौखिक रूप में प्रचलित थी।

जैन आगम साहित्य का उद्गम

भगवान महावीर की महानता से समस्त जैन साहित्य अलंकृत है। भगवान महावीर ने केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपनी दिव्यध्वनि द्वारा लोकमंगल की भावना से जो हितोपदेश दिया, उसे गणधरों ने सूत्रबद्ध किया। केवली, श्रुतकेवलियों ने महावीर के सिद्धान्तों एवं चरित्र का अवधारण (स्मृति) एवं संरक्षण किया और उसके पश्चात् सारस्वताचार्य, प्रबुद्ध आचार्य, परम्परापोषक आचार्यों एवं आचार्य तुल्य कवियों एवं लेखकों ने महावीर चरित को विशाल वाङ्मय की थाती के रूप में हमें प्रदान किया। वस्तुतः महावीर की दिव्यध्वनि से उद्भूत आगम आदि साहित्य दीपस्तम्भ के समान है।

जैन आगमों में भगवान महावीर की जीवनी के स्रोत

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री का कथन है—"ऐतिहासिक दृष्टि से धर्म-दर्शन की उत्पत्ति का पता लगाना असम्भव है। इसके लिए प्रागैतिहासिक काल की सामग्री का विवेचन आवश्यक है। विश्व में धर्म-दर्शन का स्वरूप निर्धारण करने के हेतु वीतराग नेता या तीर्थंकर जन्म ग्रहण करते हैं। वर्तमान कल्पकाल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं, जिनमें अन्तिम तीर्थंकर महावीर हैं।"[1] जैनधर्म में मान्य तीर्थंकरों का अस्तित्व वैदिककाल के पूर्व भी विद्यमान था। लेकिन इतिहास इस परम्परा के मूल तक अभी तक नहीं पहुँच सका है।

"उपलब्ध पुरातत्त्व सम्बन्धी तथ्यों के निष्पक्ष विश्लेषण से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि तीर्थंकरों की परम्परा अनादिकालीन है—मोहनजोदड़ो के खँडहरों से

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड 1, पृ. 2

प्राप्त योगीश्वर वृषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा इसका जीवन्त प्रमाण है।"[1] श्रमण संस्कृति में वीतराग, हितोपदेशी और सर्वज्ञ चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा कर मनुष्य की महत्ता को (मानवता को) महत्त्व प्रदान किया गया है।

जैन आगम साहित्य का स्वरूप

महावीर-जीवन-वृत्त के मूल आधार-स्तम्भ जैन आगम हैं। पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री का कथन है—"उपलब्ध समस्त जैन साहित्य के उद्गम का मूल भगवान महावीर की वह दिव्यवाणी है, जो बारह वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर लगभग 42 वर्ष की अवस्था में (ई.पू. 557 वर्ष) श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन ब्राह्म मुहूर्त में राजगृही के बाहर स्थित विपुलाचल पर्वत पर प्रथम बार निःसृत हुई थी और तीस वर्ष तक निःसृत होती रही थी।"[2]

श्रुत—महावीर की दिव्यध्वनि को हृदयंगम करके उनके प्रधान शिष्य गौतम-गणधर ने उसे बारह अंगों में निबद्ध किया। उस द्वादशांग में प्रतिपादित अर्थ को गणधर ने महावीर के मुख से श्रवण किया था। इससे उसे 'श्रुत' नाम दिया गया। अतः गणधर को ग्रन्थकर्ता एवं भगवान महावीर को अर्थकर्ता कहा जाता है। गौतम गणधर से लोहाचार्य अपरनाम सुधर्मा, सुधर्मा से जम्बूस्वामी को तथा जम्बूस्वामी से पाँच केवली तक श्रुत परम्परा मौखिक रूप में रही। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे।

द्वादशांगरूप श्रुत-आचार्य-परम्परा के रूप में मौखिक ही प्रवाहित होता रहा। श्रुतकेवली 'भद्रबाहु' के समय तक उसका प्रवाह अविच्छिन्न बना रहा। भद्रबाहु द्वादशांग श्रुत के एकमात्र प्रामाणिक उत्तराधिकारी श्रुतकेवली थे। कहा जाता है कि पाटलिपुत्र में प्रथम जैन वाचना हुई। किन्तु श्रुतकेवली भद्रबाहु की अनुपस्थिति के कारण अंगों का संकलन विशृंखलित रहा।

श्रुतावतार—भद्रबाहु के पश्चात् जैन संघ दिगम्बर और श्वेताम्बर पन्थ में विभाजित होने लगा और दोनों की गुरु परम्परा भी भिन्न हो गयी। दिगम्बर परम्परा में महावीर के निर्वाण के पश्चात् 683 वर्ष तक (ई. सन् 156) अंगज्ञान प्रचलित रहा। पश्चात् आचार्य-परम्परा ने उसे सुरक्षित रखा, लेकिन मूल में उसके कुछ अंश ही सुरक्षित रह पाये।

श्वेताम्बर परम्परा में दूसरी वाचना मथुरा में हुई। बलभी की तीसरी वाचना के समय संकलित ग्यारह अंगों को सम्मिश्र पुस्तकारूढ़ किया गया, किन्तु महत्त्वपूर्ण बारहवाँ अंग का अधिकांश नष्ट हो गया। पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के शब्दों में—

"चौदह पूर्वों में से दो पूर्वों के दो अवान्तर अधिकारों से सम्बद्ध, दो महान्

---

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड 1, पृ. 3
2. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 1

ग्रन्थराज दिगम्बर-परम्परा में सुरक्षित हैं। उनमें वर्णित विषय और उसका विस्तार भी पूर्वों के महत्त्व को ख्यापन करता है। दिगम्बर परम्परा के जैन साहित्य का इतिहास इन्हीं ग्रन्थराजों से आरम्भ होता है।"[1]

जैन आगम ग्रन्थ का स्वरूप

भगवान महावीर की वाणी में तत्त्वज्ञान, आचार, लोकविभाग आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में उनकी स्वतन्त्र और मौलिक देन है। भगवान महावीर ने तत्कालीन लोकभाषा मागधी तथा शौरसेनी (अर्द्धमागधी) को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया था। और इस तरह गौतम गणधर के द्वारा ग्रथित द्वादशांग श्रुत की भी भाषा अर्द्धमागधी कही जाती है, किन्तु उनका लोप होने पर शौरसेनी भाषा, जो वास्तविक प्राकृत है, दिगम्बर जैन आगम साहित्य की रचना का माध्यम रही। और जब संस्कृत भाषा लोकप्रिय हुई, तो जैनाचार्यों ने उसमें ग्रन्थ-निर्मिति की। अपभ्रंश भाषा का प्रचार होने पर उसमें भी जैन साहित्य का निर्माण हुआ। अन्त में अपभ्रंश से निःसृत आधुनिक भारतीय भाषाओं में जैन आगम जनता के लिए सुगम हो, इसलिए विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों-महाकाव्यों आदि का सृजन हुआ। सब अंगों एवं पूर्वों का एकदेश आचार्य गुणधर, आचार्य कुन्दकुन्द तथा धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। गुणधर ने 'कसायपाहुड' (कषायप्राभृत) ग्रन्थ लिखा। आचार्य कुन्दकुन्द ने 84 'पाहुड' एवं धरसेनाचार्य के आदेश पर भूतबली और पुष्पदन्त आचार्यों ने 'षट्खण्डागम' सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की।

संक्षेप में श्रुतावतार का यह विवरण वीरसेन स्वामी की 'कसायपाहुड' की टीका 'जयधवला' में तथा षट्खण्डागम की टीका 'धवला' में दिया गया है। भूतबली आचार्य ने 'षट्खण्डागम' की रचना करके उन्हें पुस्तकों में स्थापित किया और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन पुस्तकों के रूप में विधिपूर्वक पूजा की। इससे वह तिथि श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध है।

जैन आगमग्रन्थों का लिपिकरण

दिगम्बर मान्यता के अनुसार पंचमपूर्व के ज्ञाता आचार्य गुणधर (ई.पू. प्रथम शताब्दी) ने कसायपाहुड और ई. प्रथम शताब्दी में द्वितीय पूर्व के ज्ञाता आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली ने 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ की रचना करके श्रुत को लिपिबद्ध किया। इसके पूर्व ही आचार्य कुन्दकुन्द आध्यात्मिक पाहुड ग्रन्थों की रचना कर चुके थे। उनके बाद चूर्णि, सूत्र तथा 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थ की रचना यतिवृषभाचार्य ने की। उमास्वामी का 'तत्त्वार्थसूत्र' और वट्टकेर आचार्य का 'मूलाचार'

---

1. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 1.

भी इसी समय लिखा गया। इस तरह उपलब्ध दिगम्बर आगम ग्रन्थ इ. सन् प्रथम शताब्दी के आसपास लिपिबद्ध किये गये।

श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार आगमों के लिपिबद्ध होने के पूर्व चार वाचनाएं हुई। इन वाचनाओं के पश्चात् 45 आगमों को लिपिबद्ध किया गया। विविध वाचनाओं का समन्वय करके 'माथुरी' वाचना को आधार बनाया गया। उपलब्ध आगम इसी वाचना के परिणाम हैं।

जैन साहित्य का कालविभाजन

पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अपने 'जैन साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में लिखा है—जैन आगम साहित्य के विकास का इतिहास प्रथम शताब्दी ई. पू. में आरम्भ होकर वर्तमान काल तक आता है। निम्न प्रकार से काल विभाजन किया जाता है—

1. ई.पू. प्रथम शताब्दी से ई. की चतुर्थ शताब्दी के अन्त तक।
2. ई. पांचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी के अन्त तक।
3. दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक।
4. पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से बीसवीं शताब्दी के अन्त तक।

प्राकृत जैन साहित्य—जैनधर्म की प्राचीनता वैदिक काल या उससे भी प्राचीनतर मानी जा सकती है। उस काल के प्राकृत जैन साहित्य को 'पूर्व' संज्ञा से जाना जाता था। उनकी संख्या चौदह है—1. उत्पादपूर्व, 2. अग्रायणी, 3. वीर्यानुवाद, 4. अस्तिनास्तिप्रवाद, 5. ज्ञानप्रवाद, 6. सत्यप्रवाद, 7. आत्मप्रवाद, 8. कर्मप्रवाद, 9. प्रत्याख्यान, 10. विद्यानुवाद, 11. कल्याणवाद, 12. प्राणावाय, 13. क्रियाविशाल और 14. लोकबिन्दुसार।

परम्परागत साहित्य—उत्तरकाल में यह साहित्य दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में विभक्त हुआ। दिगम्बर-परम्परा के अनुसार यह साहित्य-अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य रूप है। अंग प्रविष्ट में बारह अंगों का समावेश है—

1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग, 4. समवायांग, 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति, 6. ज्ञातृधर्म कथा, 7. उपासकाध्ययन, 8. अन्तःकृद्दशांग 9. अनुत्तरोपपातिकदशांग, 10. प्रश्नव्याकरण 11. विपाकश्रुत 12. दृष्टिवाद।

दृष्टिवाद के पांच भेद हैं—1. परिकर्म, 2. सूत्र, 3. प्रथमानुयोग, 4. पूर्वगत और 5. चूलिका। पूर्व के चौदह भेद हैं। उन अंगों के आधार पर रचित ग्रन्थों को अंगबाह्य कहते हैं जिनकी संख्या चौदह है—सामयिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका। दिगम्बर-परम्परा इन अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य ग्रन्थों को विलुप्त हुआ मानती है। उसके अनुसार भगवान महावीर के परिनिर्वाण के 162 वर्ष के पश्चात् अंग ग्रन्थ क्रमशः विच्छिन्न होने लगे। दृष्टिवाद के

अन्तर्गत द्वितीय पूर्व आग्रायणी के कुछ अधिकारों का ज्ञान आचार्य धरसेन के पास शेष था जिसे उन्होंने आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली को दिया। उसी के आधार पर उन्होंने 'षट्खण्डागम' जैसे विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण किया। श्वेताम्बर परम्परा अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य ग्रन्थों को आज भी उपलब्ध मानती है।

अनुयोग साहित्य—अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ग्रन्थों के आधार पर जो ग्रन्थ लिखे गये उन्हें चार विभागों में विभाजित किया गया है—1. प्रथमानुयोग, 2. करणानुयोग, 3. द्रव्यानुयोग, 4. चरणानुयोग।

(1) **प्रथमानुयोग** में ऐसे ग्रन्थ होते हैं जिनमें पुराणों, चरितों और आख्यायिकाओं के माध्यम से सैद्धान्तिक तत्त्व प्रस्तुत किये जाते हैं। महावीर चरित काव्य इसी अनुयोग में आते हैं।

(2) **करणानुयोग** में ज्योतिष और गणित के साथ ही तीन लोकों का समग्र वर्णन होता है। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ इस विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

(3) **द्रव्यानुयोग** में जीव तत्त्व, अध्यात्म आदि का विचार किया गया है। ऐसे ग्रन्थों में समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का समावेश है।

(4) **चरणानुयोग** में मुनियों और गृहस्थों के नियमोपनियमों का विधान होता है। कुन्दकुन्दाचार्य के नियमसार, रयणसार, वट्टकेर का मूलाचार, शिवार्य की भगवतीआराधना, आचार्य समन्तभद्र का रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

श्वेताम्बर-परम्परा में महावीर

श्वेताम्बर-परम्परा में भगवान महावीर के श्रुतोपदेश को सुरक्षित रखने के लिए पाटलिपुत्र वाचना, माथुरी वाचना, वलभी वाचनाएँ सम्पन्न हुईं। उनके आधार पर उस साम्प्रदायिक साहित्य का निर्माण हुआ। दिगम्बर परम्पराओं में उक्त वाचनाओं को स्वीकृति नहीं है। क्योंकि अंगज्ञान ने सामाजिक रूप कभी ग्रहण नहीं किया। वह गुरुशिष्य परम्परा से प्रवाहित होता हुआ माना गया है। अतः उसकी दृष्टि में तो लगभग सम्पूर्ण आगम साहित्य लुप्त हो गया, जो आंशिक ज्ञान सुरक्षित रहा उसी के आधार पर 'षट्खण्डागम' की रचना की गयी है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर आगम साहित्य में महावीर के जीवन विषयक संकेत किस तरह के प्राप्त होते हैं, उसका विवेचन किया जाता है।

अंगसाहित्य—जैन आगमों में प्रत्यक्षतः आये महावीर चरित विषयक प्रसंगों का विवरण निम्न रूप में है—

आयारांग (आचारांगसूत्र)—द्वादशांगों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः इसे अंगों का सार कहा जाता है। भगवान महावीर विषयक विशेष तथ्य आचारांग के नौवें 'उपधान श्रुत' नामक अध्ययन में प्रस्तुत हैं। महावीर की चर्या, शय्या, सहिष्णुता, और तपस्या का मार्मिक वर्णन इसके चार उद्देश्यकों में प्रस्तुत किया गया है।

आचारांगसूत्र की तीसरी चूलिका के भावना अध्ययन में महावीर के चरित्र और महाव्रत की पाँच भावनाओं का वर्णन है। भगवान महावीर के जीवन के बहुत से सूत्र इस आगम में उपलब्ध होते हैं।

सूयगडंग (सूत्रकृतांग)—इस ग्रन्थ में दो श्रुतस्कन्ध हैं। 'वीरस्तुति' अध्ययन में महावीर का वर्णन करते हुए उनको हाथियों में ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा, पक्षियों में गरुड़ की उपमा देते हुए उसे सर्वोत्तम बताया है। 'धर्मअध्ययन' में धर्म का प्ररूपण है। 'समाधि' अध्ययन में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा समाधि की उपादेयता पर प्रकाश गया डाला है।

ठाणांग (स्थानांग)—यह सूत्र दस अध्ययनों में विभक्त है। पाँचवें अध्ययन में पाँच महाव्रतों का वर्णन है। महावीर की कुमारावस्था में प्रव्रजित होने का वर्णन है।

समवायांग—महावीर के माता-पिता, जन्म, नगरी, दीक्षास्थान एवं चैत्यवृक्ष का वर्णन है।

वियाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति)—इसका दूसरा नाम भगवती सूत्र है। महावीर स्वामी के जीवन के प्रचुर प्रसंग इसमें वर्णित हैं। इसमें महावीर को वैसालिय (वैशालिक-वैशालिकानिवासी) कहा गया है। अनेक स्थानों पर महावीर की महत्ता के आख्यान साहित्यिक शैली में प्रस्तुत हैं।

नायाधम्मकहाओ (ज्ञातृधर्म कथा)—"व्युत्पत्तिगत अर्थ है—ज्ञातृपुत्र महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्मकथाओं का प्ररूपण। इसका दूसरा नाम न्यासधर्म-कथा भी सम्भव है।"[1]

13वें अध्ययन में नन्दश्रेष्ठी के मेंढक जन्म का वृत्तान्त है जो महावीर के समवसरण में धर्म-श्रवण की कामना से चला, किन्तु रास्ते में ही राजा श्रेणिक के हाथी के पाँव से कुचलकर मर गया, फिर भी उसे स्वर्ग मिला। जन्तुकथाओं का सूत्रपात इसमें है।

उवासगदसाओ (उपासकदशा)—प्रथम अध्ययन में महावीर की महत्ता 'वीर' शब्द की वरीयता से बतायी गयी है। मोक्ष के अनुष्ठान में जो पराक्रम करता है उसे वीर कहते हैं। और जो वीरों में वीर हो उसे 'महावीर' कहते हैं।

अन्तगडदसाओ (अन्तःकृद्दशा)—संसार का अन्त करनेवाले केवलियों का कथन होने से इस अंग को अन्तःकृद्दशा कहा गया है। अर्जुन मालाकार यक्ष से प्रेरित भटकता हुआ महावीर की शरण में आकर शान्ति प्राप्त करता है। आठवें सर्ग में महावीर के उपवासों एवं तपों का वर्णन है।

अणुत्तरोववाइयदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशा)—अनुत्तर विमानों में उत्पन्न

---

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 171

होनेवाले विशिष्ट पुरुषों का आख्यान इसमें है। "धन्य अनगार की कठोरतम तपस्या की प्रशंसा स्वयं महावीर ने की है।"[1]

पण्हवागरण (प्रश्न व्याकरण)--इसमें आस्रव और संवर का वर्णन है। आस्रव द्वारों में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पाँच पापों का तथा संवर-द्वारों में अहिंसादि पाँच व्रतों का विवेचन है।

विवागसुय (विपाकश्रुत)--महावीर का प्रसंग इसमें गौतम गणधर के प्रश्नों के माध्यम से आया है। उनके प्रश्नोत्तरों का निष्कर्ष यही है कि मनुष्य अपने किये हुए कर्मों के फल को भोगता है। अतः दुष्कर्म न करते हुए सत्कर्म ही करना चाहिए।

दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)--इस अन्तिम बारहवें अंग में "विभिन्न दृष्टियों का (मत-मतान्तरों) प्ररूपण होने के कारण इसे दृष्टिवाद कहा गया है। दृष्टिवाद का अंगों में विशेष महत्त्व है। इसके उपदेश के लिए बीस वर्ष की प्रव्रज्या आवश्यक मानी गयी है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार दृष्टिवाद के कुछ अंशों का उद्धार 'षट्खण्डागम' और 'कषायप्राभृत' में उपलब्ध है।"[2]

प्राकृत जैनागम साहित्य की दो परम्पराओं में दिगम्बर-परम्परा उसे तो लुप्त मानती है, परन्तु श्वेताम्बर-परम्परा में उसे अंग, उपांगों, मूलसूत्र, छेदसूत्र और प्रकीर्णक रूप में विवेचित किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा के अंगसाहित्य में भगवान महावीर के जीवनवृत्त विषयक अनेक मूल तथ्य प्राप्त होते हैं, जिसका विवेचन उपर्युक्त बारह अंगों के आलोक में प्रस्तुत किया गया है। आगमों में महावीर की जीवनी विषयक जो सामग्री प्राप्त होती है वह भी पर्याप्त मात्रा में सम्पूर्ण रूप से नहीं है। यत्र-तत्र बिखराव के रूप में जीवन-वृत्तों का उल्लेख है। आगम विषयक दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में महावीर के जीवन की घटनाएँ भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी भी निर्देशित हैं। अतः प्रामाणिक और ऐतिहासिक जीवनी लिखने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं।

षट्खण्डागम में भगवान महावीर

यह दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ है। इसके छह खण्ड हैं। "प्रथम खण्ड का नाम 'जीवट्ठाण', द्वितीय का 'खुद्दाबन्ध' (क्षुल्लक बन्ध), तृतीय का 'बन्धस्वामित्वविचय' चतुर्थ का 'वेदना', पंचम का 'वर्गणा' और षष्ठ खण्ड का नाम 'महाबन्ध' है। भूतबली ने 'महाबन्ध' की तीस हज़ार श्लोकप्रमाण की रचना की, यही 'महाधवल' नाम से विशाल ग्रन्थ है। इन सबमें महावीर के प्रसंग विविध रूपों में आये हैं।"[3]

---

1. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 91
2. वही, पृ. 98
3. वही, पृ. 274-275

वीरसेन आचार्य ने इन छह खण्डों पर 72 हजार श्लोकप्रमाण 'धवलाटीका' की रचना की। 'कषाय प्राभृत' नामक ग्रन्थ पर आचार्य जिनसेन ने टीका लिखी जो 'जयधवला' नाम से विख्यात है। "इस ग्रन्थ में बताया गया है कि तीर्थंकर महावीर ने 29 वर्ष, 5 मास, 20 दिन तक (ऋषि, मुनि, यति और अनगार) इन चार प्रकार के साधुसंघ एवं श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका सहित देशविदेश में महान् धर्म प्रचार किया" (धवला, पृ. 81)।

भगवान महावीर के सर्वज्ञ, और परमात्मा बनने के विधि-विधान का बड़ा सुन्दर चित्रण 'जयधवला' में किया गया है। "12 वर्ष, 5 मास, 15 दिन तक तपश्चर्या करने के पश्चात् भगवान महावीर ने प्रथम शुक्ल ध्यान की योग्यता प्राप्त की। इसके बाद मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय चार घातिया कर्मों का क्षय अन्तर्मुहूर्त में करके सर्वज्ञ, वीतराग, जीवनमुक्त परमात्मा पद प्राप्त किया।"[1]

तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)—यह आठ हजार श्लोकों का बृहद् ग्रन्थ है। आचार्य यतिवृषभ की यह दूसरी रचना है। इसके नौ अधिकार हैं। "प्रथम महाधिकार में महावीर प्रसंगान्तर्गत उनके शरीर आदि का वर्णन है। चौथे महाधिकार में चौबीस तीर्थंकरों की जन्मभूमि, नक्षत्र, आयु का उल्लेख है। इसी में महावीर की कुमार अवस्था में तप स्वीकार करने का वर्णन है।....महावीर का निर्वाणकाल निर्धारण करने में इस ग्रन्थ का महत्व विशेष है।"[2]

उपांगसाहित्य—जैन साहित्य में अंगों की रचना गणधरों ने की है तथा उपांगों की स्थविरों ने। उपांग संख्या में बारह हैं, जिनमें विविध सामग्री के साथ महावीर विषयक प्रसंग भी पर्याप्त हैं। इन उपांगों में 'उववाइय', 'रायपसेणइय' (राजप्रश्नीय), 'जीवाजीवाभिगम', 'पन्नवणा' (प्रज्ञापना) तथा 'चन्दपण्णत्ति' आदि प्रमुख उपांग हैं। उनमें महावीर के समवसरण के प्रवचन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। महावीर के अंगोपांगों का भी बड़ा मनोहारी वर्णन है।

प्रकीर्णक साहित्य—तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट श्रुत की, श्रमणों द्वारा कथित रचनाएँ 'प्रकीर्णक' कही जाती हैं। महावीर के काल में प्रकीर्णकों की संख्या 14000 बतायी गयी है, जबकि आज केवल 10 प्रकीर्णक उपलब्ध हैं। इन 10 प्रकीर्णकों में केवल 'देविन्दथव' (देवेन्द्रस्तव) प्रकीर्णक में महावीर प्रसंग आया है।

छेदसूत्र साहित्य—छेद सूत्रों की संख्या छह है। इनमें से 'दशाश्रुतस्कन्ध' (दससुयक्खन्ध) चौथा छेदसूत्र है। इस ग्रन्थ में दस अध्ययन हैं। आठवें अध्ययन में भगवान महावीर के च्यवन, जन्म, संहरण, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष का विस्तृत वर्णन है। इसी का दूसरा नाम 'कल्पसूत्र' है। महावीर की जीवनी इसमें काव्यमय शैली

1. विद्यानन्द मुनि : तीर्थंकर वर्द्धमान, पृ. 58, 59
2. आचार्य यतिवृषभ : तिलोयपण्णत्ति, भाग 1, पृ. 34।

में लिखी गयी है, जिसका अत्यन्त महत्त्व है।

मूलसूत्र साहित्य—मूलसूत्रों में साधु-जीवन के मूलभूत नियमों का विवेचन है, अतः इन्हें मूलसूत्र कहा गया है। 'उत्तरज्झयण' (उत्तराध्ययन), आवस्सय (आवश्यक), दसवेयालिय (दशवैकालिक), 'पिण्डनिज्जुत्ति' (पिण्डनिर्युक्ति)—इन चारों मूलसूत्रों में महावीर के जीवन विषयक विविध वृत्त प्राप्त होते हैं।

'उत्तराध्ययन' में महावीर के अन्तिम चातुर्मास के समय के उत्तर संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ का 'द्रुमपुष्पिका' नामक दसवाँ अध्ययन स्वयं महावीर ने कहा है। तेईसवें अध्ययन में पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार और महावीर के शिष्य गौतम के ऐतिहासिक संवाद का उल्लेख है, जिसमें महावीर को सर्वलोकविख्यात धर्मतीर्थ का प्रवर्तक कहा गया है। महावीर के पाँच महाव्रत और अचेल (निर्ग्रन्थ) धर्म का इसमें विवरण उपलब्ध होता है।

निज्जुत्ति (निर्युक्ति) साहित्य—सूत्र में निश्चय किया हुआ अर्थ जिसमें निबद्ध हो उसे निर्युक्ति कहा जाता है। आगमों पर आर्या छन्द में प्राकृत भाषाओं में लिखा हुआ विवेचन निर्युक्ति है। 'आवश्यक निर्युक्ति' में महावीर कथा के प्रसंग हैं। उनके गर्भ से निर्वाण तक की मुख्य-मुख्य घटनाओं का उल्लेख इसमें हुआ है।

भास (भाष्य) साहित्य—भाष्य की रचना प्राकृत गाथाओं में की गयी है। इसका समय चौथी, पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन, आवश्यक निर्युक्ति, दशवैकालिक सूत्र आदि ग्रन्थों पर भाष्य उपलब्ध हैं। इनमें महावीर विषयक प्रसंग आये हैं।

चुण्णि (चूर्णि) साहित्य—चूर्णियों की रचना गद्य में की गयी है। इनका समय ई. की छठी-सातवीं शताब्दी है। उत्तराध्ययन, आचारांग, आवश्यक निर्युक्ति आदि पर चूर्णियाँ लिखी गयी हैं। उनमें महावीर-चरित्र के पर्याप्त प्रसंग आये हैं। आवश्यकचूर्णि में महावीर के जन्म, दीक्षा उपसर्गों तथा देश-देशान्तर में विहार का ब्योरेवार (विस्तार) वर्णन है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

टीका साहित्य—आगमों में मानवीय आदर्श की जो विचारधाराएँ हैं, टीकाएँ उनका व्यापक एवं विशद विवरण प्रस्तुत करती हैं। जैन साहित्य में, टीकाग्रन्थों में महावीर की कथाएँ बड़ी रोचक और स्वाभाविकता से प्रस्तुत की गयी हैं। 'अनुयोगद्वार' पर हरिभद्र की टीका तथा आचारांग और सूत्रकृतांग पर शीलांक की टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

कथा साहित्य—आगम तो कथा साहित्य के मूलस्रोत हैं। 'कहाणयकोस' (कथाकोशप्रकरण) में जिनेश्वरसूरि ने आगमों पर आधारित अनेक कथाएँ लिखी हैं। इन कथाओं में महावीर का प्रसंग शालिभद्र-दीक्षा-ग्रहण में विशेष आकर्षक व प्रेरक है। शालिभद्र महावीर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्रमणधर्म स्वीकार करता है।

पौराणिक और ऐतिहासिक काव्य साहित्य—जैनधर्म में 63 शलाका महापुरुषों

के जीवन-चरित्र कवियों ने लिखे हैं। इन पौराणिक काव्यों का स्रोत आगम साहित्य है। इनमें धर्मोपदेश, कर्मफल, अवान्तर कथाएं, स्तुति, दर्शन, काव्य और संस्कृति को समाहित किया है। ये सभी काव्य शान्त रस से युक्त हैं। इनमें महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण घटित होते हैं। लोकतत्त्वों का भी समावेश इनमें है। 'पउमचरियं' पौराणिक महाकाव्यों में प्राचीनतम कृति है। जैनाचार्यों ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कतिपय प्राकृत महाकाव्य लिखे हैं। हेमचन्द्रसूरि का महाकाव्य चालुक्यवंशीय कुमारपाल महाराजा के चरित का ऐसा ही ऐतिहासिक चरित काव्य है।

पौराणिक और ऐतिहासिक महाकाव्य साहित्य शान्तरस प्रधान रहा। फिर भी इनमें लोकतत्त्वों का समावेश अभिन्न रूप में रहा है। प्राचीन प्राकृत भाषा और उसके आगम साहित्य के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने उसकी हर विधा को समृद्ध किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति का हर क्षेत्र प्राकृत आगम साहित्य का ऋणी है। क्योंकि लोकभाषा और लोकजीवन को अंगीकार कर उनकी समस्याओं के समाधान की दिशा में आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत किया। आधुनिक साहित्य के लिए भी यह आगम साहित्य उपजीव्य बना हुआ है। संस्कृत चरितकाव्य के प्रेरक प्राकृत आगम ग्रन्थ ही हैं।

'षट्खण्डागम' में भगवान महावीर के सर्वज्ञ और परमात्मा बनने के विधिविधान का सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रस्तुत आगम ग्रन्थ के छह खण्ड हैं, अतः उसे 'षट्खण्डागम' कहा जाता है। भूतबली ने 'महाबन्ध' नामक खण्ड पर तीस हज़ार श्लोकप्रमाण रचना की जिसे 'महाधवल' भी कहते हैं। बारह अंगों के बारह उपांग माने जाते हैं। उनका निर्माण उत्तरकालीन है। 'मूलसूत्र' में जीवन के आचारविषयक मूलभूत नियमों का उपदेश है। श्रमण-धर्म के आचार-विचार को समझाने की दृष्टि से छेदसूत्रों का विशेष महत्त्व है। चूलिकाएँ ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप में मानी गयी हैं। आगमिक शब्दों की व्याख्या के लिए आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) ने निर्युक्तियों का निर्माण किया है। प्रकीर्णकों में तीर्थंकरों के द्वारा दिये गये उपदेशों की आचार्यों ने व्याख्या की है। आगम को और स्पष्ट करने के लिए टीका साहित्य लिखा गया है। कथासाहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्म, दर्शन, संयम, तप, चारित्र, दान आदि का महत्त्व स्पष्ट करना रहा है।

जैन आगम साहित्य के आचार्य, कवि

जैन आगम ग्रन्थों के सभी आचार्यों ने गौतम गणधर द्वारा ग्रन्थित श्रुत का ही विवेचन किया है। विषयवस्तु वही रही है, जिसका निरूपण तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि द्वारा हुआ है। विभिन्न समयों में जैन साहित्य उत्पन्न होने के कारण इन आचार्यों में केवल द्रव्य, क्षेत्र और भाव के अनुसार अभिव्यक्ति की पद्धति में भिन्नता प्राप्त होती है। तथ्य समान होते हुए भी कथन करने की प्रक्रिया

भिन्न है। प्राचीन जैन साहित्य के आचार्यों की परम्परा को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है।

श्रुतधारी आचार्य—आचार्य गुणधर, कुन्दकुन्द, पुष्पदन्त, भूतबली, यतिवृषभ आदि ने प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग का केवली और श्रुतकेवलियों की परम्परा के आधार पर ग्रन्थ रूप में आगम साहित्य निर्माण किया। श्रुत की यह परम्परा अर्थश्रुत और द्रव्यश्रुत के रूप में लगभग ई. पू. की शताब्दी से प्रारम्भ होकर चतुर्थ, पंचम शताब्दी तक चलती रही।

सारस्वत आचार्य—सारस्वताचार्यों ने श्रुत-परम्परा की मौलिक ग्रन्थ रचना और टीका साहित्य द्वारा प्रचार और प्रसार किया। इन आचार्यों में समन्तभद्र, पूज्यपाद, देवनन्दी, अकलंक, वीरसेन, जिनसेन, विद्यानन्दि आदि आचार्य माने जाते हैं।

प्रबुद्धाचार्य—जो कल्पना की रमणीयता से श्रुतवाणी (वीरवाणी) को गद्य और पद्य में अलंकृत शैली में काव्य-सृजन करते हैं। इस प्रकार के आचार्यों में जिनसेन प्रथम, सोमदेव, प्रभाचन्द, आर्यनन्दि, हरिषेण, पद्मनन्दि, महासेन आदि की गणना की जाती है।

कवि और लेखक—श्रुत-संरक्षण और इसका विस्तार आचार्यों के अतिरिक्त गृहस्थ लेखक और कवियों ने किया। उन्होंने मौलिक रचनाओं के साथ टीका ग्रन्थ भी लिखे। आचार्य जिनसेन की परम्परा का विकास प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा तत्कालीन भाषाओं में रचित वाङ्मय के आधार पर किया। प्रबुद्ध आचार्यों ने जिन पौराणिक महाकाव्यों के रचना-तन्त्र का प्रारम्भ किया था, उस रचना-तन्त्र का सम्यक् विकास संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में कवियों और लेखकों ने चरित एवं सिद्धान्त विषयक रचनाएँ लिखकर श्रुत-परम्परा का विकास किया है।

निष्कर्ष

भगवान महावीर के सिद्धान्तों और वाङ्मय का अवधारण एवं संरक्षण उनके उत्तरवर्ती श्रमणों और उपासक आचार्यों ने किया है। श्रुतधारी आचार्यों से अभिप्राय है जिन्होंने सिद्धान्त साहित्य, कर्म साहित्य, अध्यात्म साहित्य का ग्रन्थन किया है और जो युगसंस्थापक एवं युगान्तरकारी हैं। आद्य आचार्य 'गुणधर' हैं और उनका ग्रन्थ 'कसायपाहुड' है। धरसेनाचार्य के शिष्य पुष्पदन्त एवं भूतबली का 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ है। सारस्वताचार्य से तात्पर्य है जिन्होंने प्राप्त हुई श्रुत परम्परा का मौलिक ग्रन्थ-प्रणयन और टीका-साहित्य द्वारा प्रचार एवं प्रसार किया है। इसके प्रथम आचार्य हैं—स्वामी समन्तभद्र। प्रबुद्धाचार्य से अभिप्राय है जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा ग्रन्थ-प्रणयन के साथ विवृत्तियाँ और भाष्य भी रचे हैं। परम्परापोषक आचार्य वे हैं जिन्होंने दिगम्बर परम्परा की रक्षा के लिए प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित ग्रन्थों के आधार पर अपने नये

ग्रन्थ लिखे और परम्परा को गतिशील बनाये रखा है। इस श्रेणी में भट्टारक आचार्य आते हैं। जो स्वयं आचार्य न होते हुए भी आचार्य जैसे प्रभावशाली महान् कवि एवं श्रेष्ठ लेखक हुए हैं। उनमें अपभ्रंश के स्वयम्भू, पुष्पदन्त, संस्कृत के असग, कवि धनंजय तथा हिन्दी के बनारसीदास, रूपचन्द पाण्डेय आदि कवि आते हैं।

प्राकृत में महावीर चरित्र

जैनधर्म में 63 शलाका महापुरुष हुए हैं, जिनका जीवन-चरित्र कवियों ने काव्यों में प्रस्तुत किया। चरित साहित्य का विपुल सृजन प्राकृत में किया गया है। 'तिरेसठ-शलाका पुरुष चरित' इसमें प्रमुख है। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव के चरित्रों का समावेश इस ग्रन्थ में हुआ है। 'चउपन्नमहापुरिस चरियं' महावीर कथा से सम्बन्धित है।

महावीर चरियं—सन् 1082 में 'गुणचन्द्रगणि' ने 12025 श्लोकों से पूर्ण इस प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना की। इस अद्वितीय ग्रन्थ में 8 प्रस्ताव हैं, जिनमें से आधे भाग में महावीर के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है। काव्य की दृष्टि से उत्कृष्टतम इस रचना में राजा, नगर, वन, अटवी, उत्सव, विवाहविधि, विद्यासिद्धि, तन्त्र-मन्त्र आदि का वर्णन है। महावीर के जन्म, शिक्षा, दीक्षा आदि का विवरण चौथे प्रस्ताव में विस्तार से दिया गया है। पाँचवें प्रस्ताव में शूलपाणि और चण्डकौशिक के प्रबोधन का वर्णन है। "महावीर के कुम्भारग्राम में ध्यानावस्थित होने, सोम ब्राह्मण को देवदूष्य देने व वर्द्धमान ग्राम में पहुँचने के विविध प्रसंग हैं। यहाँ पर वर्द्धमान ग्राम का दूसरा नाम अस्थिग्राम बताया गया है।"[1] सातवें प्रस्ताव में महावीर के परीषह-सहन और केवलज्ञान प्राप्ति का वर्णन है। उसके बाद श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, मिथिला आदि नगरों में विहार का वर्णन है। कौशाम्बी में चन्दना द्वारा कुल्माष दान ग्रहण कर उनका अभिग्रह पूर्ण हुआ। आठवें प्रस्ताव में महावीर के निर्वाण का वर्णन किया है। उन्होंने मध्यम पावा में निर्वाण प्राप्त किया। गुणचन्द्रसूरि (सं. 1139) नेमिचन्द्रसूरि (12वीं शती) के महावीरचरिय (क्रमशः 12025 और 2385 श्लोक प्रमाण) काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं। इन तरह महावीर चरित का यह अनुपम ग्रन्थ उनके सर्वांग सुन्दर जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालता है।

पउमचरियं (पद्मचरित)—यह विमलसूरि की अनुपम कृति है। इसमें महावीर विषयक विशद विवेचन है। 'सिरिवीरजिणचरियं' नाम से महावीर चरित्र वर्णित है। जन्म-कथा के विस्तार के साथ उनके 'महावीर' नाम की वरीयता में कहा गया है कि उन्होंने मेरुपर्वत को अँगूठे की क्रीड़ा मात्र में प्रकम्पित कर दिया, अतः महावीर नाम देवों द्वारा रखा गया।

---

1. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 535

"आकम्पियो यजेणं, मेरु अंगुट्ठएण लीलाए।
तणेह महावीरो, नामं सि कयं सुरिन्देहि।"

(विमलसूरि : पउमचरिय, पृ. 2/26)

"अणुवय-महव्वएहि य, वालतवेण य हवन्ति संजुत्ता।
ते होन्ति देवलोए, देवा परिणाम जोगेण॥" (वही, पृ. 2/92)

महावीर की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश इस ग्रन्थ में डाला गया है। माता-पिता, बचपन, विरक्तभाव, दीक्षा, तप, केवलज्ञान, समवसरण, उपदेश, श्रेणिक-श्रद्धा, स्तुति आदि विविध प्रसंगों को बड़ी ही कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय समुद्देश भी महावीर की महत्ता से पूर्ण है। महावीर का उपदेश युग को उभारने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जिसमें अणुव्रतों के पालन से देवरूप प्राप्ति का उल्लेख है।

जंबूचरियं (जम्बूचरित)—ग्यारहवीं शताब्दी में गुणपाल मुनि ने प्राकृत में यह चरित काव्य लिखा है। जैन आगम के अनुसार जम्बू स्वामी ने श्रमण दीक्षा ग्रहण की। गुरु सुधर्म ने महावीर के उपदेशों को जम्बू मुनि को सुनाया। अतः प्राचीन जैन आगमों में महावीर के उपदेशों का उल्लेख जम्बूमुनि के सन्दर्भ में मिलता है। 'जम्बूचरिय' में जम्बू स्वामी का चरित्र वर्णित है। वे अन्तिम केवली माने जाते हैं। राजा श्रेणिक महावीर से जम्बूस्वामी के चरित को लेकर प्रश्न करते हैं। उसके उत्तर में महावीर ने उनके पूर्वभवों का वर्णन किया है।

जयन्तिचरियं—यह काव्यग्रन्थ मानतुंग सूरि ने लिखा है, जिस पर उनके शिष्य मलयप्रभसूरि ने टीका लिखी है। जयन्ति ने महावीर से जीव और कर्म विषयक अनेक प्रश्न पूछे। उनके उपदेश से प्रभावित होकर जयन्ति ने महावीर से श्रमण-दीक्षा ग्रहण की थी।

स्तुति-स्तोत्र—प्राकृत में 'महावीरथव' नन्नसूरि का प्रसिद्ध स्तोत्र ग्रन्थ है। देवेन्द्रसूरि का 'वीरचरित्रस्तव' भी महावीर की वरीयता को उजागर करता है। 'वीरस्तुति' एवं 'वीरजिनस्तोत्र' ये दो प्राकृत ग्रन्थ क्रमशः जैन मन्दिर अजमेर व जैन मन्दिर भरतपुर में उपलब्ध हैं।

तिलोयपण्णत्ति—शौरसेनी प्राकृत में यतिवृषभ ने यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसमें प्राकृत गाथाओं में हमें तीर्थंकरों और अन्य शलाका पुरुषों के चरित्र नामावली-निबद्ध प्राप्त होते हैं। इसमें महावीर की जीवन-विषयक प्रायः समस्त बातों की जानकारी संक्षेप में स्मरण रखने योग्य रीति से मिल जाती है।

चउपन्नमहापुरिस चरियं (वि.सं. 925)—शीलांक कवि ने इसमें महावीर का जीवन-चरित्र प्राकृत गद्य में वर्णित किया है।

महावीर चरियं (वि. सं. 1139)—पूर्णतः स्वतन्त्र प्रबन्ध रूप से महावीर का चरित्र 'गुणचन्द्र सूरि' ने आठ प्रस्तावों में प्रस्तुत किया है। प्रथम चार में महावीर के मरीचि आदि पूर्वभवों का विस्तार से वर्णन है।

महावीर चरियं (वि.सं. 1141)—नेमिचन्द्र सूरि ने पूर्णतः प्राकृत पद्यबद्ध महावीर चरित काव्य लिखा। इसमें मरीचि से लेकर महावीर तक 26 भवों का वर्णन है। इसकी कुल पद्य संख्या लगभग 2400 है।

निष्कर्ष

भगवान महावीर का निर्वाण ई. पू. 527 में हुआ। इन्द्रभूति गौतम ने अपने गुरु के जीवन और उपदेशों की समस्त सामग्री बारह अंगों में संकलित की। बारहवें अंग दृष्टिवाद में एक अधिकार प्रथमानुयोग भी था। उसमें समस्त तीर्थंकरों और चक्रवर्तियों आदि महापुरुषों की वंशावलियों का पौराणिक विवरण संग्रह किया गया, जिसमें तीर्थंकर महावीर और उनके ज्ञातृवंश का इतिहास भी सम्मिलित था। दुर्भाग्य से गणधर गौतम द्वारा निबद्ध वह साहित्य अब अप्राप्य है लेकिन उसका संक्षिप्त विवरण समस्त उपलब्ध आगम साहित्य में बिखरा हुआ पाया जाता है। उसका उल्लेख विवेचन में किया गया है। आगम के अंग, उपांग प्रकीर्णक, छेदसूत्र, मूलसूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, कथा एवं चरित साहित्य में महावीर के प्रामाणिक जीवनवृत्त, मूल दार्शनिक, नैतिक और आचार सम्बन्धी विचारों का विस्तार से परिचय प्राकृत साहित्य में प्राप्त होता है।

संस्कृत में महावीर-चरित्र

जैन कवि और दार्शनिकों ने प्राकृत के समान ही संस्कृत में भी अपने काव्य एवं दर्शन की रचनाओं द्वारा उसके साहित्य को समृद्ध बनाया है। जैनाचार्यों ने काव्य के साथ आगम, अध्यात्म, आचार आदि विषयों पर संस्कृत में ग्रन्थ लिखे।

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष चरित्र—श्री हेमचन्द्राचार्य रचित यह ग्रन्थ संस्कृत जैन साहित्य में अपना विशिष्टतम स्थान रखता है। दस पर्वों में विभक्त इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि 63 महापुरुषों का जीवन वर्णित है। दसवाँ पर्व महावीर विषयक है।

तेरह सर्गों में विभक्त इस पर्व में महावीर के जन्म, विवाह, दीक्षा, केवलज्ञान, निर्वाण आदि का वर्णन काव्यमय शैली में किया गया है। त्रिशला व देवानन्दा वर्णन, क्षत्रिय व ब्राह्मणकुण्ड, कुण्डग्राम आदि का विशद वर्णन प्रस्तुत करता है। युवाकाल में महावीर तप की ओर उन्मुख हुए। अपने वैभव पूर्ण जीवन को त्याग उन्होंने भरी जवानी में दीक्षा ग्रहण कर ली, केवलज्ञान की प्राप्ति हेतु वे साधना में तल्लीन हो गये। अन्ततः अपनी कठोरतम साधना से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। चतुर्विध संघ की स्थापना कर वे जन-जागृति के लिए निकल पड़े। अनेक राजा एवं राजकुमारों ने महावीर से दीक्षा ले श्रावक धर्म स्वीकार किया। इस तरह महावीर की जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संकेत इस ग्रन्थ से प्राप्त होते हैं।

त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रम्—पण्डित आशाधर विरचित इस संस्कृत ग्रन्थ का प्रारम्भ वीर वन्दना से है। अन्य 24 तीर्थंकरों के विशद वर्णन के साथ ग्रन्थ के अन्त में महावीर की कथा दी गयी है। बावन श्लोकों में कवि ने कुशलता के साथ वीर के जन्म, दीक्षा, तप आदि का वर्णन किया है। महावीर के माता-पिता, जन्मस्थान विषयक वर्णन जहाँ अति सुन्दर हैं, वहीं उनका नाम समृद्धि का सूचक 'वर्द्धमान' रखा गया था। 'वीर' से 'महावीर' बनकर उन्होंने पौरुष की पराकाष्ठा पार कर दी और बौद्धिकता में भी वे अग्रगण्य रहे।

वीर-वर्द्धमान-चरित्र—भट्टारक श्री सकलकीर्ति ने संस्कृत भाषा में 'वीर-वर्द्धमान चरित्र' की रचना की है। वे विक्रम की 15वीं शताब्दी के आचार्य हैं। उनका समय वि. सं. 1443 से 1499 तक रहा है। इस चरित्र में कुल 19 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सर्व तीर्थंकरों को पृथक्-पृथक् श्लोकों में नमस्कार किया है। भट्टारक सकलकीर्ति के 'वीर वर्द्धमान' चरित काव्य का अनुकरण आधुनिक हिन्दी के महाकाव्यों में अधिकतर हुआ है।

वर्द्धमान चरितम्—नामक प्रसिद्ध महाकाव्य, 'महाकवि असग' द्वारा दशम शती के उत्तरार्ध में रचा गया। इस विशाल महाकाव्य में भगवान महावीर का अनेक पूर्व जन्मों से युक्त लोकोत्तर जीवनवृत्त अठारह सर्गों में दिव्य-भव्यता के साथ वर्णित है। सोलह सर्गों में अत्यन्त उदात्त शैली में और अनेक वर्णन वैभवों की आभा में वर्द्धमान के पूर्व जन्मों का वर्णन है। उत्थान-पतन के अनन्त थपेड़ों से जूझता हुआ वर्द्धमान का चिरसंघर्षशील जीव हमारे मानस-पटल पर एक प्रभावक और स्थायी बिम्ब बना लेता है। सत्रहवाँ सर्ग महाकाव्य का सर्वस्व है। वर्द्धमान के जन्म से लेकर केवलज्ञान प्राप्ति तक का प्रायः समस्त जीवन इस सर्ग में चित्रित है। अठारहवें सर्ग में वर्द्धमान के विभिन्न उपदेशों का वर्णन है और अन्ततः बहत्तर वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्ति का वर्णन है।

जहाँ तक वर्द्धमान चरित्र के कथानक स्रोतों का प्रश्न है, महाकवि असग ने 'तिलोयपण्णत्ति' और 'उत्तरपुराण' से सहायता ली है। पुराण को महाकाव्य का रूप देने में कवि ने अनेक स्थलों को छोड़ा है और अनेक हृदयस्पर्शी स्थलों की योजना की है। आधुनिक हिन्दी के महावीर चरित महाकाव्यों में इसी से मिलती-जुलती जीवनी चित्रित की गयी है।

महावीर विषयक अन्य चरितकाव्य

केशव का 'वर्द्धमानपुराण', गुणभद्र का 'वर्द्धमानपुराण' आदि उनके नाम के अनुसार महावीर चरित के महाकाव्य हैं। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री का कथन है—"जिनसेनाचार्य की केवल तीन ही रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'वर्द्धमानचरित' की सूचना अवश्य प्राप्त होती

है, पर वह कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।"[1]

जैन सैद्धान्तिक रचनाओं का निर्माण अधिकतर संस्कृत साहित्य में हुआ है। 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना उमास्वामी ने की। सिद्धसेन दिवाकर ने अपनी पाँच स्तुतियाँ भगवान महावीर को लेकर लिखीं। आरम्भकालीन काव्यशैली में लिखित जटाचार्य के 'वरांगचरित' तथा रविषेण के 'पद्मपुराण' (676 ई.) का निर्देश संस्कृत साहित्य में किया जाता है। ये दोनों संस्कृत चरितकाव्य 'कुवलयमाला' प्राकृत रचना से (779 ई.) से पूर्व कालीन हैं।

तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र पर 'महापुराण' नामक सर्वांग सम्पूर्ण रचना जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र द्वारा शक सं 820 के लगभग की गयी थी। इसके प्रथम 47 पर्व 'आदिपुराण' के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत का जीवन चरित्र वर्णित है। 48 से 76 तक के पर्व 'उत्तरपुराण' कहलाता है, जिसकी पूर्ण रचना गुणभद्रकृत है। उसमें शेष तेईस तीर्थंकरों और अन्य शलाका पुरुषों के जीवन-वृत्त हैं। इनमें तीर्थंकर महावीर का चरित्र अन्तिम तीन सर्गों में (74 से 76 तक) पद्यों में है, जिनकी कुल पद्यसंख्या 549 + 691 + 578 = 1818 है (वाराणसी 1954)। लगभग पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् हेमचन्द्राचार्य कवि ने 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष चरित' की रचना दस पर्वों में की, जिसका अन्तिम पर्व महावीरचरित विषयक है। 'महापुरुषचरित' मेरुतुंग द्वारा रचा गया, जिसके पाँच सर्गों में क्रमशः वृषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर के चरित्र वर्णित हैं। यह रचना लगभग 1300 ई. की है। काव्य की दृष्टि से शक सं. 910 में 'असग' द्वारा 18 सर्गों में रचा गया 'वर्द्धमानचरित' है (सोलापुर 1931)। इसमें प्रथम सोलह सर्गों में महावीर के पूर्वभवों का वर्णन है और उनका जीवन वृत्त अन्तिम दो सर्गों में है। सकलकीर्तिकृत वर्द्धमान-पुराण में 19 सर्ग हैं और उसकी रचना वि. सं. 1518 में हुई। पद्मनन्दि, केशव और वाणीवल्लभ द्वारा भी संस्कृत में महावीर चरित लिखे जाने के उल्लेख पाये जाते हैं। आधुनिक हिन्दी में महावीर चरित महाकाव्यों के कवियों ने अधिकतर संस्कृत के वर्द्धमान पुराणों का आदर्श सामने रखकर महाकाव्य रूप में रचनाएँ की हैं।

अपभ्रंश में महावीर-चरित्र

अपभ्रंश साहित्य में जन जीवन में प्रचलित काव्यों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। उसमें लोकोपयोगी साहित्य के सृजन पर अधिक ध्यान दिया गया है। पुराण, चरित, कथा, रासा, फागु इत्यादि अनेक विधाओं पर जैनाचार्यों ने अपनी स्फुट रचनाएँ लिखीं हैं।

रयधू-विरचित महावीर चरित्र—रयधू कवि ने अपभ्रंश भाषा में अनेक ग्रन्थों

---

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ. 32

की रचना की। उनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी है। यद्यपि उनके पूर्व रचे गये महावीर चरितों के आधार पर ही उन्होंने अपने चरित की रचना की, तथापि उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का उनकी रचना में स्थान-स्थान पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। रयधू ने त्रिपृष्ठ के भव का वर्णन करते समय युद्ध का वर्णन और उसके नरक में पहुँचने पर वहाँ के दुःखों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। गौतम के दीक्षित होते ही भगवान की दिव्यध्वनि प्रकट हुई। इस प्रसंग पर रयधू ने षट्-द्रव्य और सप्त तत्त्वों का तथा श्रावक और मुनिधर्म का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में रयधू ने भगवान के निर्वाण कल्याण का वर्णन करके गौतम के पूर्व भव एवं भद्रबाहु स्वामी का चरित्र भी लिखा है।

सिरिहर-विरचित-वड्ढमाणचरिउ—कवि श्रीधर ने अपने वर्द्धमान चरित की रचना अपभ्रंश भाषा में की है। यद्यपि भगवान महावीर का कथानक एवं कल्याणक आदि का वर्णन प्रायः वही है, जो कि दिगम्बर परम्परा के अन्य आचार्यों ने लिखा है, तथापि कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें दिगम्बर परम्परा से कुछ विशेषता दृष्टिगोचर होती है। त्रिपृष्ठनारायण के भव में सिंह के मारने की घटना का वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थकार ने किया है।

गौतम को इन्द्र समवसरण में ले जाते हैं। वे भगवान से अपनी जीव-विषयक शंका को पूछते हैं। भगवान की दिव्य ध्वनि से उनका सन्देह दूर होता है और वे जिन-दीक्षा ग्रहण करते हैं। गौतम ने पूर्वाह्न में दीक्षा ली और अपराह्न में द्वादशांग की रचना की।

जयमित्तहल-विरचित वर्द्धमान काव्य—यह काव्य कवित्व की दृष्टि से बहुत उत्तम है। इसमें भगवान का चरित दिगम्बरीय पूर्व परम्परानुसार ही है। कुछ स्थलों का वर्णन बहुत ही विशेषताओं को लिये हुए है। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर दिव्यध्वनि प्रकट होने तक निर्ग्रन्थ मुनि आदि के साथ तीर्थंकर इस धरातल पर छियासठ दिन विहार करते रहे। अन्य चरित वर्णन करनेवालों ने भगवान के विहार का इस प्रकार उल्लेख नहीं किया है। समग्र ग्रन्थ में दो प्रकरण और उल्लेखनीय हैं—सिंह को सम्बोधन करते हुए 'जिनरत्तिविधान' तप का तथा दीक्षा कल्याणक के पूर्व भगवान द्वारा 12 भावनाओं के चिन्तवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। कवि जयमित्रहल ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि भगवान महावीर अन्तिम समय में पावापुरी के बाहरी सरोवर के मध्य में स्थित शिलातल पर जाकर ध्यानारूढ़ हो गये और वहीं से योग-निरोध कर अघाति कर्मों का क्षय करते हुए निर्वाण को प्राप्त हुए।

जैनधर्म के 24 तीर्थंकरों और अन्य शलाकापुरुषों के चरित्र पर अपभ्रंश में विपुल और श्रेष्ठ साहित्य हैं। पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' (शक सं. 887) यह सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वकाव्यगुणों से सम्पन्न महाकाव्य है। इसमें कुल 102 सन्धियाँ हैं। इनमें महावीर का जीवन चरित्र सन्धि 95 से अन्त तक वर्णित है। कवि श्रीधर ने भी

महावीर के जीवन पर एक स्वतन्त्र रचना 'वड्ढमाणचरिउ' के रूप में की है। 'पासणाहचरिउ' का समाप्ति काल (वि.सं. 1189) उल्लिखित है। कविवर रयधू ने 'सम्मइ-चरिउ' दस सन्धियों में रचा है। जयमित्रहल ने 'वड्ढमाण कव्व' की रचना की है। अपभ्रंश साहित्य में महावीर के जीवनविषयक वृत्त एवं उनकी विचारधारा का विवेचन जैन आगमों पर आधारित है। इस प्रकार महावीर चरित्र की विषय-सामग्री समकालीन परिवेश के सन्दर्भ में प्रस्तुत की गयी है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर का चरित्र अपभ्रंश के पौराणिक काव्यों पर आधारित चित्रित किया गया है।

पुरानी हिन्दी में महावीर-चरित्र

समूचा हिन्दी जैन साहित्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्राचीन युग और आधुनिक युग। प्राचीन युग में प्राकृत, अपभ्रंश से उद्भूत 'पुरानी हिन्दी' भाषा की रचनाएँ आती हैं। आधुनिक युग में खड़ी बोली में रची गयी अधिकतर रचनाएँ आधुनिक विधाओं की शैली में आती हैं। अपभ्रंश साहित्य की विभिन्न विधाओं ने सामान्यतः हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया था। अतः जैन हिन्दी कवि व्रज और राजस्थानी में प्रबन्धकाव्य और मुक्तक काव्यों की रचना करने लगे। यह सत्य है कि जैन कवियों ने जैनदर्शन के सिद्धान्तों को भी अपने काव्यों में स्थान दिया है। आरम्भ में जैन कवियों ने लोकभाषा हिन्दी को ग्रहण कर जीवन का चिरन्तन सत्य, मानव कल्याण के लिए प्रेरणा एवं सौन्दर्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

महावीर की जीवनी के आधारभूत ग्रन्थ

भगवान महावीर के चरित्र विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का विवरण देते समय डॉ. भगवानदास तिवारी लिखते हैं—"विश्व की महान् विभूति और लोकवन्द्य तीर्थंकर के नाते दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों, पुराणों तथा चरितकाव्यों में भगवान महावीर की जीवनगाथा आचार्य एवं महाकवियों ने बड़े विस्तार से लिखी है। भगवान महावीर के निर्वाण के समय से ही उनके जीवन सम्बन्धी विकसित इतिवृत्त संकलित किये गये, जिनमें कवि-कल्पना का योगदान विलोभनीय है।"[1]

दिगम्बर मान्यता के अनुसार महावीर-चरित्र विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थों के नाम हैं— 1. यतिवृषभाचार्य कृत 'तिलोयपण्णत्ति', 2. महाकवि पुष्पदन्त कृत 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार' या 'महापुराण', 3. जयमित्रहल्ल कृत 'वड्ढमाण कव्व', 4. कवि नरसेन कृत 'वड्ढमाण कहा', 5. गुणभद्र कृत 'उत्तरपुराण', 6. सकलकीर्ति कृत 'वर्द्धमान पुराण (हरिवंशपुराणान्तर्गत)', 7. असग कविकृत 'वर्द्धमान चरित्र',

---

1. डॉ. भगवानदास तिवारी : भगवान महावीर : जीवन और दर्शन, पृ. 4.

8. मेरुतुंग कृत 'महापुराण चरित्र', 9. पद्मनन्दि कृत 'वर्द्धमान काव्य' इन ग्रन्थों में दिगम्बर परम्परा की मान्यताओं के अनुसार भगवान महावीर का चरित्रांकन किया गया है।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर चरित्रविषयक कुछ महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ निम्नानुसार हैं। अंगग्रन्थों के रूप में 'आचारांग', 'समवायांग', तथा 'कल्पसूत्र' महत्त्वपूर्ण चरित्र सन्दर्भ के ग्रन्थ हैं। साथ ही—1. शीलांकाचार्य कृत 'चउपन्नमहा-पुरिसचरियं', 2. भद्रेश्वर कृत 'कहावली' 3. गुणभद्रसूरि कृत 'महावीर चरियं', 4. नेमिचन्द्र सूरि कृत 'महावीर चरियं', 5. देवभद्रगणिकृत 'महावीर चरियं', 6. रामचन्द्र कृत 'महावीर स्वामी चौढालियो' आदि रचनाओं में भगवान महावीर की चारित्रिक विशेषताएँ निरूपित हैं।

भगवान महावीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर भारतीय और पाश्चात्य भाषाओं में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं और ग्रन्थों में प्रभूत सामग्री प्रकाशित हुई है। फिर भी, सामयिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर जैन संग्रहालयों में विद्यमान हस्तलिखित ग्रन्थों तथा प्रकाशित अन्य महत्वपूर्ण काव्यों से विषय-सामग्री संकलित की जा सकती है। उनके नाम हैं—

उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक, वसुदेवहिण्डी, भद्रेश्वरकृत महाबली, जटाचार्य कृत वरांगचरित, रविषेण कृत पद्मपुराण, कवि विबुध श्रीधर कृत वड्ढमाण चरिउ, नागवर्म कृत वीर वर्द्धमान पुराण, आचण्ण कृत वर्द्धमान पुराण, पद्मकवि कृत वर्द्धमान चरित्र।

भगवान महावीर की जीवनी की रूपरेखा

भगवान महावीर के जीवन और चिन्तन के सम्बन्ध में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं और द्रविड़ भाषाओं के साहित्य में विपुल मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है। उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व को लेकर अनेक पौराणिक आख्यान-उपाख्यान तथा चमत्कारिक, अलौकिक निजन्धरी अद्भुत घटनाएँ और प्रसंग उपलब्ध होते हैं। महावीर की जीवनी की प्रामाणिक जानकारी के लिए कुछ शिलालेख, मूर्तिलेख, स्तूपलेख आदि को आधार माना जा सकता है, लेकिन ऐतिहासिक अध्ययन की पर्याप्त सामग्री के अभाव में उनके जीवन का वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन करना कठिन है। प्राप्त प्रामाणिक और विश्वसनीय जीवनी लेखन के साधनों के आधार पर वर्तमान में उनके जीवन की रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की जा सकती है। डॉ. हीरालाल जैन और आ. ने. उपाध्ये इन दो विद्वानों ने 'महावीर युग और जीवन-दर्शन' ग्रन्थ में महावीर के ऐतिहासिक जीवनवृत्त को निम्न रूप में प्रस्तुत किया है।

बिहार प्रान्त में पटना से 30 मील उत्तर में आधुनिक बसाढ ग्राम (वैशाली) का एक उपनगर क्षत्रियकुण्ड था। इसी नगर में राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला की कोख

से ई. पू. 599 में महावीर ने जन्म लिया। उनके विशेष गुणस्वभाव के अनुसार वे वर्द्धमान, सन्मति, वीर, अतिवीर, महावीर आदि नामों से विख्यात हुए। माता त्रिशला लिच्छवि गणतन्त्र के महाराजा चेटक के परिवार की थीं।

महावीर के विवाह के सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत मत नहीं है। पिता के राज्य का शासनकार्य भी उन्होंने युवावस्था में नहीं चलाया। 30 वर्ष के नवयौवन में महावीर ने समस्त राजऐश्वर्य का त्याग कर संन्यास धारण किया। सच्चे आत्मिक सुख की, आत्मशुद्धि की प्राप्ति के लिए निर्ग्रन्थ होकर कठोर तपश्चर्या की। आत्म-विकास की साधना करते समय अनेक बाह्य उपद्रवों एवं परीषहों पर विजय प्राप्त की। बारह वर्ष की कठिन तपश्चर्या के पश्चात् उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे केवली अर्हत् सर्वज्ञ कहलाये।

राजगृह के निकट विपुलाचल पर महावीर की प्रथम देशना (उपदेश) हुई। तीस वर्ष तक देश के विभिन्न स्थानों में उन्होंने विहार करके धर्म-प्रचार किया। इस विहार के कारण ही मगध राज्य का नाम बिहार पड़ गया। "महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ परम्परा के अनुयायी थे। महावीर ने पूर्ववर्ती 23 तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित विचारधाराओं से प्रेरणा लेकर दृढ़ श्रद्धा से ज्ञान-चारित्र की साधना करके अर्हत् केवली का पद प्राप्त किया था। उस ज्ञान के द्वारा युगीन समस्याओं की व्याख्या करके उनके समाधान भी समन्वयवादी, मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किये।"[1]

महावीर ने अपने उपदेशों में समस्त प्राणी मात्र की आत्मा की शुद्धता, आचरण की पवित्रता एवं आत्मा की महानता के विकास की महत्ता पर सबसे अधिक बल दिया। आत्मा ही परमात्मा के रूप में पूर्णता को आत्मिक पुरुषार्थ से प्राप्त कर सकती है। महावीर के उपदेश सभी मानवों के लिए थे। वे समतावादी एवं सर्वोदयवादी थे। अतः संघ व्यवस्था में समस्त मानवमात्र को प्रवेश था। चतुःसंघ की व्यवस्था का विधान रहा। श्रावक-श्राविकाएँ (गृहस्थधर्म), साधु-साध्वियाँ (श्रमणधर्म) इस चतुःसंघ की व्यवस्था तथा जीवन-पद्धति आज तक प्रचलित रही है।

महावीर ने तीर्थ (नदी के घाट की तरह सबके लिए उपयोगी धर्म) का प्रवर्तन किया, जिसमें दलित, शोषित, अन्यायपीड़ित, मानव इसी जन्म में सुख-शान्ति और परलोक में भी सच्चा शाश्वत सुख प्राप्त कर सकें। 527 ई. पू. पावापुर में 72 वर्ष की आयु में महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल महावीर की प्रामाणिक जीवनी की ऐतिहासिकता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–

वर्द्धमान महावीर गौतम बुद्ध की भाँति नितान्त ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। माता-पिता के द्वारा उन्हें भी हाड़-मांस का शरीर प्राप्त हुआ था। अन्य मानवों की भाँति वे भी

---

1. डॉ. हीरालाल जैन, आ. ने. उपाध्ये : महावीर : युग और जीवन दर्शन, पृ. 46

कच्चा दूध पीकर बढ़े थे, किन्तु उनका उदात्त मन अलौकिक था। तम और ज्योति, सत्य और असत्य के संघर्ष में एक बार जो मार्ग उन्होंने स्वीकार किया, उस पर दृढ़ता से पैर रखकर हम उन्हें निरन्तर आगे बढ़ते हुए देखते हैं। उन्होंने अपने मन को अखण्ड ब्रह्मचर्य की आँच में जैसा तपाया था, उसकी तुलना में रखने के लिए अन्य उदाहरण कम ही मिलेंगे। जिस अध्यात्म केन्द्र में इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त की जाती है, उसकी धाराएँ देश और काल पर अपना निस्सीम प्रभाव डालती हैं। महावीर का यह प्रभाव आज भी अमर है।

निष्कर्ष

भगवान महावीर की जीवनी के विविध स्रोतों का विवेचन करने पर निम्नरूप में निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

1. पुरातन पाषाण प्रतिमाओं, मूर्तियों, शिलालेखों, स्तूपलेखों से सम्बन्धित जो अभिलेखीय सामग्री उपलब्ध हुई है, उससे भगवान महावीर के जीवनवृत्त के धुँधले से संकेत मिलते हैं। यह सामग्री जीवनीलेखन के लिए विश्वसनीय और प्रामाणिक तो है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। इससे भगवान महावीर की ऐतिहासिकता निश्चित रूप से सिद्ध होती है।

2. आगम ग्रन्थों में भगवान महावीर के जन्म, तप, दीक्षा, उपदेश, निर्वाण आदि को लेकर प्रसंगवश वृत्तवर्णन तो मिलते हैं, लेकिन आगमों को लेकर दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में दृष्टिकोण की विभिन्नता है। अतः साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ही भगवान महावीर की जीवनी के वृत्तों का वर्णन प्राप्त होता है। अंग, उपांग, प्रकीर्णक, निर्युक्ति, मूलसूत्र, छेदसूत्र, चूर्णि आदि आगम ग्रन्थ भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न विद्वानों के द्वारा ग्रन्थित किये गये और साम्प्रदायिकता के कारण अपनी महत्ता की अलग पहचान के लिए अपने धर्मप्रवर्तक की प्रतिमा भी अपने-अपने आदर्शों के अनुसार गढ़ने में मग्न रहे हैं। अतः भगवान महावीर की जीवनी ऐतिहासिक एवं विश्वसनीय रूप में सर्वसम्मत नहीं बन पाती है। साम्प्रदायिक दृष्टि के कारण महावीर, मानव महावीर न रहकर कल्पित देव-से बन गये हैं।

3. जैन आगम साहित्य के आचार्य कवियों ने भी सम्प्रदायगत दृष्टि से भगवान महावीर को चित्रित किया है। ये आचार्य श्रुतधारी, सारस्वत, प्रबुद्ध, परम्परापोषक एवं गृहस्थ कवि रहे। इन सन्तों ने अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार एवं सम्प्रदाय विशेष की अलग पहचान को सुरक्षित रखने के लिए युगानुकूल महावीर के जीवन में अनेक पौराणिक, काल्पनिक घटनाओं का समावेश किया। अतः विश्वसनीय जीवनी प्राप्त नहीं होती।

4. प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी साहित्य में समय-समय पर देश के विविध स्थानों में विविध पन्थीय दृष्टिकोण से जैन साम्प्रदायिक साधुओं, जैनेतर

ब्राह्मण विद्वानों, विदेशी विद्वानों द्वारा भगवान महावीर का चरित्र साहित्य की विविध विधाओं में लिखा गया है। उपर्युक्त लिखित मुद्रित सामग्री भगवान महावीर की जीवनीविषयक जिज्ञासा को तृप्त करने में समर्थ नहीं है। अनेक प्रकार के बुद्धिभ्रम निर्माण होते हैं। अतः भगवान महावीर की जीवनी की रूपरेखा को ही मात्र प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी तथ्य को सामने रखकर अध्याय के अन्त में महावीर की जीवनी की रूपरेखा को प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग की प्रमुख विशेषता है—ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की। आज के युग की माँग है कि ऐतिहासिक महावीर का चरित्र तर्कबुद्धि-सिद्ध और इतिहास-सम्मत हो। महावीर-चरित्र लिखने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की अत्यधिक आवश्यकता है। भगवान महावीर के जीवनवृत्त सम्बन्धी जो असंगत बातें चित्रित की जाती हैं—जैसे 1. गर्भापहरण, 2. शिशुमहावीर के अंगुष्ठ द्वारा मेरुकम्पन, 3. स्वर्ग के देवों की सृष्टि करके महावीर के गर्भ, जन्म दीक्षा, केवलज्ञान, निर्वाण के कल्याणक महोत्सवों पर उनकी उपस्थिति आदि। इन्हीं असंगतियों, पौराणिक कल्पनाओं, अलौकिक अद्भुत प्रसंगों का समावेश महावीर के चरित्र में तद्युगीन आवश्यकता को मानकर जो किया गया, उसे आज की नयी पीढ़ी बुद्धि ग्राह्य नहीं मानती। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से एवं घटनाओं को तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसने पर महावीर के चरित्र का आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनुशीलन-अनुसन्धान करना युगीन आवश्यकता है।

द्वितीय अध्याय

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित महावीर-चरित्र

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रारम्भ साठोत्तरी साहित्य से माना जाता है। अतः आधुनिक तथा आधुनिकता को भी अलग-अलग अर्थों में समझा जाने लगा है। आधुनिक शब्द 'अधुना' शब्द से निष्पन्न है। अधुना का कोषगत अर्थ होता है—अब, इस समय, इन दिनों तथा वर्तमान। आधुनिक शब्द का अर्थ होगा : जो आजकल का है अथवा जो अब इस समय से सम्बन्धित है। आधुनिक और आधुनिकता में पर्याप्त अन्तर है; क्योंकि आधुनिक विशेषण है, और आधुनिकता संज्ञा है।

'आधुनिक' शब्द को इतिहास के सन्दर्भ में दो अर्थों में समझा जाता है—1. मध्यकाल से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देनेवाली सारी गतिविधियाँ आधुनिक कही जा सकती हैं। यह आधुनिक अथवा नवीन दृष्टिकोण साहित्य में अभिव्यक्त हुआ। साहित्य का सम्बन्ध मानव के साधारण सुख-दुःखों से जुड़ गया। इस प्रकार मानवी दृष्टिकोण से जो नयी चेतना आयी, वही आधुनिक कहलायी। 'आधुनिक' शब्द का एक दूसरा अर्थ भी ध्वनित होता है। इस लोक के ऐहिक दृष्टिकोण को धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि के साथ वर्तमान वातावरण एवं परिवेश से जोड़ा गया है। "आधुनिक लेखकों, दार्शनिकों, चिन्तकों, कलाकारों तथा धार्मिक व्याख्याताओं ने मानव-चिन्तनधारा को शुद्ध मानवीय धरातल पर स्थिर किया। आधुनिक युग की साहित्यिक धारा ने सुधार, परिष्कार तथा अतीत के पुनराख्यान के सन्दर्भ में एक प्रकार की नवीनता प्रदान की है।"[1]

आधुनिक काल कहने से रीतिकाल अथवा समस्त मध्यकाल से अलग और नवीन दृष्टिकोण को अपने साथ लेकर चलनेवाले साहित्य को आधुनिक साहित्य कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक का प्रारम्भ लगभग सं. 1900 वि. से माना जाता है।

---

1. डॉ. जयनारायण शर्मा : हिन्दी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल), पृ. 10

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का प्रारम्भ

संस्कृत के शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों की पद्धति का वास्तविक अनुकरण आधुनिक हिन्दी में बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सन् 1914 में 'प्रियप्रवास' की रचना खड़ी बोली हिन्दी में संस्कृत की शास्त्रीय शैली पर करने का प्रथम प्रयास किया। 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' को रचना में पौराणिक बातों का बौद्धिकीकरण कर आधुनिक युग के लिए विश्वसनीय बनाया। यह प्रयास द्विवेदी युग की पुनरुत्थानवादी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति के अनुरूप थी। पुनरुत्थानवादी राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति की प्रेरणा से ही आधुनिक युग में खड़ी बोली में अनेक महाकाव्य लिखे गये। उन सभी प्रबन्धकाव्यों को उनके कवियों ने महाकाव्य माना है। और उनकी रचना भी मूलतः महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों को दृष्टि में रखकर ही हुई है। आधुनिक काल में कृष्णचरित्र पर लिखे काव्यग्रन्थों में 'हरिऔध' जी का 'प्रियप्रवास' प्रमुख है। कृष्णचरित्र से सम्बन्धित अलौकिक कथाओं की व्याख्या कवि ने अपने ढंग पर की है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य के कथास्रोत

प्रसादोत्तर महाकाव्यों में कथानक के प्रमुख स्रोत पुराण और इतिहास रहे हैं। किन्तु सम-सामयिक जीवन की घटनाएँ, परिस्थितियाँ एवं व्यक्तित्व भी महाकाव्य रचना के आधारभूत प्रतिमान रहे हैं। उदाहरण के लिए 'वैदेहीवनवास', 'कृष्णायन', 'साकेतसन्त', 'जयभारत', 'पार्वती', 'रश्मिरथी', 'एकलव्य', 'उर्मिला', 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'दमयन्ती', 'रामराज्य' आदि महाकाव्यों की कथावस्तु पुराणों पर आधारित है, तो 'नूरजहाँ', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान', 'मीरा', 'झाँसी की रानी', 'बाणाम्बरी', 'विक्रमादित्य' आदि महाकाव्य इतिहास पर आधारित हैं। इन महाकाव्यों की कथावस्तु इतिहास, पुराण पर आधारित होते हुए भी इनमें कथाचयन की नवीनता, मौलिक प्रसंगों की उद्‌भावना एवं मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि है।

वर्तमान युग का उत्कृष्ट महाकाव्य 'लोकायतन' है। वर्तमान युग में निराला, पन्त, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, दिनकर तथा बच्चन आदि के काव्य प्रकाश में आये हैं। सुमित्रानन्दन पन्त जी का 'लोकायतन' एक उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है। उसमें दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति में ही कथा का विकास होता है। 'लोकायतन' वर्तमान की वह गाथा है, जो न अतीत की ओर मुड़ती है और न उसकी ओर से मुँह मोड़ती है। भारतीय लोकभूमि पर विश्व-मानव के अन्तर-बाह्य विकास की परिकल्पना इसमें चित्रित हुई है। पन्त जी के शब्दों में लोकायतन ग्राम धरा के आँचल में जनभावना की छन्दों में बँधी युग जीवन की भागवत कथा है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में पौराणिक-ऐतिहासिक महाकाव्य

देवीप्रसाद गुप्त के शब्दों में—"समष्टिरूप से मानवतावादी जीवनदर्शन, सांस्कृतिक निष्ठाएँ, उत्थानमूलक जीवनादर्श, नारी चेतना के मुखरित स्वर, जनजागृति का उद्घोष, रचना-शिल्प की नवीनता तथा चरित्रों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की विशेषताएँ रही हैं।"[1]

आधुनिक महाकाव्यों में वर्णित रामचरित, कृष्णचरित्र, शिवचरित्र पर आधारित पौराणिक चरित्र महाकाव्य हैं तथा बुद्ध, महावीर, दयानन्द, विवेकानन्द, छत्रपति शिवाजी, महात्मा गाँधी, नेहरू आदि ऐतिहासिक महाकाव्य हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युग में ऐसे महाकाव्यों का सृजन युग की माँग के अनुसार हुआ है।

डॉ. लालताप्रसाद सक्सेना ने आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का वर्गीकरण सात विभागों में किया है।

"1. श्रद्धा मनु सम्बन्धी महाकाव्य—कामायनी आदि।
2. रामचरित सम्बन्धी महाकाव्य—साकेत, वैदेहीवनवास आदि।
3. कृष्णचरित सम्बन्धी महाकाव्य—प्रियप्रवास, कृष्णायन आदि।
4. नलचरित सम्बन्धी महाकाव्य—नलनरेश, दमयन्ती आदि।
5. बुद्धचरित सम्बन्धी महाकाव्य—सिद्धार्थ आदि।
6. अन्य महाकाव्य (क) पौराणिक महाकाव्य—पार्वती, तारक-वध, एकलव्य,
(ख) ऐतिहासिक महाकाव्य—चन्द्रगुप्त मौर्य, नूरजहाँ, मानवेन्द्र, सरदार भगतसिंह
7. महावीर चरित सम्बन्धी महाकाव्य—'वर्द्धमान' आदि।"[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही महावीर-चरित्र सम्बन्धी महाकाव्य प्रकाशित हुए हैं। स्वातन्त्र्योत्तरकालीन महाकाव्यों के इतिवृत्त-विधान के स्रोत इतिहास, पुराण और समकालीन जीवन रहे हैं। स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों में अधिकांश महाकाव्य चरित्रमूलक रहे हैं।

डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार—"आधुनिक युग के महाकाव्यों की तीन कोटियाँ दिखाई पड़ती हैं—

1. वे काव्य जिनमें महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है, किन्तु जिनमें दृष्टिकोण और रूपशिल्प सम्बन्धी कोई मौलिकता और नवीनता नहीं दिखलाई पड़ती।
2. वे काव्य जिनमें शैली की युगानुरूप नवीनता और दृष्टिकोण की मौलिकता

---

1. डॉ. देवीप्रसाद गुप्त : हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन, पृ. 67
2. डॉ. लालताप्रसाद सक्सेना : हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्त्व, द्वितीय भाग, पृ. 241

होते हुए भी महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाह का मोह नहीं छोड़ा गया है।

3. वे काव्य जिनमें परम्परागत प्रबन्धरूढ़ियों का सर्वथा त्याग किया गया है और नवीनता की धुन में प्रबन्धत्व और भावात्मकता का भी बहिष्कार कर दिया गया है।"[1] अतः महावीर-चरित्र सम्बन्धी आधुनिक महाकाव्य प्रथमकोटि के अन्तर्गत समाविष्ट होते हैं। जैसे 'वर्द्धमान', 'वीरायन' आदि। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र विषयक अनुशीलन करने के पूर्व तद्विषयक परम्परागत स्वरूप को जानना भी आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य में भगवान महावीर चरितकाव्य

आदिकाल से लेकर आजतक भगवान महावीर के चरित्र को लेकर अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। भगवान महावीर का चरित्र बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भी महाकाव्य का प्रेरणादायी, आदर्श और महान् धीरोदात्त नायक बना हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर का चरित्र तथा उनका जीवन-दर्शन आज भी उतना ही प्रसंगानुकूल, सन्दर्भसहित और उपादेय रहा है।

आदिकाल के रासो काव्यों में उपाध्याय अभयतिलक ने सं. 1307 में 'महावीररास' के नाम से चरितकाव्य लिखा है। 'रास' 'चरित' का पर्यायवाची शब्द है। सत्रहवीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण कृति 'महावीर धवल' है। जयपुर में विशाल जैन साहित्य के लेखन की सुदीर्घ परम्परा रही है। कवि बुधजन ने 'वर्द्धमानपुराण' का छन्दोबद्ध अनुवाद किया। खुशालचन्दकाला ने 'उत्तरपुराण' का पद्यानुवाद किया। इस तरह राजस्थानी भाषा के साहित्य में भगवान महावीर को लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया।

भक्तिकाल में सं. 1600 के आसपास पद्मकवि ने 'महावीर' काव्य रचा। रीतिकाल में नवलराय खण्डेलवाल ने 'वर्द्धमान चरित्र' लिखा। आधुनिक काल में आलोच्य महाकाव्यों के अतिरिक्त मूलदास मोहनदास निमावत ने 'वीरायन' नामक महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित गुजराती में सन् 1952 में प्रकाशित किया है। यति मोती हंसजी ने 'तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान' नाम से सं. 2016 में काव्य रचना प्रकाशित की है, जो विशेष रूप से महाकाव्य की कोटि में नहीं आती। श्री हरिजी ने 'महावीर' नामक काव्य रचना की है, जो अब तक अप्रकाशित है। श्री गणेशमुनि ने 'विश्वज्योति महावीर' नामक काव्य सन् 1975 में प्रकाशित किया है। लेकिन वह महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार नहीं है।

---

1. डॉ. शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ. 689

उपर्युक्त प्रबन्ध काव्य विशेष रूप से द्विवेदीयुग में अथवा द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तिवाले कवियों द्वारा लिखे गये। इस विभाग के अन्तर्गत डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने महावीरचरित्र सम्बन्धी 'वर्द्धमान' आदि महाकाव्यों को विशेष महत्त्वपूर्ण काव्य माना है।

भगवान महावीर चरित्र विषयक आधुनिक महाकाव्य

हिन्दी साहित्य में भगवान महावीर के चरित्र विषयक काव्यों की रचना आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अखण्ड रूप में अपभ्रंश चरित काव्य की पद्धति पर पौराणिक शैली में होती आ रही है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में भी महावीर-चरित्र विषयक साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित हुआ है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश से गुजरकर हिन्दी साहित्य में महावीर-चरित्र महाकाव्यों की परम्परा अखण्ड रूप में प्रवहमान रही है।

आधुनिक काल के हिन्दी महाकाव्यों में महावीर-चरित विषयक महाकाव्यों में अनूप शर्मा का 'वर्द्धमान' महाकाव्य प्रथम महाकाव्य है। श्रीमती इन्दुराय ने निम्नांकित महाकाव्यों का उल्लेख किया है। कवि राजधरलाल जैन केवलारी कृत 'वीर चरित्र', कवि धन्यकुमार जैन 'सुधेश' कृत 'परमज्योति महावीर', कवि नाथूलाल त्रिवेदी का 'महावीर चरित्रामृत' आदि महाकाव्य भी प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. दिव्यगुणाश्री ने अपने शोधप्रबन्ध में निम्नलिखित प्रबन्ध काव्यों का उल्लेख किया है।

"(1) अनूप शर्मा कृत 'वर्द्धमान', 1951 ई., भारतीय ज्ञानपीठ काशी।
(2) डॉ. रामकृष्ण शर्मा कृत 'भगवान महावीर', भरतपुर सरस्वतीसदन प्रकाशन।
(3) अभयकुमार यौधेयकृत 'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र', 1976 ई., मेरठ।
(4) रघुवीरशरण 'मित्र' कृत 'वीरायन' वीर निर्वाण, सं. 2500, मेरठ।
(5) विद्याचन्द्र सूरि कृत 'चरम तीर्थंकर' श्री महावीर, 1975 ई., राजगढ़।
(6) छैल बिहारी कृत 'तीर्थंकर महावीर', 1976 ई., इन्दौर।
(7) धन्यकुमार जैन 'सुधेश' कृत 'परमज्योति महावीर', 1961 ई., इन्दौर।
(8) माणिकचन्द कृत 'जयमहावीर', 1986 ई., बीकानेर।
(9) हजारीमल जैन कृत 'त्रिशलानन्दन महावीर' साहित्यसदन, झाँसी।
(10) कवि नवल शाह कृत 'वर्द्धमान पुराण', 1768 ई., देहली।"[1]

महावीर-चरित्र विषयक जो काव्य, महाकाव्य की कसौटी पर अर्थात् शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर कम-अधिक मात्रा में ठीक लिखे गये हैं ऐसे ही निम्नांकित छह महाकाव्यों का चयन भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण करने की दृष्टि से प्रस्तुत अनुशीलन में किया गया है।

---

1. डॉ. दिव्यगुणाश्री : हिन्दी के महावीर प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. 259

आधुनिक महावीरचरित महाकाव्य

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की परम्परा में भगवान महावीर चरित्रविषयक महाकाव्य का सृजन 1951 ई. में महाकवि अनूप शर्मा कृत 'वर्द्धमान' महाकाव्य से होता है। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी से हुआ है। समस्त इतिहासकारों ने एवं आलोचकों ने इसे प्रथम महावीर-चरित्र महाकाव्य के रूप में गौरवान्वित किया है। 1959 ई. में कवि वीरेन्द्र प्रसाद जैन कृत 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक महाकाव्य का प्रकाशन अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा) उत्तरप्रदेश के द्वारा हुआ, जिसका दूसरा संस्करण 1965 ई. में प्रकाशित हुआ। 1961 ई. में कवि धन्यकुमार जैन 'सुधेश' कृत 'परमज्योति महावीर' नामक महाकाव्य, श्री फूलचन्द जवरचन्द गोधा, जैन ग्रन्थमाला 8, सर हुकुमचन्द मार्ग, इन्दौर द्वारा प्रकाशित हुआ। सन् 1973 में कवि रघुवीरशरण 'मित्र' कृत 'वीरायन' नामक महाकाव्य का प्रकाशन सदर, मेरठ से हुआ। मार्च 1976 में कवि डॉ. छैलबिहारी गुप्त कृत 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य इन्दौर से प्रकाशित हुआ। अगस्त 1976 ई. में कवि अभय कुमार यौधेय कृत 'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र' नामक महाकाव्य, भगवान महावीर प्रकाशन संस्थान, जैननगर, मेरठ द्वारा प्रकाशित हुआ।

उक्त सभी महावीर-चरित्र रूप छह महाकाव्य 1951 ई. से 1976 ई. तक के बीच लिखे गये। अतः समय की दृष्टि से ये आधुनिक महाकाव्य हैं। आधुनिक महाकाव्य की परिवर्तित मान्यताओं के अनुसार भी ये आधुनिक महाकाव्य की कोटि में आ सकते हैं। इन महाकाव्यों के समस्त कवियों ने अपनी-अपनी काव्यरचना को महाकाव्य की संज्ञा, भूमिका में प्रदान की है। इस बीच में और भी महावीर चरित का काव्य रूप सृजन हुआ। मगर अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उक्त छह महाकाव्यों का चयन महावीर के चरित्र-चित्रण के अनुशीलनार्थ प्रतिनिधि रूप में किया है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र का स्वरूप क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है।

'वर्द्धमान' महाकाव्य

पं. पन्नालालजी के शब्दों में—"दिगम्बर आम्नाय में तीर्थंकर आदि शलाका पुरुषों के चरित्र के मूलस्तम्भ, प्राकृत भाषा के 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थ में मिलते हैं। इसके चतुर्थ महाधिकार में तीर्थंकर किस स्वर्ग से निकलकर आये, उनके नाम, नगरी और माता-पिता का नाम, जन्मतिथि, नक्षत्र, वंश, तीर्थंकरों का अन्तराल, आयु, कुमारकाल, शरीर की ऊँचाई, वर्ण, राज्यकाल, वैराग्य का निमित्त, चिह्न, दीक्षा, तिथि, नक्षत्र, दीक्षावन, षष्ठ आदि प्राथमिक तप, साथ में दीक्षा लेनेवाले मुनियों की संख्या, पारणा, कुमारकाल में दीक्षा ली या राज्यकाल में, दान में पंचाश्चर्य होना, छद्मस्थकाल, केवलज्ञान की तिथि-नक्षत्र-स्थान, केवलज्ञान की उत्पत्ति का अन्तराल-काल, समवसरण

का सांगोपांग वर्णन, विहार, निर्वाणतिथि और साथ में रहनेवाले मुनियों की संख्या आदि प्रमुख स्तम्भों का विधिवत् संग्रह है।"[1]

इसी संग्रह के आधार पर शलाकापुरुषों के चरित्र विकसित हुए हैं। जिनसेन ने अपने 'महापुराण' का आधार परमेष्ठीकवि कृत 'वागर्थ संग्रह' पुराण को बतलाया है। पद्मपुराण के कर्ता रविषेण और 'हरिवंश पुराण' के कर्ता जिनसेन ने भी तीर्थंकर आदि शलाका पुरुषों के विषय में जो ज्ञातव्य वृत्त संकलित किये हैं वे 'तिलोयपण्णत्ति' पर आधारित हैं।

वृत्तवर्णन के रूप में वर्द्धमान चरित के कथानक का आधार गुणभद्र का 'उत्तरपुराण' जान पड़ता है, क्योंकि 'उत्तर पुराण' के 74वें पर्व में वर्द्धमान भगवान की जो कथा विस्तार से दी गयी है, उसका संक्षिप्त रूप वर्द्धमान-चरित काव्यों में उपलब्ध होता है। इतना अवश्य है कि कवियों ने उस पौराणिक कथानक को महाकाव्य का रूप दिया है।

'वर्द्धमान' में महावीर-चरित्र

वर्द्धमान के सम्पूर्ण चरित्र को महाकवि अनूप ने सत्रह सर्गों में प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को पौराणिक शैली में छन्दोबद्ध करके कवि ने उसे महाकाव्य के रूप में चित्रित किया है।

प्रथम सर्ग—भगवान महावीर का गर्भस्थ रूप

भारत महिमा, विदेह-देश-प्रशंसा, क्षत्रिय-कुण्डपुर आदि स्थानों का विस्तार से वर्णन तथा प्रकृति-चित्रण है। भगवान महावीर के जन्म होने से पूर्व भारत वर्ष की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का चित्र स्पष्ट किया है। महाराज सिद्धार्थ के पराक्रम का वर्णन और महारानी त्रिशला देवी के रूप-सौन्दर्य का कलात्मक चित्रण किया है। त्रिशला देवी की सर्वांग छवि को चित्रित करते हुए महारानी का नख-शिख एवं शिख-नख वर्णन कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है, और अन्त में महारानी त्रिशला देवी के गर्भ में भगवान महावीर के गर्भस्थ होने का संकेत किया है।

दूसरा सर्ग—भगवान महावीर के माता-पिता

प्राणत नामक कल्प से च्युत होकर विक्रमीय संवत् 553 वर्ष पूर्व आषाढ़ शुक्ला षष्ठी की मध्य रात्रि के समय कुण्डपुर में त्रिशला की कुक्षि में भगवान महावीर अवतीर्ण हुए। पूर्वजन्म में वे स्वर्ग में अच्युतेन्द्र थे। महावीर के रूप में उनकी आत्मा की त्रिशला के गर्भ में स्थापना हुई। गर्भधारणा के समय कुबेर द्वारा रत्नवर्षा हुई।

---

1. असगकृत वर्द्धमान चरितम् की प्रस्तावना, पृ. 22 से उद्धृत।

आषाढ़ की वर्षा ऋतु का सुन्दर चित्रण किया है। जन्म के पूर्व छः मास पहले से ही उनके भवन पर रत्नों की वर्षा होने लगी। राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला देवी के प्रेमालाप का तथा उनकी क्रीडा का सरस वर्णन किया है।

तीसरा सर्ग—षोडशस्वप्न

मध्यरात्रि के समय का प्रकृति-चित्रण किया है। महारानी त्रिशला देवी को दिखे सोलह स्वप्न और उनके फल का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत है। इन स्वप्न-दर्शन का फल स्वप्नज्ञों ने यह बतलाया कि यथासमय त्रिशला देवी के गर्भ से महान् चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकर का जन्म होगा। जब से भगवान महावीर महारानी त्रिशला के गर्भ में अवतीर्ण हुए, तभी से उनके पिता की राज्यसत्ता बढ़ने लगी, उनका भण्डार धन-धान्य से परिपूर्ण होने लगा।

चौथा सर्ग—स्वप्न फलकथन

नव प्रभात, उषा सम्बोधन, त्रिशला का कौतुक वर्णन, राज्य सभा में स्वप्न-कथन तथा उसका फलादेश आदि का विस्तृत वर्णन है। सिद्धार्थ के अन्तःपुर में आनन्दोत्सव मनाने का चित्रण है।

पाँचवाँ सर्ग—सिद्धार्थ का प्रेमवार्तालाप

इसके प्रारम्भ में शरद् ऋतु का वर्णन बहुत ही मनोहर ढंग से किया है। सिद्धार्थ का अन्तःपुर में प्रवेश और राज दम्पती के प्रेमालाप का चित्रण है।

छठा सर्ग—त्रिशला की दिनचर्या

भगवान महावीर के गर्भ में आने पर किस प्रकार कुमारिका देवियाँ उनकी माता की सेवा-शुश्रूषा करती हैं, और कैसे-कैसे प्रश्न पूछकर उनका मनोरंजन करती हैं और अपने ज्ञान का संवर्धन करती हैं, यह बात बड़ी अच्छी तरह से प्रकट की गयी है। त्रिशला देवी की गर्भकालीन दशा के वर्णन के साथ ही कवि ने हेमन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। गर्भावस्था में त्रिशला की दिनचर्या का विस्तार से वर्णन किया है।

सातवाँ सर्ग—गर्भमहोत्सव

वसन्तऋतु का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि जिसमें उसके ऋतुराज होने का कोई सन्देह नहीं होता।

> "वसन्त-दूती मधु-गायिनी पिकी, उपस्थिता मंजु रसाल-डाल पै
> अमन्द वाणी यह बोलने लगी, वसन्त आया, ऋतुराज आ गया।"
>
> (वर्द्धमान, पृ. 201)

उसके पश्चात् राजकीय उपवन के सौन्दर्य का चित्रण करके उसमें त्रिशला के विहार का चित्रण है। राजा उदयन की पुष्प-शोभा, हंस, कोकिल, भ्रमर, तितली आदि के प्रति सम्बोधन करके विश्व सौन्दर्य के चित्रण का आभास दिखलाया है। अन्त में वसन्त ऋतु की सन्ध्या का मनोहारी चित्रण अंकित है।

आठवाँ सर्ग—जन्म-महोत्सव

वि. सं. 542 वर्ष पूर्व चैत्र सुदी तेरस की मध्यरात्रि में भगवान का जन्म हुआ। उनके प्रभाव से क्षत्रिय कुण्डपुर ही नहीं, सारा संसार लोकोत्तर प्रकाश से पूर्ण हो गया और समस्त प्राणी मात्र ने अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया। जन्म के समय स्वर्ग में इन्द्रासन कम्पित हो उठा, और उसी समय देवकुमारियाँ तथा देवसमूह जन्मोत्सव में भाग लेने के लिए भूतल पर आये। जन्म के बारहवें दिन नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ और उनका नाम वर्द्धमान रखा गया। प्रस्तुत सर्ग में भगवान महावीर का जन्म तथा जन्म-दिवस का उत्सव-वर्णन, दिव्य संगीत, भावी जीवन का आभास, जन्म-प्रभाव, आनन्दोत्सव, बालदर्शन तथा बालकाल की लीलाओं का चित्रण है।

भगवान महावीर का रंग गोरा था। उनके दोनों कपोल गुलाब के समान थे, हाथों में सोने के खिलौने थे, दोनों पैर निरन्तर हिलते थे। वह दृश्य अत्यन्त आकर्षक था। उनके चेहरे की कान्ति स्वर्गीय प्रभा के समान थी। उनकी आँखें राजा के नेत्र के समान, भौंएँ भँवरों के समान थीं। त्रिशला के मुख की तरह उसके हनु, ओठ और भाल थे।

एक वयोवृद्ध ने बालक को देखते ही कहा—

"नृपाल! लोकोत्तर पुत्र आपका, अपूर्व होगा बल-कीर्ति-धर्म में।"

(वही, पृ. 246)

बालक वर्द्धमान चलने लगे और साथ-साथ उसकी बुद्धि भी विकसित होती गयी। आठवें वर्ष में उसे विश्व के पदार्थों का ज्ञान हुआ, समस्त विद्याएँ हृदयंगम हुईं, सर्व कलाओं का ज्ञान हुआ। उसके सान्निध्य में ग्रीष्म काल भी शीतकाल लगता था। इस प्रकार महावीर के बाल्यकाल का वर्णन अनूप कवि ने श्रद्धा और भक्ति-भाव से किया।

नवम सर्ग—किशोर महावीर

अनूप कवि ने वर्द्धमान की बाल-क्रीड़ाओं का मनोरम चित्रण किया है। सर्ग के प्रारम्भ में ग्रीष्म ऋतु का पारम्परिक पद्धति से चित्रण है और उसके बाद आमली क्रीड़ा का चित्रण है। एक बार जब कुमार महावीर आमलकी नामक खेल खेल रहे थे तब इन्द्र द्वारा प्रेरित एक संगमदेव उनके साहस तथा सामर्थ्य की परीक्षा लेने आया। वह

सर्प बनकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और फुंकारने लगा। दूसरे सभी बालक भयभीत हो गये, परन्तु कुमार ने उसका दमन कर दिया–

> "स-वेणु जैसा अहि-तुण्ड गारुडी, करे वशीभूत भुजंग-राज को
> किया उसी भाँति जिनेन्द्र ने उसे, नितान्त काकोल-विहीन दीन भी।"
>
> (वही, पृ. 266)
>
> "उसी घड़ी से जग में जिनेन्द्र की, सुकीर्ति फैली जन-चित्त मोहिनी,
> न नाम से केवल वर्द्धमान के, सभी महावीर पुकारने लगे।"
>
> (वही, पृ. 267)

राजकुमार की बाल्यावस्था में अनेक ऐसी घटनाएँ हुईं जो वास्तव में चमत्कारपूर्ण कही जा सकती हैं। एक घटना और है, वह नागदेव एक बालक बनकर अन्य बालकों के साथ खेल में मिल गया तथा कुमार को अपनी पीठ पर बिठाकर दौड़ने लगा। दौड़ते-दौड़ते उसने विक्रिया से अपने शरीर को उत्तरोत्तर बढ़ाना शुरू कर दिया। वीरकुमार उस देव की चालाकी को समझ गये। उन्होंने उसके पीठ पर ज़ोर से एक मुट्ठी मारी, जिससे उस छद्मवेशी का गर्व नष्ट हो गया। उसने अपना रूप संकुचित किया और अपना यथार्थ रूप प्रकट करके उनसे क्षमा-याचना की और कहने लगा–

"भगवन्, मैं इन्द्र द्वारा प्रेरित एक देव हूँ। मैं आपकी परीक्षा लेने भेजा गया था। अब प्रशंसक बनकर जा रहा हूँ। आप सत्यमेव महावीर हैं।" त्रिलोक में उनकी स्तुति होने लगी। लेकिन महावीर इस प्रशंसा से गर्वित न होकर सदैव आत्मचिन्तन में मग्न रहते थे।

दसवाँ सर्ग–युवक महावीर का आत्मचिन्तन

दसवें सर्ग में ऋजुबालिका नदी का वर्णन, सन्ध्या-समय का वर्णन, श्मशान दृश्य, सान्ध्य तारा आदि प्रकृति-वर्णन के प्रसंगों का चित्रण है। इनके साथ ही वर्द्धमान के आत्मचिन्तन, जीवन-विमर्श तथा वैराग्यमूलक प्रवृत्तियों के अनुसार प्रसंगों का चित्रण है।

ग्यारहवाँ सर्ग–वैराग्य भाव

युवक वर्द्धमान की वैराग्यभावना ज्ञान से निःसृत थी। वे करुणा की मूर्ति थे। वे सोचते हैं–

> "दया महा उत्तम वस्तु विश्व में, दया सभी पै करना स्व-धर्म है,
> दया बनाती जग सह्य जीव को, दया दिखाना अति उच्च कर्म है।"
>
> (वही, पृ. 295)

भगवान महावीर का चिन्तन दया पर आधारित है।

बारहवाँ सर्ग—विवाह-प्रस्ताव

24 वर्ष की आयु में कुमार की विवाह-चर्चा माँ-बाप प्रारम्भ करते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय भगवान महावीर को अविवाहित मानते हैं, परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय उनको विवाहित मानते हैं। कुछ भी हो, विवाह होने तथा न होने से महावीर की वैयक्तिक महत्ता पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रस्तुत महाकाव्य साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से नहीं लिखा गया है। अतः कवि अनूप ने यहाँ अपनी समन्वय दृष्टि का परिचय दिया है। कवि ने महावीर का विवाह यशोदा के साथ और प्रियदर्शना की प्राप्ति सपनों में दिखलायी और जागने पर महावीर यह संकल्प करते हैं—

"विवाह हो? दिव्य विवाह क्यों न हो?, बरात हो? देव समाज क्यों न हो?
बने नहीं पाणिगृहीत मुक्ति क्यों?, न देव हों श्रीवर मण्डलेश क्यों?"
(वही, पृ. 368)

इस प्रकार कवि ने मुक्ति रूपी स्त्री का महावीर को पति मानकर भगवान महावीर की प्रशंसा की है।

तेरहवाँ सर्ग—अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन

बारह प्रकार की भावनाओं की बार-बार भावना होने का नाम द्वादश अनुप्रेक्षा है। इन वैराग्यदायिनी द्वादश (बारह) अनुप्रेक्षाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनमें ऐसा चिन्तन किया जाता है कि जीव अकेला जन्म लेता है और इसका मरण भी एकाकी होता है। इस लोक में राग-द्वेष अनित्य है और राग-द्वेष में संसार क्षणभंगुर है। इस अनित्य विश्व में केवल निज शुद्धात्मा शरण है। आत्मा के शुद्ध स्वभाव के आश्रय से ही आत्मा की उपाधिजन्य अशुद्धता का अभाव हो सकता है। अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरकर हम आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जिससे आत्म-कल्याण होता है और जो लोक में दुर्लभ है। महावीर के हृदय में जन-जन की तात्कालिक स्थिति को देखकर जो विचार उत्पन्न हुए हैं, वे बड़े ही मार्मिक एवं हृदयद्रावक हैं। इस प्रकार अनेक दृश्यों का चित्रण करके कवि ने बड़ा ही कारुणिक, मर्मस्पर्शी एवं उद्बोधक वर्णन किया है।

चौदहवाँ सर्ग—दीक्षासमारोह

कवि ने काल-महिमा का चित्रण किया है। महावीर की चिन्तन-वैराग्य भावना को व्यक्त किया है। जगत् की विकट परिस्थितियों को देखकर एक दिन महावीर भरी जवानी में घर-बार छोड़कर, वन में जाकर प्रव्रजित हो जाते हैं। महावीर के अट्ठाईसवें वर्ष में उनके माता-पिता का देहान्त हो चुका था। अतः संसार से विरक्ति होनी स्वाभाविक थी, परन्तु आप्तजनों के अनुनय करने पर उन्होंने दो वर्ष के लिए गृहत्याग

का निश्चय स्थगित कर दिया था। और तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना ध्यान दीन-दुखियों के उद्धार की ओर दे दिया और प्रतिदिन दान दे-देकर अपनी सारी सम्पत्ति समर्पित की। धन-धान्य, राज्य परिवार आदि से अपना चित्त हटाकर राज्य वैभव का सम्पूर्ण त्याग किया। मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन चौथे प्रहर में चन्द्रप्रभा नामक पालकी में सवार होकर राजभवन से ज्ञातृखण्ड नामक उद्यान में पहुँचे और वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे वस्त्राभूषण छोड़कर पंचमुष्टिक केशलोच के अनन्तर अपने भावी जीवन का दिग्दर्शन कराने वाली यह प्रतिज्ञा की--

"मैं समभाव को स्वीकार करता हूँ, और सर्व सावद्य योग का परित्याग करता हूँ। आज से यावज्जीवन कायिक, वाचिक तथा मानसिक सावद्य योगमय आचरण न तो स्वयं करूँगा और न करनेवाले का अनुमोदन करूँगा।" (वर्द्धमान, प्रस्तावना, पृ. 29) इस प्रकार दीक्षा-समारोह बड़े ठाठ से सम्पन्न हुआ। उक्त प्रतिज्ञा करते ही महावीर को 'मनःपर्यय' नामक ज्ञान प्राप्त हुआ।

पन्द्रहवाँ सर्ग—तपश्चर्या

महावीर के तपस्वी जीवन का सविस्तार वर्णन है। दीक्षा लेकर महावीर ने बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की। तपस्वी जीवन में महावीर को पूर्वभव का ज्ञान होता है। तपस्या काल में महावीर को नाना प्रकार के दुःख, कठिन विपत्तियों तथा विपदाओं का सामना करना पड़ा। सर्प, अग्नि, जल आदि के भयों को धैर्यपूर्वक सहन करना पड़ा। राजदण्ड से भी वे न बच सके। चोर समझकर राजकर्मचारियों ने कई बार उन्हें दण्डित किया, परन्तु उन सब कष्टों को भगवान महावीर धैर्य के साथ सहते रहे। वे किसी भी अवांछित जगह नहीं ठहरते थे और भिक्षा के लिए किसी गृहस्थ से याचना भी नहीं करते थे। नित्य ध्यान में लीन रहकर मौन व्रत का पालन करते थे। दिन में केवल एक बार भोजन हाथ में लेकर करते थे। एक प्रसंग में गोशालक नाम का एक साधु उनसे मिलने आ गया। वह साधु धूर्त था और कुछ दिनों के बाद भाग गया। इस प्रकार महावीर तपश्चर्या से अपने पूर्व कृत कर्मों का क्षय करने लगे। उपसर्ग तथा परीषहों को सहते हुए विविध ध्यान तप आदि का निरन्तर अभ्यास करते रहे। बारह वर्ष तपश्चर्या के बाद उनके अन्तःकरण के क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का अभाव हो गया और उनमें क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच आदि आत्मिक गुणों का विकास हुआ। इस प्रकार उनका जीवन लोकोत्तर एवं निर्मल हो गया।

एक दिन जम्भीय नामक गाँव के समीप ऋजुबालिका नदी के तट पर देवालय के समीप शाल-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित हो गये। शीघ्र ही शुक्लध्यान के द्वारा उन्होंने चार घातिया कर्मों का क्षय किया। उसी समय वैशाख शुक्ल दशमी के चौथे प्रहर में महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अब महावीर सर्वज्ञ और वीतरागी हो गये।

सम्पूर्ण लोकालोकान्तर्गत भूत-भविष्य, स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त पदार्थ उनके ज्ञान में आलोकित हो गये।

महावीर का विहार चम्पापुर की ओर हो रहा था। रास्ते में उन्हें एक चन्दना नाम की दासी हाथ में थाली लेकर उनके आहार के लिए प्रतीक्षा कर रही थी। सती चन्दना को कामुक यक्ष जबरदस्ती से उठा ले गया था। बीच में भय से उसने उसे जंगल में छोड़ दिया। एक भील उसे व्यापारी के यहाँ बेच देता है। व्यापारी की पत्नी ईर्ष्यावश उसका सर मुँड़वाती है, पैरों में शृंखला डालती है। सती चन्दना यह परीषह सहन करती रही और जिनेन्द्र की उपासना करते-करते महावीर के द्वारा सम्मानित हुई, वह बन्धनहीन हो गयी। इस प्रकार अनेक दुःखी लोग, किसान, कहार, चमार आदि अपने-अपने प्रश्न लेकर महावीर के पास पहुँचते और समाधान पाते।

सोलहवाँ सर्ग—केवलज्ञान-प्राप्ति

भगवान महावीर के जृम्भिका-प्रवेश के वर्णन के साथ ही उनके केवलज्ञान, प्रभाव का चित्रण किया है। धार्मिक, आध्यात्मिक चिन्तन को कवि ने समर्थ शब्दावली में पद्यबद्ध किया है।

सत्तरहवाँ सर्ग—निर्वाणमहोत्सव

पावापुर में एक बृहद् यज्ञ चल रहा था। सोमिलाचार्य नामक एक विद्वान् ब्राह्मण उसके यजमान थे। यज्ञ में देश-देशान्तर के बड़े-बड़े ब्राह्मण आये थे। उसी समय महावीर को केवलज्ञान की उपलब्धि हुई थी। उस ब्राह्मण सभा का एक प्रमुख इन्द्रभूति गौतम तत्त्वसम्बन्धी जिज्ञासा लेकर भगवान महावीर के समवसरण में जाता है। वहाँ पहुँचते ही उसे लोक-अलोक, जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष आदि तत्त्वों का अस्तित्व समझ में आता है। नरक में जीव क्यों जाता है? तिर्यंच प्राणियों के कष्ट कौन से हैं? इन प्रश्नों का भी समाधान हो जाता है। देवगति में पुण्य के समाप्त होते ही संसार की नाना योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। अतः स्वर्ग पाना मनुष्य का अन्तिम ध्येय नहीं है। भगवान ने मनुष्य जन्म को अधिक महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ बताया है। क्योंकि इसी गति में मनुष्य पुरुषार्थ कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए पाँच अणुव्रतों, महाव्रतों, सातशील तथा सम्यक् धर्म का पालन करना चाहिए। इस उपदेश से प्रभावित होकर उस यज्ञ में आमन्त्रित ग्यारह प्रधान ब्राह्मणों ने भगवान से दीक्षा ग्रहण की। और समस्त ब्राह्मणों का यह विश्वास हो गया कि महावीर का कथन ही सच्चे अर्थों में वेद है। अन्ततः 4411 ब्राह्मणों ने भगवान के श्रमण धर्म को स्वीकार किया। तदनन्तर तीस वर्ष तक भगवान महावीर ने विहार किया तथा निकटवर्ती प्रदेशों में घूम-घूमकर दिव्यध्वनि रूप उपदेश दिया। अनेक राजाओं तथा विद्वानों को दीक्षा दी। जीवन के

अन्तिम समय में वे पुनः पावापुरी में आये और कार्तिक कृष्णचतुर्दशी की रात के अन्तिम प्रहर में कर्म-बन्धन से मुक्त होकर उन्होंने विक्रमीय संवत् पूर्व 470 में सिद्ध पद प्राप्त किया।

निष्कर्ष

'वर्द्धमान' महाकाव्य जिस उद्देश्य और दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए लिखा गया है, उसमें कवि अनूप को सफलता प्राप्त हुई है। कवि अनूप का उद्देश्य है—वर्द्धमान के चरित्र का यथार्थ चित्रण कर उनके द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण करना। उद्देश्य का निर्वाह करते समय कवि ने काल्पनिकता को प्रधानता दी है। प्रस्तुत महाकाव्य में दिगम्बर सम्प्रदाय और श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार भगवान महावीर की चरित्र सम्बन्धी घटनाओं, प्रसंगों, गर्भान्तर, विवाह, दीक्षा, तपश्चर्या आदि में समन्वित दृष्टिकोण अपनाकर चरित्र-चित्रण किया है। भगवान महावीर के उपदेशों के सन्दर्भ में दिगम्बर, श्वेताम्बर मत में भिन्नता नहीं है, लेकिन उपदेशों की चिन्तनधारा में ब्राह्मण विचारधारा से भिन्नता होते हुए भी महाकवि अनूप ने उसमें भी समन्वयवादी दृष्टि से प्रतिपादन कर भगवान महावीर की प्रतिमा विश्वमानवतावादी, सर्वोदयवादी के रूप में उभारने का प्रयास किया है।

'वर्द्धमान' महाकाव्य, परम्परागत लौकिक स्थूल दृष्टि से एक शिथिल रचना कही जा सकती है। और यह भी कहा जा सकता है कि उसमें जीवन को द्वन्द्वातीत, चरित्र के घात-प्रतिघात से मुक्त और एकांगी जीवन दृष्टि को ही व्यक्त किया गया है। लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से 'वर्द्धमान' महाकाव्य में भगवान महावीर के जीवन में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के बीच महान् संघर्ष का इतिहास है। समस्त विकारों पर विजय पाने के लिए मनुष्य को व्रत, संयम, अपरिग्रह, तप, ध्यान आदि सहित कठोर साधना करनी पड़ती है। भगवान महावीर पलायनवादी नहीं थे। वे मानवी दुःखों के कारणों को समूल नष्ट करने में प्रवृत्त हुए थे, और उन्होंने शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष आचरण के द्वारा मार्ग बताया। साधना में अनेक घात-प्रतिघातों, द्वन्द्वों का सामना करना पड़ता है। अतः सूक्ष्म दृष्टि से भगवान महावीर का चरित्र एकांगी न होकर सर्वांग परिपूर्ण प्रतीत होता है।

यह मानना पड़ेगा कि 'वर्द्धमान' महाकाव्य की भाषा दुरूह, संस्कृतनिष्ठ, दुर्बोध है। भाषा शैली की दृष्टि से महाकाव्यात्मक सौन्दर्य का अभाव है। फिर भी मुमुक्षुओं की दृष्टि से आत्मव्यक्तित्व का चरम विकास करने के लिए एक सफल कलाकृति है।

'तीर्थंकर भगवान महावीर' महाकाव्य

सन् 1959 में कवि वीरेन्द्रप्रसाद जैन प्रणीत 'तीर्थंकर भगवान महावीर' महाकाव्य का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। छह वर्ष के अन्तराल पर यत्किंचित् परिवर्धन के

साथ सन् 1965 में 'तीर्थंकर भगवान महावीर' महाकाव्य का द्वितीय संस्करण 'श्री अखिल विश्व जैन मिशन' अलीगंज से प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत महाकाव्य में कुल 'आठ' सर्ग हैं, जिनका नामकरण क्रमशः पूर्वाभास, जन्म-महोत्सव, शिशुवय, किशोरवय, तरुणाई—विराग, अभिनिष्क्रमण—तप तथा निर्वाण एवं वन्दना रूप में किया गया है। सर्ग शीर्षकों से ही तदन्तर्गत निहित कथ्य का आभास मिलता है। क्योंकि कवि ने लोकरंजक भगवान महावीर के पावनचरित्र का सरल, सरस भाषा में मनोग्राही चित्रण किया है। विवेच्य महाकाव्य में छन्द संख्याबद्ध नहीं हैं।

महाकाव्य के परम्परागत लक्षण का अनुकरण करते हुए कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन क्रम का निर्वाह किया है। काव्य में आद्योपान्त गेयता और लयात्मकता का भी ध्यान रखा गया है।

'तीर्थंकर भगवान महावीर' में महावीर-चरित्र

वर्द्धमान के सम्पूर्ण चरित्र को वीरेन्द्रप्रसाद जैन ने अपने 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक महाकाव्य में आठ सर्गों में प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को पौराणिक शैली में छन्दोबद्ध करके कवि ने उसे महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रथम सर्ग—पूर्वाभास

पूर्वाभास में कवि ने भगवान महावीर के जन्म के पूर्व वैशाली नगर में जो उत्साहपूर्ण वातावरण था, उसका काव्यमय शैली में चित्रण किया है। प्रकृति चित्रण के साथ, वैशाली नगरी की सामाजिक, सांस्कृतिक गरिमा का भी सरस चित्रण है। रानी त्रिशला के सोलह सपनों का चित्रण तथा उसके फलों का सविस्तार वर्णन किया गया है। पूर्वाभास के अन्त में कवि कहता है—

"यह धन्य भाग्य जो धरती पर आएँगे।
भावी कुमार निज जो दुःख दूर करेंगे।।
ऐसा ही तो स्वप्नार्थों से भासा है।
यह ही तो अपनी चिर संचित आशा है।"

(तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 30)

द्वितीय सर्ग—जन्मोत्सव

भगवान महावीर का जन्मोत्सव सिर्फ़ भूतल पर ही नहीं, देवलोक में भी मनाया गया। भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिष्कवासी, कल्पवासी, वैमानिक देव सभी भूतल पर जन्मोत्सव मनाने के लिए मानवीय रूप धारण करके अवतरित हुए। शिशु मुख देखने के लिए इन्द्र ने अपने सहस्र नेत्र बनाये।

मायावी बालक को सोयी हुई त्रिशला के पास रखकर शिशु महावीर को इन्द्र सुमेरु पर्वत पर ले जाकर जलाभिषेक करते हैं। उस समय बालक का रूप-सौन्दर्य अप्रतिम था। जन्मोत्सव मनाने के बाद इन्द्र, शची बालक को कुण्डग्राम ले जाते हैं और मायावी बालक को हटाकर उसकी जगह शिशु महावीर को रखते हैं। समस्त देवगण स्वर्गलोक लौट जाते हैं। वैशाली नगर में दस दिन तक जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

तृतीय सर्ग—शिशुवय

शिशु वर्द्धमान दिनोंदिन बढ़ता जाता है। वे अभी बोल नहीं पाते, लेकिन हर चीज के प्रति जिज्ञासा बनी रहती है। राजनगर में रास्तों पर घूमने में बालक को बड़ा हर्ष होता था। माता त्रिशला को अपने बेटे का उनसे दूर रहना बहुत दुखदायक लगता था। वह महल में सदैव उसकी प्रतीक्षा में रहा करती है।

बालक में कुशलतम शासक बनने की क्षमता पिता को नजर आती है। बाल सुलभ चेष्टा देखकर वह मन मोहित होता था। छोटी अवस्था में बालक स्वयं खिलौने तैयार करता था, गुलदस्ते बनाता था, झण्डियाँ बनाता था। राजा-रानी ये सब देखकर फूले नहीं समाते थे।

माँ उसे कहानियाँ सुनाती रहती। शिशु वर्द्धमान को सन्तों की कहानियाँ सुनना अच्छा लगता था। कवि इस तथ्य की ओर संकेत करता हुआ कहता है—

"मुझको तो भली लगी थी, उस दिन की क्षमा कहानी।
जिससे कि पार्श्व स्वामी के, जीवन की झाँकी जानी।" (वही, पृ. 68)

अतः माँ उसे ऋषभदेव के जीवन की कहानी सुनाती है। शिशु अत्यन्त मगन कर सुनता था।

चतुर्थ सर्ग—किशोरवय

किशोर अवस्था में बच्चों में जो स्वच्छन्दता रहती है, जो हास-उल्लास चलता रहता है और जो निर्द्वन्द्वता रहती है, उनका अत्यन्त सुन्दर चित्रण सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने किया है। किशोर वर्द्धमान अपने समवयस्क मित्रों के साथ नगर के बाहर खेलने गये थे। कवि इस प्रसंग का वर्णन करता है—

"इन बच्चों की टोली के हैं, अधिनायक बालक वर्द्धमान।"
(वही, पृ. 74)

बालक वर्द्धमान सखाओं के साथ जब खेल रहा था, उस समय विजय और संजय दो चारण ऋद्धि मुनि वहाँ से गुजर रहे थे। उनके मन में एक शंका सताती थी कि जीव मरण के बाद कहाँ जाता है? स्वर्ग और नरक ये हैं या नहीं? या केवल सिर्फ

यह लोक ही है? जब उन्होंने किशोर वर्द्धमान के मुखमण्डल को देखा, उसी समय उनकी शंका दूर हुई। कवि इस प्रसंग का वर्णन निम्न पंक्तियों में करता है—

"युग मुनिवर ने इनको पाया, सु-विचक्षण बालक मेधावी।
झट सोचा 'सन्मति' नाम सुभग, गति भेद सकी गति मायावी॥"
(वही, पृ. 75)

तभी से उनका दूसरा नाम 'सन्मति' जगविख्यात रहा। बालक वर्द्धमान अपने मित्रों के साथ मुनियों की वन्दना करता है और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करता है। घर लौटने पर यह घटना माता-पिता गुरु-जनों को जब मालूम होती है तब उन्हें बहुत ही आश्चर्यजनक आनन्द होता है। किशोर वर्द्धमान के शिक्षक ने भी अपना यह मत जाहिर किया कि जो भी कुछ मैं उन्हें नयी बात सिखाता हूँ उसे पहले ही वह बात ज्ञात रहती है। वे स्वयं 'प्रज्ञावान' हैं। गुरु को लगता है बालक को क्या सिखलाया जाए, उनसे तो हमें ज्ञान प्राप्त होता है। बालक वर्द्धमान सतत अध्ययनशील रहता है। इस किशोर अवस्था में भी वह सदा सत्य बोलता है, अस्तेय व्रत का पालन करता है, ब्रह्मचर्य से रहता है और परिग्रह परिमाण भी रखता है। इस सदाचरण के परिणामस्वरूप उसमें साहस, बल और शौर्य दिन-ब-दिन बढ़ते जाते हैं। कवि इस प्रसंग में कहते हैं—

"उनके साधारण कृत्यों में, है वीर-वृत्ति दिखती सदैव।
पुरुषार्थ हेतु उद्यमी सदा, उनका आदर्श न रहा दैव॥" (वही, पृ. 77)

अतः बालक सन्मति की इस वीर प्रवृत्ति को देखते हुए संसार में उनका 'वीर' नाम प्रचलित हुआ। देवलोक में भी बालक सन्मति की वीरता की प्रशंसा होने लगी, लेकिन 'संगम' नामक देव को इस पर विश्वास नहीं हुआ और उसने सन्मति की वीरता की परीक्षा लेने के लिए काले भुजंग का रूप धारण किया और जहाँ बालक वर्द्धमान साथियों के साथ खेलता था, वहीं वह फुंकारने लगा। सभी साथी डर के मारे भाग गये, लेकिन बालक वर्द्धमान निडर होकर उस विषैले सर्प के फण पर खड़ा रहकर खेलता रहा। उधर बाल सखाओं ने राजमहल में जाकर माता-पिता को सर्प की घटना का वृत्तान्त कहा। सभी उस खेल के स्थल पर आये, तब उस विषैले भुजंग ने अपना असली रूप संगमदेव के रूप में प्रकट किया और बालक 'सन्मति' को अपने कन्धों पर बिठाकर उसकी प्रशंसा की। सबके सामने संगमदेव ने उसे 'महावीर' नाम से सम्बोधित किया।

"यह सन्मति केवल वीर नहीं, ये तो सच अतिशय धीर वीर।
हूँ नाम रख रहा 'महावीर', यह यथा नाम है तथा गुण॥" (वही, पृ. 84)

पंचम सर्ग—तरुणाई एवं विराग

युवा महावीर में यौवनसुलभ भावनाओं का संचरण हो रहा था। मन की चंचलता भी हो रही थी। लेकिन महावीर सूक्ष्म द्रष्टा होने के कारण इन काम-वासनाओं

से यौवन के आगमन से सचेत रहे और सोचते रहे—

"सोचते एकान्त में यों, वर्द्धमान प्रशान्त मुद्रा।
यह जवानी है नशीली, रच रही जो मदिर तन्द्रा॥" (वही, पृ. 97)

काम-वासना आत्मा का मूल स्वरूप नहीं है। धमनियों का यह नशा है। मनुष्य के विवेक ज्ञान पर ये यौवनसुलभ भाव आवरण डालते हैं, लेकिन यह जवानी शाश्वत नहीं है, क्षणभंगुर है। जवानी को उद्देश्य कर भगवान महावीर कहते हैं—

"हे जवानी! किन्तु मुझको, तू नहीं भरमा सकेगी।
तू न मेरे मर्त्य तन में काम-तरु पनपा सकेगी।" (वही, पृ. 97)

क्योंकि महावीर को विश्वास है कि उनका शुद्ध ज्ञान सच्चा साथी होने के कारण काम-वासना का उन्मत्त हाथी पास नहीं आ सकेगा। यह संसार क्षण-भंगुर है, दुःखमय है, मृत्यु अटल है, और शुद्धात्मा (परमात्मा) के सिवाय शरण में जाने योग्य कोई नहीं है। वे अकामी (वीतरागी) और सर्वज्ञ होने की शक्ति के कारण मुक्ति (मोक्ष)-मार्ग का हितोपदेश करते हैं। इस मुक्ति-मार्ग के पथ पर दृढ़ भाव से चलने के लिए वे बारह-भावनाओं का तथा शुद्धात्म स्वभाव का सूक्ष्म चिन्तन करते हैं।

युवा महावीर की उक्त वैराग्य अवस्था को देखते हुए माता त्रिशला और पिता सिद्धार्थ चिन्तित हो उठते हैं और उसका विवाह करना इष्ट समझते हैं। दूत के द्वारा राजाओं को सन्देश भेजते हैं और अनेक राज्यों से राजकुमारियाँ वहाँ पहुँचती हैं। उनमें से कलिंग देश के राजा की बेटी यशोदा, माता त्रिशला को वधू के रूप में पसन्द आयी। माता-पिता ने महावीर के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। माता-त्रिशला ने महावीर से कहा, किन्तु एकान्त में वे साधु के समान चिन्तन करते रहे। किसी भी प्रकार से वे विवाह के लिए तत्पर नहीं हुए।

षष्ठ सर्ग—अभिनिष्क्रमण एवं तप

इस सर्ग में कवि ने भगवान महावीर के अभिनिष्क्रमण एवं तप साधना की विवेचना विस्तार के साथ सरस शैली में की है। माता-पिता का आशीर्वाद लेकर प्रभु महावीर वन में पहुँचे और वहाँ पर मुनि-दीक्षा ग्रहण की—

"हुए त्यागी त्याग भूषण, वस्त्र वे दिग्वेष।
और लुंचित किये सारे, पंचमुष्टि केश॥" (वही, पृ. 129)

मुनिवेश में साधना करते समय प्रभु ने पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, बारह तप, धर्मध्यान के द्वारा आत्मबल विकसित किया। बारह साल मौन धारण करते हुए वर्द्धमान ने कठोर साधना की।

सप्तम सर्ग—केवलज्ञान एवं उपदेश

भगवान महावीर ने बारह वर्ष तक मुनिवेश में निर्दोष ढंग से कठोर तपश्चर्या की और अन्त में ऋजुकूला के तट पर शुक्लध्यान में मग्न रहे। परिणामस्वरूप उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

"द्वादश वर्षों तक अतिघोर तपस्या तपकर।
उपसर्गों को झेल, ठेल बाधाएँ दुस्तर॥" (वही, पृ. 151)

स्वर्ग के इन्द्रादि देवों ने विपुलाचल पर्वत पर प्रभु उपदेश के प्रसारण के लिए समवसरण सभा की, अलौकिक ढंग से रचना की। इन्द्र बटु का रूप धारण करके गौतम से शंका पूछने जाते हैं। प्रश्न की उलझन में पड़कर गौतम भगवान महावीर के समवसरण में आते हैं, और तत्काल गौतम को इन्द्र के प्रश्न के उत्तर प्राप्त होते हैं। ये भगवान महावीर के प्रथम गणधर होते हैं। गौतम गणधर के द्वारा शिष्यत्व के स्वीकृत होते ही भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी। और उन्होंने समवसरण में एकत्र सभी प्राणियों को उपदेश दिया। महावीर-वाणी को बारह अंगों एवं चौदह पूर्वों में गौतम गणधर गूँथते हैं। महावीर के चिन्तन का सार है—

"है प्रतिवस्तु अनेक धर्म की, निखिल विश्व में।
यों न सत्य के दर्शन होते, एक दृष्टि में॥
मिटते वाद-विवाद जगत् के स्याद्वाद में।
सप्तभंग नय दर्शाती 'सत्' निर्विवाद में॥" (वही, पृ. 160)

अष्टम सर्ग—निर्वाण एवं वन्दना

भगवान महावीर ने केवली दशा-अर्हन्त दशा में तीस साल तक स्थान-स्थान पर विहार करते हुए जन-साधारण को हितोपदेश दिया और आत्मोद्धार के पथ को निर्देशित किया। सामाजिक समता का समर्थन करते हुए, नारी के उद्धार के लिए उद्‌बोधन किया। अहिंसा, अनेकान्त और स्याद्‌वाद की दृष्टि अपनाकर व्रतों का आचरण करके संयम, त्याग, तप, ध्यान एवं रत्नत्रय की साधना से आत्मकल्याण करने के लिए प्रेरणा दी।

बहत्तरवें वर्ष के अन्त में भगवान महावीर का निर्वाण पावापुरी में हुआ। इन्द्रों ने वहाँ आकर निर्वाण-महोत्सव मनाया।

निष्कर्ष

'तीर्थंकर भगवान महावीर' काव्य कृति तीर्थंकर भगवान महावीर के आदर्श जीवन और बोधप्रद शिक्षाओं की परिचयात्मक छन्दोबद्ध कलाकृति है। आधुनिक हिन्दी कविता में भगवान महावीर के चरित्र पर जो महाकाव्य लिखे गये हैं उनमें कुछ

भ्रान्त एवं निराधार धारणाएँ भगवान महावीर के चरित्र को लेकर व्यक्त की गयी हैं। प्रस्तुत काव्य-कृति का सृजन करने का उद्देश्य कवि का यह रहा है कि भगवान महावीर का प्रमाणित जीवन चरित्र प्रस्तुत किया जाए।

प्रस्तुत काव्य में महावीर की चारित्रिक विशेषताओं एवं उनकी दार्शनिक विचारधारा मौलिक न होकर परम्परागत है। तीर्थंकर भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं, वे उसके प्रवर्त्तक हैं। जैनधर्म वैदिक हिंसक यज्ञ परम्परा के विरोध में स्थापन नहीं हुआ है। भगवान महावीर ने सिर्फ़ अपने युग की आवश्यकताओं को देखते हुए जैनधर्म का पुनरुद्धार किया। उनका यह कार्य मनुष्य मात्र के लिए विशेष उपकारी रहा है।

प्रस्तुत कृति के आकार को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि इसे खण्डकाव्य कहा जाए या महाकाव्य। 180 पृष्ठों की इस कृति में आठ सर्गों में अत्यन्त संक्षेप में महावीर के चरित्र एवं उपदेश को पौराणिक आख्यानों के आधार पर वर्णित किया है। शिल्प की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि कवि ने विविध छन्दों में रोचक ढंग से महावीर के चरित्र को प्रस्तुत किया है। काव्य शैली आकर्षक है, वाणी-विलास मात्र नहीं है। इसमें उदात्त भावनाओं को प्रांजल भाषा में व्यक्त किया गया है। शैलीगत सौन्दर्य, ध्वन्यात्मकता, स्पष्टता और प्रवाहमानता इस कृति का आकर्षण है। काव्य में भाव-चित्रण, विषय का निर्वाह, सरसता, साहित्यिक भाषा आदि का निर्वाह हुआ है। चरित्र का चित्रण पंचकल्याणकों के चित्रण द्वारा हुआ है।

'परमज्योति महावीर' महाकाव्य

प्रस्तुत महाकाव्य 'परमज्योति महावीर' सन् 1961 में इन्दौर से प्रकाशित हुआ है। कवि ने अपने इस महाकाव्य को करुण, धर्मवीर एवं शान्तरस प्रधान महाकाव्य कहा है। इसमें तेईस सर्ग हैं और 2519 छन्द हैं। मनुष्य क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों से समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ पूर्वक मन, वचन, कर्म इन तीन की सहायता से कृत, कारित, अनुमोदन इन तीन रूपों में अर्थात् 108 ($4 \times 3 \times 3 \times 3 = 108$) प्रकार से पाप किया करते हैं। इसी उद्देश्य से कवि ने महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में 108 छन्द रखे हैं। सर्गों की संख्या 23 ही निश्चित की है, क्योंकि महावीर के पूर्व 23 तीर्थंकर हो चुके हैं। इस महाकाव्य में भगवान महावीर के जीवन विषयक घटनाओं के सम्यक् निर्वाह के साथ तद्युगीन परिस्थितियों का सफल चित्रण किया है।

कथावस्तु की दृष्टि से अन्य महाकाव्यों से इसमें पृथकता है। केवल इसी महाकाव्य में भगवान महावीर के '42' चातुर्मासों और साधनाकाल का विशद वर्णन कर चरित्र नायक के चरित्र को सम्पूर्णता प्रदान की गयी है। आदि से अन्त तक केवल एक ही छन्द का प्रयोग है। सुबोध, सुकोमल और जन प्रचलित भाषा के प्रयोग के कारण भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद गुण सहज रूप में व्यक्त हुए हैं। महाकाव्य में

प्रसंगानुकूल आगत जैन पारिभाषिक शब्दों का सरल अर्थ परिशिष्ट 1 में दिया है। उसी प्रकार परिशिष्ट 2 और 3 में ऐतिहासिक स्थलों और व्यक्तियों का विवरण भी दिया है।

तात्पर्य यह है कि काव्यशास्त्रीय दृष्टि और महत् उद्देश्य इन दोनों दृष्टियों से प्रस्तुत महाकाव्य सफल रहा है। पं. नाथूलाल शास्त्री लिखते हैं—

"परमज्योति महावीर में महाकाव्य के लक्षण और गुण पाये जाते हैं। अभी तक भगवान महावीर के जीवन सन्दर्भ में जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें यह अपना अपूर्व और विशिष्ट स्थान रखता है।" (परमज्योति महावीर, प्रकाशकीय वक्तव्य) 'सुधेश' जी के गम्भीर तथा खोजपूर्ण अध्ययन के परिणामस्वरूप ही प्रस्तुत महाकाव्य है।

पहला सर्ग—वैशाली-कुण्डग्राम

निम्नांकित विषयों का विस्तार से विवेचन किया गया है—भारत भव्यता-विदेह विभव-कुण्डग्राम गरिमा-सिद्धार्थ शासन-त्रिशला देवी-दाम्पत्य दिव्यता। प्रस्तावना में 'सुधेश' जी ने संकेत किया है कि—

> "उनके ही मन की करुणा-सी, उनकी यह करुण कहानी है।
> यह मसि से लेख्य नहीं इसको, लिखता कवि-दृग का पानी है॥"
>
> (परमज्योति महावीर, पृ. 46)

इससे स्पष्ट होता है कि महाकाव्य करुण रस से ओत-प्रोत है। पहले सर्ग में भारत की गरिमा का चित्रण करते हुए विदेह वैभव तथा कुण्डग्राम के सौन्दर्य को चित्रित किया है। सिद्धार्थ शासन की प्रशंसा करते त्रिशला रानी के सौन्दर्य का नखशिख वर्णन प्रस्तुत किया है और दाम्पत्य प्रेम की दिव्यता को विशद किया है।

दूसरा सर्ग—च्यवन प्रसंग

स्वर्ग के देव अपने पुण्य के कारण सतत भोग विलास में मग्न रहते हैं, और धार्मिक विषयों में श्रद्धामय अभिरुचि रखते हैं। देवेन्द्र ने यह अवधिज्ञान से जाना कि अच्युतेन्द्र की आयु समाप्त हुई है और वह भूलोक पर नया जन्म लेगा। अमरेन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि सिद्धार्थ के महल पर रत्नवृष्टि करें, कारण अच्युतेन्द्र की आत्मा त्रिशला के गर्भ में आगमन करने वाली है। त्रिशला का गर्भाधान होने के कारण वह निद्रा में अत्यन्त सतेज और मोहक बन पड़ी थीं।

तीसरा सर्ग—त्रिशलामाता के षोडशस्वप्न

तीसरे सर्ग में निशीथ तम का चित्रण करके त्रिशला माता के सोलह सपनों का वर्णन है। ऐरावत, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, मन्दार-कुसुम (दो फूल मालाएँ), दो स्वर्ण

कलश, मछलियों की जोड़ी, कमलों से शोभित एक सरोवर आदि सोलह सपनों का निवेदन रानी त्रिशला ने सिद्धार्थ के सामने किया। तीर्थंकर के गर्भ में आने पर स्वर्ग की देवियाँ शुश्रूषा के लिए त्रिशला के महल में उपस्थित होती हैं।

चौथा सर्ग—स्वप्नफल-कथन

चौथे सर्ग में—राजा सिद्धार्थ भरी सभा में ज्योतिषियों, विद्वानों को बुलाकर इन सोलह सपनों के फलों के बारे में विचार-विमर्श करते हैं।

"इस युग के अन्तिम तीर्थंकर तव कान्त-कुक्षि में आये हैं।
उनके गरिमामय गुण ही इन, सपनों ने हमें बताये हैं।" (वही, पृ. 130)

इस प्रकार अभिप्राय देकर हर एक स्वप्न का अन्वयार्थ स्पष्ट करते हैं।

पाँचवाँ सर्ग—गर्भकल्याण

शरदृऋतु के सौन्दर्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। त्रिशला के गर्भवती होने के कारण राजा सिद्धार्थ रानी त्रिशला के अन्तःपुर में आकर त्रिशला के साथ धार्मिक विषयों की चर्चा करते हैं। उसकी प्रकृति और मनःस्थिति को स्वस्थ रखने के लिए हर तरह की व्यवस्था करते हैं। कवि ने हेमन्त ऋतु के वातावरण का सर्ग के अन्त में सुन्दर चित्रण किया है।

छठा सर्ग—जन्म-कल्याण

कवि ने प्रारम्भ में सूर्योदय का चित्रोपम शैली में वर्णन अंकित किया है। रानी त्रिशला, महल में दासियों के साथ धर्मचर्चा करती रहती है, और उनके द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करती है। फिर वसन्त ऋतु का चित्रण किया है। ऐसे मोहक वातावरण में महावीर का जन्म हुआ, जिससे जिनेन्द्र के जन्म होते ही प्रकृति के समस्त प्राणी-मात्र में हर्ष उल्लास का वातावरण छा जाता है। दासियों ने राजा सिद्धार्थ को पुत्र-जन्म की वार्ता बतायी। राजा सिद्धार्थ ने जन्मोत्सव मनाने के लिए आदेश दिया।

सातवाँ सर्ग—जलाभिषेक

नगर-सज्जा, उत्सव-व्यवस्था, उत्सव-आरम्भ, संगीत-प्रभाव तथा अन्य आयोजन का विस्तार के साथ वर्णन किया है। कुण्डग्राम में स्वर्ग के देवेन्द्र का सपरिवार जिनेन्द्र-दर्शन के लिए आगमन होता है। जन्माभिषेक के लिए इन्द्र मेरु पर्वत पर जाते हैं। सभी जिनेन्द्र की भक्तिभाव से स्तुति करते हैं। इन्द्र और इन्द्राणी ने मायावी शिशु को निद्रित त्रिशला के पास रख दिया। वे जिनेन्द्र को सुमेरु पर्वत की ओर लेकर चले। वहाँ पर एक हज़ार आठ कलशों से जलाभिषेक किया। इन्द्राणी ने बालक जिनेन्द्र का

सब तरह का शृंगार किया। इस प्रकार जन्म कल्याणक बड़े धूम-धाम से मनाया गया।

आठवाँ सर्ग—भगवान महावीर का शिशुरूप

आठवें सर्ग के आरम्भ में बालक की महिमा गाते हुए उनके पूर्व भवों का वर्णन देवेन्द्र ने किया है। पूर्व भव में यह बालक 'पुरुरवा भील' था और उसने मुनि के पास मांस न खाने का व्रत ग्रहण किया था, जिसके फलस्वरूप वह स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र हुआ। वहाँ सुख भोगकर भरत के पुत्र 'मरीचि' के रूप में पैदा हुआ। इस प्रकार '33' भवों का विस्तार से कथन किया। अन्त में तीर्थंकर रूप में त्रिशला के गर्भ में उस जीव का अवतार हुआ।

पूर्व भवों का वृत्तान्त प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह रहा है कि तीर्थंकर के रूप में जन्म पाने के लिए बालक के जीव को पूर्वभवों में किस प्रकार तपश्चर्या करनी पड़ी है, इस तथ्य को सूचित करना है। जन्माभिषेक के बाद स्वर्ग के इन्द्र-इन्द्राणी और देवताओं ने नृत्य किया और अपना आनन्द तथा भक्तिभाव प्रदर्शित किया। बालक के जन्म पर बधाई देने के लिए समस्त नगर निवासी महल में आने लगे और प्रभु की सुन्दरता को देखकर विस्मित हुए।

बालक वर्द्धमान के चरित्र की विशेषता यह है कि वे बिना गुरु के सिखाये सब नैपुण्य प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें ज्ञान-प्राप्ति के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं रही। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गयी वैसे-वैसे उनका अनुभव भी सहज रूप से बढ़ता गया। उनका आचरण भी अहिंसामय तथा संयमपूर्वक रहा। कवि कहता है—

> "लगता था, धर्म स्वयं उनके, मन, वचन, कर्म पर बसता है।
> और जन्म काल से जीवन संगिनी बनी समरसता है॥" (वही, पृ. 240)

अर्थात् जन्म से ही वे धार्मिक वृत्ति के रहे हैं। बालक की दयालुता, सत् अभिरुचि देखकर सब विस्मित होते थे। और उनके दर्शन करके वे विशुद्ध हो जाते थे। बालक वर्द्धमान के चरित्र की विशेषता यह रही है कि उनके समक्ष जो भी आते हैं उनका संशय दूर होता था और उन्हें सत्य का ज्ञान होता था। एक प्रसंग पर संजय और विजय दो चारण मुनियों के पुनर्जन्म को लेकर सम्भ्रम था। जब उन्हें बालक वर्द्धमान के दर्शन हुए तब उनका संशय आप ही आप दूर हुआ। और उसी क्षण बालक को 'सन्मति' के नाम से सम्बोधित किया।

बालक के पुण्यमय व्यक्तित्व को देखकर माता-पिता आनन्दित हुए और उमर के आठवें वर्ष में ही बालक 'वीर' की उपाधि को भी प्राप्त करता है।

नवम सर्ग—भगवान महावीर : एक किशोररूप

एक बार संगम नामक देव वर्द्धमान की वीरता की परीक्षा लेने के उद्देश्य से सर्प का रूप धारण कर उनके पास आया। उस समय बालक वर्द्धमान अपने साथियों के

साथ एक वृक्ष पर चढ़कर आमली क्रीड़ा कर रहे थे। सर्प को देखकर सभी साथी भाग गये, किन्तु बालक वर्द्धमान ने उस पर चढ़कर निर्भय होकर क्रीड़ा की। इस शौर्य पर संगमदेव ने बालक की स्तुति की और उसका नाम 'महावीर' रखा। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि—

> "तुम 'वीर' नहीं हो 'महावीर' मैं यह ही नाम रखता हूँ।
> जो भूल हुई वह क्षमा करें, अब निज निवास को जाता हूँ॥"

(वही, पृ. 250)

इस प्रकार संगमदेव बालक वर्द्धमान से क्षमा माँगकर स्वर्ग लौट जाता है। यह वार्ता नगर में फैल गयी तो समस्त जनों ने बालक का कौतुक किया। बालक के विविध नामों में यही 'महावीर' नाम जगविख्यात हुआ। क्योंकि जनता को यह नाम अधिक प्रिय लगा। बालक वर्द्धमान की वीरता को प्रकट करनेवाला एक और प्रसंग हाथी का है। नगर में हाथी मतवाला होकर घूम रहा था। अनेक जनों को उसने ध्वस्त किया। उसे काबू में रखने के लिए सभी असफल रहे, लेकिन बालक वर्द्धमान उस हाथी को शान्त करने में सफल रहा। कवि इस प्रसंग का चित्रण करता हुआ कहता है—

> "उस दिन से ही 'अतिवीर' नाम भी उनके लिए प्रयुक्त हुआ।
> जो उनके अति वीरत्व हेतु, अतिशय ही तो उपयुक्त हुआ॥"

(वही, पृ. 256)

बालक वर्द्धमान को अद्वितीय ज्ञान था। आगम, पुराणों का वे निर्दोष विवेचन करते थे। जो उनके गुरु बनने आते थे वही चेला बन जाते थे।

दसवाँ सर्ग—भगवान महावीर का युवक रूप

बालक बर्द्धमान ने युवावस्था में पदार्पण किया। उनकी सुन्दरता के बारे में कवि ने कहा—

> "अब तो उनकी सुन्दरता की, दिखती न कहीं भी समता थी।
> उनकी सुषमा में मन्मथ का भी मद हरने की क्षमता थी।"

(वही, पृ. 259)

तात्पर्य वर्द्धमान के देह की सुन्दरता अद्वितीय थी। कामदेव के घमण्ड को चूर करने की उसमें क्षमता थी। फिर भी, वर्द्धमान का मन शैशव सदृश्य सरल था। बालक वर्द्धमान के सभी सखाओं ने विवाह किया। लेकिन बर्द्धमान के मन में विवाह करने की इच्छा नहीं हुई। और वे सतत अन्तर्मुख होकर शुद्धात्म का एकान्त में चिन्तन करते थे। ऊँच-नीच के भेद-भाव, वर्ण-व्यवस्था की कट्टरता, क्षुद्रों पर होने वाले अत्याचार आदि को देखकर महावीर का मन द्रवित हो जाता था। समाज में इतना अज्ञान फैला हुआ था कि देवी-देवों तक के स्वरूप को लोग गलत ढंग से समझते थे। जैसे—

"पूजते हैं नद नाले पर्वत, रवि, शशि, पत्थर के ढेर यहाँ॥"

(वही, पृ. 266)

युवक वर्द्धमान ने तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का निरीक्षण किया था और उन्हें इस बात का खेद होता था कि समाज में नारी को मात्र पुरुष की भोग्य सामग्री समझा जाता था। वे नारी-मुक्ति के समर्थक थे। कवि ने कहा है–

"सर्वत्र मान है नर का ही, पाती न समादर नारी है।
औ मात्र भोग सामग्री ही, समझी जाती बेचारी है॥" (वही, पृ. 266)

युवा महावीर के विचारों में नारी उद्धार की भावना युवावस्था से ही रही। वे किसी को दुःखी देखना नहीं चाहते थे।

ग्यारहवाँ से तेरहवाँ सर्ग–भगवान महावीर का विरागी रूप

दसवें से तेरहवें सर्ग के अन्त तक चार सर्गों में यौवन में उत्पन्न वैराग्य भावनाओं का विवेचन है। त्रिशला के द्वारा प्रस्तावित विवाह की योजना से प्रभु वर्द्धमान नम्रतापूर्वक इनकार करते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके मुनि दीक्षा लेने के अपने दृढ़ संकल्प को घोषित करते हैं।

प्रभु कहते हैं–

"उद्‌देश्य पूर्ण वह करना है, जो लेकर जग में आया हूँ।
जो धर्म प्रचारण करने को, यह तीर्थंकर पद पाया हूँ॥" (वही, पृ. 285)

पिता सिद्धार्थ राज्याभिषेक के प्रस्ताव को वर्द्धमान के सामने रखते हैं, लेकिन वीर इस प्रस्ताव को भी अस्वीकृत करते हैं। उनकी विरक्ति दिनोंदिन दृढ़ बनती जा रही है। प्रभु वर्द्धमान को जन्मतः अवधिज्ञान था। उन्हें अपने पूर्वभवों का स्मरण होता है। महावीर के जीव ने मरीचि के भव में मुनिदीक्षा ग्रहण की थी, लेकिन उस साधना पथ पर भ्रष्ट होने के कारण अब तक अनेक भवों में तिर्यंच, नारकी, स्वर्ग, मनुष्य गतियों में दुःख भोगने पड़े।

अतः इस नर जन्म में मुनि दीक्षा धारण करने के लिए मानसिक दृढ़ता बने, इसलिए बारह अनुप्रेक्षाओं का सदैव चिन्तन करते रहते हैं। माता-पिता पुनः-पुनः उसे गृहस्थ धर्म एवं राज्यशासन का नेतृत्व करने के लिए मनाते रहते हैं, फिर भी प्रभु अपने निश्चय में दृढ़ रहते हैं। अन्ततः मुनिदीक्षा ग्रहण करते हैं।

चौदहवाँ से सत्रहवाँ सर्ग–भगवान महावीर का तपस्वी रूप

चौदहवें सर्ग में प्रथम चातुर्मास में ध्यान, धारणा की साधना करते समय अनेक बाधाओं, उपसर्गों पर प्रभु ने निडरता के साथ विजय पायी। पन्द्रहवें सर्ग में आठ

चातुर्मासों की मुनिसाधना की प्रशंसा कवि ने की है। प्रभु को आत्मसाधना से विचलित करने के लिए असुर, दैत्य, पिशाच आदि दुष्ट प्रवृत्तियों द्वारा कई प्रकार के उपद्रव-प्रसंग निर्माण किये गये। स्वर्ग की अप्सराओं ने भी उनकी तपश्चर्या को भंग करने का प्रयास किया। स्वर्ग के देवताओं ने भी मायावी रूप धारण करके महावीर की साधना की परीक्षा ली। भगवान महावीर ने सभी परीषहों, उपसर्गों पर विजय प्राप्त की।

अठारहवाँ से तेईसवाँ सर्ग—भगवान महावीर का केवली रूप तथा निर्वाण रूप

सत्रहवें सर्ग में यह प्रतिपादित किया गया है कि साधक की दशा में प्रभु की दृष्टि समाज की विषमता को दूर करने की रही है। नारी को पुरुष की दासता से मुक्त करने के प्रयत्न किये। दासी चन्दना का उद्धार करके अपनी प्रमुख शिष्या बनाया। वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था का विरोध करके समतावाद का प्रतिपादन किया। बारह वर्ष साधना करने के पश्चात् उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवों ने महोत्सव मना के समवसरण की सभा का आयोजन प्रभु उपदेश सुनने के लिए किया।

भगवान महावीर ने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा समस्त प्राणीमात्र के कल्याण के हेतु उपदेश दिये। उपदेश के विषय थे—जीव-तत्त्व निरूपण, रत्नत्रय की महिमा, धर्म के लक्षण, सर्वोदय एवं मोक्ष-मार्ग। भगवान महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजाओं ने, रानियों ने, श्रावक-श्राविकाओं ने मुनिदीक्षा ग्रहण की। तीस साल तक विहार करते हुए उन्होंने आत्मकल्याण का हितोपदेश दिया। उम्र के 72वें साल में भगवान महावीर का निर्वाण हुआ अर्थात् सिद्ध परमात्मा बने, निर्वाण-महोत्सव मनाया गया। उनके निर्वाण के पश्चात् केवलियों ने धर्म-प्रचार करके वीरवाणी का ग्रन्थीकरण आचार्यों ने 'षट्खण्डागम' के रूप में किया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ 'परमज्योति महावीर' में कवि ने भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण महावीर के जन्म, जीवन और शिक्षाओं के गुणानुवाद से किया है। भगवान महावीर के उपदेशामृत को काव्य की सलिल धारा से प्रवाहित किया है। कवि ने श्रद्धाभाव से प्रेरित होकर पौराणिक, आख्यानों के आधारों पर भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण किया है। महाकवि की दृष्टि में भगवान महावीर के विराट व्यक्तित्व के अनेकान्त रूप हैं। भक्ति भावना से ओत-प्रोत होकर आराध्य भगवान महावीर के चरित्र की विशेषताओं की महिमा गायी है। महावीर के ऐतिहासिक और मानवीय व्यक्तित्व का अंकन चरित्र-चित्रण में नहीं है।

प्रस्तुत महाकाव्य में दिगम्बर मान्यताओं के अनुसार केवलज्ञान प्राप्ति के लिए महावीर की कठोर तपश्चर्या, असीम देह-दमन, महाव्रत, उपवास, संयम, ध्यान, तप आदि का भक्ति भाव से चरित्र-चित्रण हुआ है। भगवान महावीर के चरित्र का विकास

आध्यात्मिकता के आधार पर किया है। जैनदर्शन के अनुसार आत्म-विकास की यह सर्वोच्च अवस्था अरिहन्त, सिद्ध रूप है। केवलज्ञान, सर्वज्ञ, अरिहन्त होने पर भगवान महावीर ने अहिंसा, मानवतावाद तथा अनेकान्तवाद का उपदेश दिया।

'परमज्योति महावीर' महाकाव्य है। यह धर्म, वीर एवं शान्तरस प्रधान महाकाव्य है। इसमें महाकाव्य के लक्षण पाये जाते हैं। गम्भीर और खोजपूर्ण अध्ययन से महावीर के चरित्र को प्राकृतिक सरल रचना शैली में प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इन पाँचों कल्याणकों के वर्णन द्वारा उनके चरित्र की अतिशयता-अलौकिकता का चित्रण करना कवि का उद्देश्य रहा है। प्रासंगिक रूप में नगर, राजा, रानी, प्रजा, ऋतु आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है। संवाद एवं कथोपकथन भी रोचक और मनोवैज्ञानिक हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से इसे सफल महाकाव्य कहा जा सकता है।

'वीरायन' महाकाव्य

प्रस्तुत महाकाव्य को स्वयं कवि ने 'महावीर मानस महाकाव्य' कहा है। कवि की साहित्य सृष्टि विपुल है। उनकी चौदह काव्यकृतियाँ हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं, जिनमें से 'जननायक' नामक महाकाव्य है।

प्रस्तुत 'वीरायन' महाकाव्य वीर निर्वाण सं. 2500 (सन् 1974) में भारतोदय प्रकाशन, 204 ए-वैस्ट एण्ड रोड, सदर मेरठ से प्रकाशित किया गया है। महाकवि रघुवीरशरण 'मित्र' ने जिनेन्द्र भगवान महावीर की वन्दना, अर्चना तथा उनकी अमर वाणी, आप्त वचनों का सुदूरगामी और दीर्घकालीन प्रभाव-प्रसार के उद्देश्य से ही प्रस्तुत महाकाव्य की रचना की है। महाकाव्यकार के शब्दों में--

"श्रद्धा ने तपस्या का व्रत लिया, संकल्प किया कि तपालोक वीर भगवान पर महाकाव्य रचूँगा। अपनी लघुता और भगवान महावीर की गुरुता का भरोसा किया...। वीरायन महाकाव्य से भगवान महावीर का अर्चन किया है और काव्य रचने का उद्देश्य जन-जन में भगवान महावीर की वाणी का सन्देश देना...। मेरी यह रचना स्वान्तः सुखाय होते हुए भी लोकहितकारी है।"

यह महाकाव्य 360 पृष्ठों का है। भगवान महावीर के चरित्र की प्रमुख घटनाओं के सन्दर्भ में शीर्षक देकर कुल पन्द्रह सर्गों में भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं को अंकित किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में महावीर की समस्त चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

'वीरायन' में महावीर-चरित्र

प्रथम सर्ग—पुष्पप्रदीप

प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के रूप में अनेक देवी-देवताओं के स्तुति की गयी है।

अनेक आदर्शों को प्रणाम करके ज्ञानियों को नमस्कार किया है। अपने सृजन कार्य में सफलता पाने के लिए कवि ने अनेक शक्तियों से निवेदन किया है। दृश्य-अदृश्य ताकतों से सहयोग भी माँगा है। सर्व शक्ति-सम्पन्न तीर्थंकर भगवान महावीर की विविध प्रकार के पुष्प-प्रदीपों से पूजा का वर्णन है। तीर्थंकर भगवान महावीर, आशुतोष भगवान शिव, शेषशायी भगवान विष्णु, ज्ञानदाता गुरु, सौधर्म इन्द्र, स्वरालोक शक्ति सरस्वती आदि देवी-देवताओं से प्रार्थना की गयी है। ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की वन्दना की है। प्रकृति के प्रतीकों की मन्नत, धरती, दुनिया और देश को नमन, इतिहास के दयनीय पृष्ठ पर अश्रु अर्घ्य प्रस्तुत किये हैं। सज्जन और दुर्जन-वर्णन है। विविध रूपों में विविध पुद्‌गल परमाणु आकारों की रचना साफल्य के लिए उपासना की है। महावीर के जन्म से पूर्व की स्थिति का वर्णन कवि ने सुन्दर ढंग से किया।

द्वितीय सर्ग—पृथ्वी-पीड़ा

कालचक्र के आख्यानों में दुःख-सुख के आमुख, सुषमा-दुःषमा के दो आरों के बीच पृथ्वीचक्र का चित्रण किया है। भूमि और कवि के संवाद प्रस्तुत करके कालक्रम की तस्वीरों को अंकित किया गया है। प्रकृति और पुरुष के प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये हैं। तत्पश्चात् पृथ्वी के स्वरूप को स्पष्ट किया है। पृथ्वी के मुँह से व्यथा की कहानी कही है। अधर्मी, अनार्यों और विधर्मियों के आने से दुर्दशा का चित्रण किया है। अनार्यों के अत्याचारों का वर्णन है। विलासिता, रंगरलियाँ, स्वार्थ आदि कुरूपों की तस्वीरें रेखांकित की गयी हैं। पाप बढ़ने से प्रलय और दुःखों की गतिविधियों का वर्णन है। स्वार्थों की अति से ध्वंस की व्याख्या की है। इस धरती पर अनेक भयंकर युद्ध हुए। उस पीड़ा की अभिव्यक्ति पृथ्वी माता ने की है।

तृतीय सर्ग—ताल-कुमुदनी

प्रस्तुत सर्ग का आशय निम्नलिखित तथ्यों के संकेतों द्वारा समझ में आ सकता है। दार्शनिक दृष्टि से कथावस्तु का प्रारम्भ किया है। वन्दनीय 'त्रिशला' और 'सिद्धार्थ' के परिणय का चित्रण किया है। भगवान महावीर के नाना, मामा, बाबा, पिता की वंशावली को सूत्रों में चित्रित किया है। शृंगार की पूर्वानुभूतियाँ, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि के अंकुर का वर्णन है। वरयात्रा, स्वागत-सत्कार, आनन्द एवं सुख का वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। वैवाहिक आदर्शों की अभिव्यक्ति, उपदेशामृत, संवेदनशील अनुभूतियाँ, प्रकृति-वेदना आदि का भी चित्रण है। सर्ग के अन्त में कवि की उक्ति है।

"त्रिशला में थे सिद्धार्थ मुखर, स्वर गूँजे कुमुदिनी के।
जल में तुषार भीगे पंकज, मानो थे भाल कुमुदिनी के॥" (वीरायन, पृ. 87)

चतुर्थ सर्ग—जन्म-ज्योति

प्रस्तुत सर्ग में भगवान महावीर के गर्भकल्याण की उपलब्धियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें जन्मोत्सव का चित्रण है। शिशु महावीर के चमत्कारों को श्रद्धा से अभिव्यक्त किया है। शिशु क्रीड़ा, शिशु लीला का भी मनोहारी चित्रण है।

'जन्म ज्योति' सर्ग में निम्नलिखित प्रसंगों का विवरण है—त्रिशला-सिद्धार्थ प्रकरण, संयोग-दर्शन, पति-पत्नी-प्रसंग, वधू-स्वागत, दाम्पत्य-जीवन के सूत्र, रसवार्ता, प्रीति, प्रभा, शृंगार, सूक्तियाँ, कामानन्द, सोलह स्वप्न, गर्भ कल्याणक उपलब्धियाँ, भगवान के जन्म से पूर्व का वातावरण। सुख-वर्षा, जन्मोत्सव-संगीत, इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा भगवान का अर्चन, सुर-असुर, राजा-प्रजा द्वारा वीर पूजा, शिशु के चमत्कार, शिशु का वैराग्य दर्शन, लोरी लालित्य, नाम-महिमा, भारत माता द्वारा आनन्द, शिशु-क्रीड़ा, शिशु-लीला, शिशु की रीझ-खीझ, शिशु से सुख, बाल दिगम्बर का मनोहर चित्रण किया गया है।

पंचम सर्ग—बालोत्पल

बालोत्पल में भगवान महावीर के बाल-जीवन का निम्नलिखित प्रसंगों के माध्यम से विस्तार से विवरण दिया है—

बाल-जीवन, बाल-आदर्श, खेल-खेल में ज्ञान, बाल-गुरु वीर, बालकों में भगवान, बाल-परीक्षा, बाल-चमत्कार, सत्संग-महिमा, सम्यक् स्वरूप, माता-पिता, माता का आश्चर्य, माता त्रिशला का सेवादर्श, सब बच्चों में समान स्नेह, वीर बाल मित्रों के साथ, त्रिशला माता का वीर-सखाओं का बाल-भोज करना आदि का चित्रण किया है।

इन्द्रलोक में वीर-ज्योति, रूप शक्तियों का आश्चर्य, 'संगमदेव' का गर्व, 'संगम' का बाल-वीर की परीक्षा के लिए प्रस्थान, संगम का नाग रूप धारण कर वीर-सखाओं में आगमन। वीर की अन्तरंग शक्ति का प्रकाश, अनन्त बल दर्शन, संगमदेव का मदचूर, 'संगम' को ज्ञान, 'संगम' का हार जाना, बाल महावीर की गरिमा का भी चित्रण प्रकाशित है।

वर्द्धमान की अतिशयता (अतिपवित्र) इस प्रकार की थी कि साधारण-सी गाय भी उनके सान्निध्य में आये तो वह कामधेनु बन जाती थी। बालक वर्द्धमान का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनकी आँखों में सदैव निर्वेद भाव झलकता था। उनकी जिह्वा पर सरस्वती का निवास था। माता ने बालवर्द्धमान को जो आभूषण पहनाये, उनसे भी ज्यादा तेज बालक के मुस्कुराहट की थी। आभूषणों से युक्त बालक की सुन्दरता का वर्णन अद्वितीय है। बालक वर्द्धमान के देह का सौन्दर्य दिव्य, अलौकिक तथा अप्रतिम था। स्वर्ग की अप्सराओं का सौन्दर्य भी उनके समक्ष मन्द है।

इन्द्र द्वारा की गयी प्रशंसा को सुनकर संगमदेव सर्प रूप धारण करके भूतल पर आता है। महावीर की वीरता की परीक्षा लेना चाहता है। तब इन्द्र कहते हैं—

"तीनों लोकों में नहीं, महावीर-सा शूर।" (वही, पृ. 125)

वर्द्धमान संगम को माफ़ करके उसे अहिंसा का उपदेश देते हुए कहते हैं--

"जियो और जीने सभी जीव को दो।" (वही, पृ. 128)

षष्ठ सर्ग—जन्म-जन्म के दीप

जन्म-जन्म के दीप इस सर्ग में वीर भगवान के पूर्व जन्मों की कथाओं का चित्रण है। साथ ही बाल वीर से पराजित संगमदेव इन्द्रलोक में आता है। वर्द्धमान की वीरता के बारे में पूछे गये संगमदेव के प्रश्नों का इन्द्र द्वारा शंका-समाधान किया जाता है। जीव के विकास की दिशाएँ और दशाओं का विस्तार से चित्रण किया है। भौतिक और आध्यात्मिक सुखों की उपलब्धियों का विवेचन किया है। भगवान महावीर के धर्माचरण के चमत्कारों की अलौकिकता पर प्रकाश डाला है।

"जन्म-जन्म का पुण्य है वर्द्धमान का रूप॥" (वही, पृ. 162)

सप्तम सर्ग—प्यास और अँधेरा

प्रस्तुत सर्ग में भारत के छोटे-छोटे राज्यों के संघर्षों का और वैशाली गणराज्य की दशाओं का वर्णन करके निम्नलिखित प्रसंगों का भी वर्णन किया गया है—राज्य और रमणी के रूप, राज्य और रमणी के लिए संघर्ष का वास्तविक चित्रण वर्णित है। 'आम्रपाली' प्रसंग, अन्तर्वेदना से पीड़ित 'आम्रपाली' की आग, विरोधाग्नि से दहक की यथार्थ अभिव्यक्ति है। संघर्ष, लूट, अपहरण, सामाजिक प्रहार, कष्ट, यन्त्रणाएँ, राजकीय, सामाजिक और धार्मिक स्थितियों के शब्द-चित्र अंकित किये हैं।

आम्रपाली के प्रसंग का चित्रण करते हुए लिखते हैं--

"वैशाली की सुकुमार कली, लपटों की तेज कटार बनी।
मन की उजियाली नगरवधू, तन दे-लेकर तलवार बनी।"
(वही, पृ. 184)

अष्टम सर्ग—सन्ताप

इस आठवें सर्ग में आर्यिका चन्दना के जीवन को प्रकाशित किया गया है। उसके संकेत इस प्रकार हैं—दुःखी गणतन्त्र, व्यथा से क्रान्ति, वैशाली पर आक्रमण, वैशाली की पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में कवि ने पौराणिक आख्यानों पर आधुनिकता का रंग चढ़ाया है। चन्दना का अपहरण, क्रय-विक्रय, सौतडाह, चन्दना की कारावास की यन्त्रणा, चन्दना के आँसू, बन्धन से मुक्ति के लिए उसकी आर्त पुकार, तीर्थंकर दर्शन के लिए उसकी लालसा और पुकार की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक

भारतीय नारी की व्यथा को भी मुखरित किया है।

"कथा की व्यथा है व्यथा की कथा है,
पुरानी कथा में नयी यह व्यथा है॥" (वही, पृ. 195)

यही नहीं,

"चन्दना तपस्या टेर रही, ऋषि-मुनियों के स्वामी आओ।
इस कालकोठरी से मुझको, पदरज से मुक्त करा जाओ॥"
(वही, पृ. 208)

नवम सर्ग—विरक्ति

निर्वेद का अर्थ है—वह सुख जिसके अन्त में दुःख नहीं। निर्वेद स्थायी भाव है, और इसका रस है—शान्त अर्थात् भक्तिभाव। युवा महावीर बारह अनुप्रेक्षा-भावनाओं का चिन्तन करता है। देह की नश्वरता, संसार की क्षणभंगुरता, अकेलेपन की भावना को व्यक्त करके विवाह से विरक्त होता है। माता त्रिशला और पिता सिद्धार्थ विवाह की उपयुक्तता पर अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं, लेकिन युवक महावीर जीवन की सार्थकता के लिए, आत्मोद्धार के लिए तथा जनता के उद्धार के लिए विवाह की असारता को बताते हैं। धन, दौलत, पंचेन्द्रियों के विषयोपभोग, राज्य-सत्ता, रूप-सौन्दर्य के भोग से आत्मा की शक्ति घटती है और उसमें मनुष्य की शक्ति का विकास नहीं होता है।

वर्द्धमान माता-पिता के विवाह-प्रस्ताव का इनकार करते हुए कहते हैं—

"बन्धन मुझको स्वीकार नहीं, केवलज्ञान चाहता हूँ।" (वही, पृ. 211)

तथा—

"काम को जीत लूँ, ज्ञान की आग से, माँ! अलग मैं रहूँ रूप के बाग से।
ज्ञान की आग हूँ, ब्रह्मचारी रहूँ, तप करूँ बिन्दु से सिन्धु बन कर बहूँ॥"
(वही, पृ. 231)

और अन्त में दृढ़ संकल्प करके मुनिदीक्षा ग्रहण करने वन में जाते हैं।

दशम सर्ग—वन-पथ

वन-पथ इस सर्ग में कलिंगकन्या यशोदा के भक्ति-रूप का वर्णन मिलता है। राजकुमार वीर ने मुकुट, कटक आदि राजसुखों का त्याग करके, भौतिकता का परित्याग करके वन में प्रस्थान किया। 'कलिंग' कन्या की भाव-भक्ति, तपस्या, 'राजगृह'-चित्रण, मूर्त वन, प्रकृति, प्रतीक, मुखर प्रकृति आदि का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। वीर के माता-पिता और सम्बन्धियों ने बिदा ली और भगवान महावीर एकाकी रहकर वन में तपश्चर्या करने लगे।

एकादश सर्ग—दिव्य-दर्शन

प्रस्तुत सर्ग में अनेक तथ्यों एवं प्रसंगों को चित्रित करते हुए भगवान महावीर की कठोर साधना की उपलब्धि के रूप में दिव्य-दर्शन, केवलज्ञान की प्राप्ति का विवेचन किया है। अनेक प्रसंगों के माध्यम से भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। दीर्घ साधना के फलस्वरूप वर्द्धमान को दिव्य-दर्शन की (केवलज्ञान की) प्राप्ति हुई।

> "प्राप्त हुए कैवल्य को, प्राप्त किया कैवल्य।
> तीर्थंकर भगवान ने, लिया दिया कैवल्य।" (वही, पृ. 292)

द्वादश सर्ग—ज्ञानवाणी

इस सर्ग में भगवान महावीर द्वारा दिये गये उपदेशों का वर्णन है। इन्द्रादि देव हर्ष से समवसरण की रचना करते हैं। तीर्थंकर ने मौन धारण किया है। इन्द्रोपाय द्वारा मौन मुखरित हुआ। भगवान महावीर ने प्राणी मात्र को ज्ञान-दान दिया। भगवान ने उपदेश देने के लिए तीस साल तक अनेक स्थानों पर विहार किया। भगवान महावीर ने समस्त मानव मात्र के लिए हितोपकारी उपदेश दिये। पाँच व्रतों का पालन, चार कषायों का दमन, मानवतायुक्त सदाचार के पालन, ज्ञान की साधना, चारित्र-पालन की महिमा का उपदेश दिया। महावीर की वाणी में वर्ण-प्रथा के विरोध, ऊँच-नीच के भेद-भाव के विरोध, साम्प्रदायिकता के विरोध, नारी-दासता का विरोध का प्रखर स्वर गूँजता रहा। स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, अहिंसा तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये सिद्धान्त प्रमुख हैं।

त्रयोदश सर्ग—उद्धार

इस सर्ग में कारागार से चन्दना के उद्धार का वर्णन मिलता है। दासी चन्दना से आहार स्वीकार करके महावीर ने उसे अपनी शिष्या बनाकर उसका उद्धार किया।

> "वरदान दिया तीर्थंकर ने, धूमिल शशि का उद्धार हुआ।
> आहार लिया तीर्थंकर ने, शुचि धारा का सत्कार हुआ॥" (वही, पृ. 319)

चतुर्दश सर्ग—अनन्त

इस सर्ग में यह प्रतिपादित किया गया है कि भगवान महावीर की वाणी कण-कण में व्याप्त हो गयी। भगवान महावीर में अनन्त रूप, अनन्त ज्योति, रत्नत्रय का पूर्ण रूप चित्रित है। मोक्ष-सौरभ का वर्णन अनुपम है। अन्त में महावीर के निर्वाण की महिमा का चित्रण है।

पंचदश सर्ग—युगान्तर

अन्तिम सर्ग युगान्तर में कवि ने मोक्ष के बाद मुक्तेश्वर महावीर के प्रभाव का वर्णन करके निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला है—महावीर वाङ्मय की जीवन और जगत् को देन, भाव-जगत् और राष्ट्र-धर्म, वीर-वाणी की चेतना, वीर-दर्शन का जीवन में उपयोग, जैनधर्म से देश और दुनिया में उपलब्धियाँ, महावीर पूजा के आदर्श, पूज्य महात्मा गाँधी भगवान महावीर के पथ पर, स्वतन्त्रता प्राप्ति में वीर-वाणी का योग, आज की परिस्थितियों को दिशा-दान, वीर मार्ग, वीर-वाङ्मय, वीरार्चन आदि तथ्यों के चित्रण के माध्यम से भगवान महावीर के व्यक्तित्व को 'मित्र' जी ने युगान्तकारी, नवयुग प्रवर्तक के रूप में रेखांकित किया है।

निष्कर्ष

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद, अनेकान्त, अहिंसा, तप, संयम आदि का विस्तार के साथ वर्णन करके उनके व्यक्तित्व के आन्तरिक-आध्यात्मिक विशेषताओं का चित्रण अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। महाकाव्य 'वीरायन' में कुल पन्द्रह सर्ग हैं। सर्गों के शीर्षकों पर ग़ौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भगवान महावीर को अपना आराध्य भगवान माना है। अतः छन्दों के माध्यम से भगवान महावीर के चरित्र को पुष्पमालाओं, स्तुति सुमनों से सुरभित किया है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार पौराणिक अनुश्रुतियों का आधार लेकर गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं मोक्ष आदि पंचकल्याणकों के चित्रण द्वारा भगवान महावीर के अलौकिक चरित्र का प्रभावी ढंग से चित्रण किया है।

प्रासादिक शैली में इस ग्रन्थ की स्वाभाविक ध्वनि में रचना हुई है। रचना में गति है और गहराई भी। काव्य में ओज है, सुन्दर वर्णन है, करुणा है और ललकार भी है। शिल्प की अपेक्षा कथ्य को महत्त्व देने के कारण काव्य में यत्र-तत्र दार्शनिक एवं उदात्त विचारों का विश्लेषण अधिक मात्रा में हुआ है। छन्द-रचना में कवि सिद्धहस्त है। भगवान महावीर के मनोवैज्ञानिक चित्रण में उसको अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पौराणिक कथावस्तु एवं चरित्र पर आधुनिकता का रंग भरने में कवि सफल हुआ है। विश्वबन्धुत्व, राष्ट्रीयता, मानवतावाद, सर्वधर्म समभाव आदि आधुनिक चिन्तन-धाराओं के विश्लेषण से भगवान महावीर के चरित की उदात्तता को अधिक स्पष्ट किया गया है।

'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य

अवन्तिका के प्रसिद्ध शब्दशिल्पी डॉ. छैलबिहारी गुप्त का 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य इन्दौर की श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति की ओर से मध्यप्रदेश शासन के वित्तीय सहयोग से मार्च, 1976 में प्रकाशित हुआ। इस महाकाव्य में आठ

सर्ग हैं। महाकाव्य की कसौटी पर यह महाकाव्य खरा उतरता है। इसमें महावीर के लोकहितरत जीवन को प्रसादगुणसम्पन्न शैली में रचा गया है। महावीर के जीवन पर उपलब्ध प्रायः सभी पूर्ण एवं परवर्ती सन्दर्भों का गहरा अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखकर ही अपनी कल्पना का कवि ने उपयोग किया है। काव्य और इतिहास का सुन्दर मिलाप हुआ है। कवि को इस रचना में काव्य और इतिहास को एकीकृत और परस्पर उपकारक रखने में अपूर्व सफलता मिली है। प्रस्तुत महाकाव्य में कहीं कोई ऐसा प्रसंग नहीं है जो इतिहास से असंगत हो। इस दृष्टि से कवि का यह महाकाव्य हिन्दी महावीर चरित महाकाव्य की एक अद्वितीय उपलब्धि है। प्रस्तुत काव्य में सहजता से तथ्य, सत्य और कल्पना का त्रिवेणी संगम हुआ है।

काव्यशैली शब्दाडम्बर-रहित और उनके व्यक्तित्व के अनुरूप निश्चल है। इसीलिए महाकाव्य के कई प्रसंग इतने मर्मस्पर्शी बन गये हैं कि पाठकों को सहज ही आकर्षित कर लेता है। किसी भी तीर्थंकर के जीवन-चरित्र पर महाकाव्य लिखना परिश्रम साध्य कार्य है। जहाँ शान्त रस प्रधान है वहाँ काव्य के लालित्य के निर्वाह में कई कठिनाइयाँ आती हैं। भगवान महावीर के जीवन में साहित्यसृजन की कोई स्पष्ट सम्भावनाएँ अब तक दिखाई नहीं पड़ती थीं। अतः बहुत कम कवियों ने महावीर चरित्र पर महाकाव्य लिखने के प्रयत्न किये हैं। किन्तु डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने उन कठिनाइयों को पार करके महाकाव्य विधा में महावीर के चरित को उसकी सम्पूर्ण गरिमा और पवित्रता के साथ प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य की रचना तीर्थंकरों के चरित्र-वर्णन की प्राचीन परम्परा को प्रवहमान करते हुए की गयी है। यह महाकाव्य वर्तमान समय में भगवान महावीर के जीवन पर हिन्दी भाषा में लिखे गये महाकाव्यों में अद्वितीय है।

भगवान महावीर के जन्म से लेकर निर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक यात्रा का, आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक ढंग से विवेचन 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य में हमें प्राप्त होता है।

'तीर्थंकर महावीर' में महावीर-चरित्र

तीर्थंकर महावीर की जीवनी एवं उनके उपदेश के कथ्य को कवि ने आठ सर्गों में चित्रित करके भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं को महाकाव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

सर्गों का आशय संक्षेप में निम्न रूप में है—

प्रथम सर्ग—जन्म-कल्याण एवं शिशु-अवस्था

इस सर्ग में निम्नलिखित प्रसंगों का चित्रण एवं विवरण महाकवि ने कलात्मक ढंग से किया है।

(1) वन्दना में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु इन पंचपरमेष्ठी को प्रणाम किया है।

(2) पूर्वाभास में कवि ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर दैन्यावस्था का चित्रण किया है।

(3) महारानी त्रिशला को दिखे सोलह स्वप्न और उनके फल का वर्णन किया है। उनमें से तीर्थंकर की जन्म की महत्ता चित्त में सहज ही अंकित हो जाती है।

(4) राजकुमार वर्द्धमान का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ।

(5) इन्द्र द्वारा जन्म-कल्याणक आयोजन हुआ। स्वर्ग के ऋषि-मुनि, इन्द्र-इन्द्राणी आनन्दित हुए और जन्म-कल्याणक का उत्सव मनाने के लिए 'वैशाली' में आये। देवेन्द्र द्वारा भगवान का अभिषेक हुआ। इन्द्राणी ने बालक को गोद में लिया और जन्माभिषेक के लिए सुमेरु पर्वत पर ले गयी। वहाँ उत्साहपूर्वक जन्माभिषेक किया। संगीत नृत्य का आयोजन तथा स्तुति की।

(6) सौधर्म इन्द्र ने सुमेरु पर्वत पर शिशु का नामकरण महावीर किया। पिता ने वर्द्धमान के रूप में नाम रखा। ये दोनों ही नाम सार्थक हैं। वे वीर थे और उनके जन्म होने पर उनके पिता सिद्धार्थ की सभी बातों में वृद्धि हुई, इसलिए उनका नाम वर्द्धमान सार्थक है।

(7) इन्द्र-इन्द्राणी शिशु को लेकर कुण्डपुर जाते हैं, और त्रिशला के हाथ बालक को सौंप देते हैं। प्रासाद में इन्द्र द्वारा महाराज सिद्धार्थ एवं महारानी त्रिशला की महावीर जैसे पुत्र को जन्म देने के कारण स्तुति की जाती है। जन्माभिषेक उत्सव का सजीव वर्णन महाकवि ने किया है, और तत्पश्चात् स्वर्ग के देव और इन्द्रादिक अमरपुर चले जाते हैं।

(8) शिशु अपनी बाल-लीलाओं से माता-पिता को अपूर्व आनन्द देता था। चन्द्रकला की तरह शिशु का विकास होने लगा और बालक कुमार हो गया। बचपन में ही उसे मति, श्रुति, अवधिज्ञान थे। अतः वह सुर-मुनियों का गुरु बन गया, जिससे सन्मति नाम प्रचलित हो गया।

(9) बालक ने आठवें वर्ष में बारह व्रतों को ग्रहण किया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि व्रत धारण किये।

द्वितीय सर्ग—किशोर एवं युवावस्था

प्रस्तुत सर्ग में निम्नलिखित प्रसंगों एवं घटनाओं के माध्यम से महावीर की युवावस्था के चरित्र को अंकित किया है।

(1) इन्द्रसभा में देवों द्वारा राजकुमार की प्रशस्ति होती है। एक दिन सौधर्म इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही थी कि भूतल पर सबसे अधिक शूरवीर कौन है? इन्द्र कहने लगा, इस समय सबसे अधिक शूरवीर वर्द्धमान स्वामी है। कोई देव-दानव उन्हें

पराजित नहीं कर सकता। ईर्ष्यावश संगमदेव का परीक्षा हेतु प्रस्थान होता है। संगमदेव भूतल पर वन में आया। वहाँ कुमार वर्द्धमान अपने बाल-सखाओं के साथ खेल रहे थे। संगमदेव के महाविषधर स्वरूप धारण करने से सभी बालक भय के मारे वहाँ से अपने प्राण बचाकर भाग गये; केवल 'वर्द्धमान' ही वहाँ रह गये। वे निर्भय होकर सर्प के मस्तक पर पैर रखते हुए वृक्ष के नीचे उतर गये। राजकुमार सर्प के ऊपर चढ़कर क्रीड़ा करने लगे। अन्त में संगमदेव ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। कुमार के शौर्य, साहस और निर्भयता की उसने प्रशंसा की।

(2) **वन-क्रीड़ा**—उपवन में जाकर बालक वीर अपने साथियों के साथ गेंद का खेल खेलते थे। पेड़ पर आँख-मिचौली का खेल खेलते थे। बालसखाओं में युद्ध का भी खेल खेलते थे। सभी में वीर बालक यशस्वी होता था। मुनिवेश धारण करके साथियों को उपदेश भी देते थे। इस प्रकार अपने सखाओं के साथ क्रीड़ाएँ करते थे।

(3) **जल-क्रीड़ा**—एक दिन सभी सखाओं के साथ जल-क्रीड़ा करने सरोवर गये थे। वहाँ गेंद पकड़ने का भी खेल करते रहे। सरोवर में कमल को देखकर बालकों में उस कमल को तोड़ने की होड़ लगी और तैरने में वीर बालक ही प्रथम थे।

(4) **आमोद-प्रमोद**—इस प्रकार बालक की क्रीड़ाओं को देखकर आनन्दित होकर गन्धर्व लीला-गान करने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। राजमहल में नित्य मनोरंजन के कार्यक्रम होते रहे।

(5) **काव्य धर्म-चर्चा**—प्रभु महावीर रसिक थे और नव रसपूर्ण काव्य की चर्चा भी अपने सखाओं से करते थे—धर्म, कर्म की चर्चा। वेद-उपनिषद् के गहन तत्त्वों पर तथा पौराणिक उपाख्यान सांख्य-योग आदि पर बातें किया करते थे। सभी अत्यन्त भावुकता से वीर की बातों को सुना करते थे।

(6) **मुनिद्वय द्वारा सन्मति-नामकरण**—संजय और विजय नामक दो चारण मुनियों को किसी सूक्ष्म तत्त्व के विषय में कोई सन्देह उत्पन्न हो गया। जब वे महावीर के समीप आये तो दूर से ही उनके दर्शन-मात्र से उनका सन्देह दूर हो गया। वे उनका 'सन्मति' नाम रखकर चले गये।

(7) महावीर अत्यन्त साधनामय और अनासक्त जीवन लेकर उत्पन्न हुए थे। उन्होंने आठ वर्ष की आयु में अणुव्रत धारण किये। वे जन्मजात आत्मज्ञानी थे। वे अनासक्त योगी थे। मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारक थे। अवधिज्ञान से अपने पूर्व भवों को देखा और विचार किया कि जीवन के अमूल्य तीस वर्ष मैंने परिग्रह के इस निस्सार भाव को वहन करते हुए अकारण ही गँवा दिये।

(8) **वैराग्योत्पत्ति**—वीर सोचते हैं कि मैं अब इस भार को एक क्षण भी वहन नहीं करूँगा। आत्मकल्याण का मार्ग मुझे खोजना है और आत्मसाधना द्वारा आत्मसिद्धि का लक्ष्य प्राप्त करना है।

(9) **राज्य-भोगादिकों के प्रति विरक्ति**–

कवि के शब्दों में–

"करना ही होगा गृह-त्याग, धधक रही है अन्तर में आग।"

(तीर्थंकर महावीर, पृ. 57)

इस प्रकार कहते हुए राज्य-भोगादिकों के प्रति उनके मन में विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है। वे तीस वर्ष की अवस्था में मुनि-दीक्षा ग्रहण करते हैं।

तृतीय सर्ग–वैराग्य एवं मुनिदीक्षा

(1) **सांसारिक भोगों के प्रति पूर्ण विरक्ति**–महावीर धन-वैभव छोड़कर वैरागी बने और वन में ध्यानावस्थित हुए। वर्षा, शीत, ताप, भोग, प्यास, सुख-दुःख भूलकर वे तप में लीन रहे। सब रिश्तों से नाता तोड़कर वे आत्मसाधना के पथ पर विहार करते रहे।

(2) **बारह भावनाओं के चिन्तन**–जिन शासन में द्वादश अनुप्रेक्षाएँ अथवा बारह भावनाओं के नाम से स्मरण किया जाता है। प्रत्येक मुमुक्षु, चाहे वह मुनि हो अथवा श्रावक, ज्ञान-ध्यान की साधना के लिए तथा वैराग्य में स्थिर रहने के लिए इनका प्रतिदिन बारम्बार चिन्तन करता है। उसी समय लोकान्तिक देव आकर उनको सम्बोधन करते हैं। अतः महावीर कुण्डपुर का राजभवन छोड़कर एकान्त वन में आत्मसाधना करने हेतु संयम व सामायिक चारित्र की दीक्षा ग्रहण करते हैं। इन्द्र दीक्षा-कल्याणक का उत्सव मनाता है।

(3) कुण्डपुर से बाहर तपोवन में वर्द्धमान को ले जाने के लिए चन्द्रप्रभा नामक दिव्य पालकी लायी जाती है। उस पालकी को प्रथम मनुष्य, फिर इन्द्र, तदनन्तर देव अपने कन्धों पर उठाकर आकाश मार्ग से ज्ञातृखण्ड वन में ले जाते हैं। इन्द्रादि देवों से भी मनुष्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित की जाती है।

(4) **माता त्रिशला का वियोग-विलाप**–त्रिशला को जब वर्द्धमान के संसार से विरक्त होने का समाचार ज्ञात हुआ, तब वह पुत्र-स्नेह में विह्वल हो गयी और मूर्छित हो गयी। देवों ने माता त्रिशला को समझाया। देवों ने समझाया कि तेरा पुत्र महान् बलवान धीर-वीर है। वह ऊँचा पद प्राप्त करने जा रहा है। अतः मोह का आवरण हटा दे। तीर्थंकर की जननी, अनन्त काल तक संसार तुम्हें याद करेगा, ऐसा देवों का सम्बोधन पाकर माता त्रिशला प्रबुद्ध हुई।

(5) **ज्ञातृवनखण्ड में संयम-धारण**–वर्द्धमान ज्ञातृवनखण्ड में एक स्वच्छ शिला पर बैठे। इन्द्राणी ने रत्नचूर्ण से उस शिला पर की कलापूर्ण रचना की। तदनन्तर उन्होंने मन को शान्त रखा और संयम धारण किया।

(6) **दस परिग्रहों एवं चौदह अन्तरंग परिग्रहों का परित्याग**–महावीर ने अपने शरीर के समस्त वस्त्राभूषण उतार दिये। अपने कृत्रिम वेश दूर कर केशों का

पाँच मुट्ठियों से लोंच कर उन्होंने प्राकृतिक नग्न श्रमण वेष धारण किया। ध्यानस्थ हो वे चिन्तन करने लगे।

'णमो सिद्धाणं' कहते हुए सिद्धों को नमस्कार करके पंच महाव्रत और पिच्छी कमण्डलु धारण कर सर्व सावद्य का त्याग करके पद्मासन लगाकर सामयिक में लीन हो गये। 'सिद्धाणं' उच्चारण के साथ ही महावीर को 'मनःपर्यय' ज्ञान उत्पन्न हुआ। बाहरी विचारों से मन को रोककर मौन भाव से अचल आसन में तीर्थंकर महावीर आत्मचिन्तन में निमग्न हुए।

(7) **कुलग्राम में प्रवेश, राजा द्वारा महावीर-वन्दन-अर्चन**—निर्ग्रन्थ होने के बाद भगवान कुलग्राम में आये। वहाँ के राजा वकुल ने भक्ति से वन्दना की और वन्दन-अर्चन किया। राजा वकुल ने नवधा भक्ति से भगवान को खीर का आहार दिया। फलस्वरूप उनके घर पर पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई। भगवान मौन अवस्था में एकान्त स्थानों, निर्जनवनों में तपश्चर्या करने लगे।

चतुर्थ सर्ग—भगवान महावीर की तपसाधना एवं समता भावना

(1) मुनि-दीक्षा लेने के बाद महावीर वन में विहार करते रहे। श्मशान भूमि पर तपश्चर्या करते रहे। गुहा में शयन करते रहे। छठे, आठवें दिन उपवास करते थे और इस प्रकार छह मास तक अनशन तप भी किया। कठोर तप साधना करते हुए कठिन परीषहों पर विजय भी प्राप्त की। महान् कार्य सिद्धि के लिए महान् परिश्रम करना पड़ता है। श्री वर्द्धमान को अनादि समय के कर्मबन्धन को नष्ट करने के लिए कठोर तपश्चर्या करनी पड़ी। जब वे आत्म-साधना में मग्न हो जाते, तब कई दिन तक एक ही आसन में अचल बैठे या खड़े रहते थे। कभी-कभी एक मास तक लगातार आत्मध्यान करते रहते थे। उस समय भोजन-पान आदि बन्द रहता था, किन्तु इसके साथ बाहरी वातावरण का भी अनुभव न हो पाता था। शीत-ऋतु में पर्वत पर या नदी के तट पर अथवा किसी खुले मैदान में बैठे रहते थे। ग्रीष्म ऋतु में वे पर्वत पर बैठकर ध्यान करते थे। ऊपर से दोपहर की धूप नीचे से गरम पत्थर चारों ओर से लू (गरम हवा) महावीर के नग्न शरीर को तपाती रहती थी, किन्तु तपस्वी वर्द्धमान को उसका भान नहीं होता था। वर्षा ऋतु में नग्न शरीर पर मूसलाधार पानी गिरता था। तेज़ हवा चलती थी, परन्तु महान् योगी तीर्थंकर महावीर अचल आसन से आत्म-चिन्तन में रत रहते थे—

"अहा जब आता वर्षा काल, गगन में बिछ जाता घनजाल।
दामिनी दमकी उल्कापात, झड़ी लग जाती थी दिन-रात॥"

(वही, पृ. 147)

वन में सिंह दहाड़ रहे हैं, हाथी चिंघाड़ रहे हैं, सर्प फुंकार रहे हैं, परन्तु परम

तपस्वी महावीर को उसका कुछ भान ही नहीं है। ऐसी कठोर तपश्चर्या करते हुए महावीर देश-देशान्तर में विहार करते रहे। नगर या गाँव में केवल भोजन के लिए आते थे। अपना शेष समय एकान्त स्थान, वन, पर्वत, गुफ़ा, नदी के किनारे, श्मशान, बाग़ आदि निर्जन स्थान में बिताते थे। वन के भयानक हिंसक पशु जब तीर्थंकर महावीर के निकट आते तो उन्हें देखते ही उनकी क्रूर हिंसक भावना शान्त हो जाती थी। अतः उनके निकट सिंह, हरिण, सर्प, नेवला, बिल्ली, चूहा आदि जाति-विरोधी जीव भी द्वेष, वैर भावना छोड़कर प्रेम, शान्ति से क्रीड़ा किया करते थे।

(2) **उपसर्ग**—उज्जयिनी के महाश्मशान में प्रतिमा योग साधना तपस्वी महावीर ने की। उनकी स्थाणु रुद्र द्वारा धैर्य परीक्षा हुई। उस परीक्षा में तपस्वी महावीर उत्तीर्ण हुए। अतः रुद्र उनकी शरण में आया और महावीर कहकर उनके नाम का जयघोष किया। यह भगवान का पाँचवाँ नाम है।

(3) **चन्दना प्रसंग**—राजा चेटक की पुत्री चन्दना (भगवान की छोटी मौसी) को वन-क्रीड़ा में आसक्त देख किसी विद्याधर ने उसका हरण कर लिया और पत्नी के डर से महान् अटवी में छोड़ दिया। वहाँ के भील ने उसे ले जाकर वृषभदत्त सेठ को दे दी। सेठ की पत्नी सुभद्रा उसके प्रति सन्दिग्ध दृष्टि होने से चन्दना को खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिश्रित कोदों का भात दिया करती थी और क्रोधवश उसे साँकल से बाँधे हुए रखती थी। किसी दिन उस कौशाम्बी नगरी में आहार के लिए भगवान महावीर स्वामी आ गये। उन्हें देखकर चन्दना उनके सामने जाने लगी। उसी समय उसके साँकल के सब बन्धन टूट गये, उसके सिर पर केश हो गये और वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये। शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा स्वर्ण पात्र और कोदों के चावल स्वादिष्ट भात बन गये। उस चन्दना ने भगवान को पड़गाह कर नवधा भक्ति से आहार दान दिया। उसके यहाँ पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई और बन्धुओं के साथ उसका समागम हो गया।

पंचम सर्ग—भगवान महावीर को केवलज्ञान-प्राप्ति

(1) जृम्भिका ग्राम के बाहर ऋजुकूला-तट पर प्रतिमायोग हेतु दो दिन के उपवास का वर्णन है। विहार करते-करते तपस्वी योगी, तीर्थंकर महावीर बिहार प्रान्तीय 'जृम्भिका' गाँव के निकट बहने वाली 'ऋजुकूला' नदी के तट पर आये। वहाँ आकर उन्होंने शाल वृक्ष के नीचे प्रतिमायोग धारण किया। तदनन्तर समाधि में लीन हो गये। उसके बाद पूर्ण शुक्लध्यान हुआ। कर्म-क्षय के योग्य आत्म-परिणामों का प्रतिक्षण असंख्यात गुणों का रूप विकसित होना ही क्षपक-श्रेणी है। क्षपक-श्रेणी आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें गुणस्थान में होती है। इन गुणस्थानों में चारित्र मोहनीय की शेष 21 प्रकृतियों की शक्ति का क्रमशः ह्रास होता जाता है, पूर्ण क्षय बारहवें गुणस्थान में हो जाता है।

"ओ तीन गुप्तियों की विशाल थी सेना,
अब प्रबल कर्म अरि दल से टक्कर लेना
यों महावीर योद्धा महान् बलशाली,
सन्नद्ध युद्ध को हुए बजा कर ताली॥" (वही, पृ. 173)

उक्त पंक्तियों में विकारों से किये गये युद्ध का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत है।

उस समय आत्मा के समस्त क्रोध, मान, काम, लोभ, माया आदि कषाय समूल नष्ट हो जाते हैं। आत्मा पूर्ण शुद्ध वीतराग इच्छाविहीन हो जाती है। तदनन्तर दूसरा शुक्लध्यान (एकत्व वितर्क) होता है, जिससे ज्ञान-दर्शन के आवरक तथा बलहीन कारक (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय) कर्म क्षय हो जाते हैं। तब आत्मा में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन और पूर्ण बल का विकास हो जाता है, जिसको दूसरे शब्दों में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त बल कहते हैं। इन गुणों के पूर्ण विकसित हो जाने से आत्मापूर्ण ज्ञाता (सर्वज्ञ), द्रष्टा बन जाता है। यह आत्मा का 'तेरहवाँ गुणस्थान' कहलाता है। मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन चार कर्मों के क्षय से केवलज्ञान (अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तबल) प्रकट हो जाता है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान होता है। तीर्थंकर महावीर ने इन सभी प्रक्रियाओं में सफलता प्राप्त की। उनके घाति कर्म क्षय हुए। उन्होंने उसी दिन बैशाख शुक्ला दशमी को केवलज्ञान प्राप्त किया।

इस उपलब्धि के लिए उन्हें बारह वर्ष, पाँच मास, पन्द्रह दिन (12 वर्ष, 5 मास, 15 दिन) तपश्चर्या करनी पड़ी।

"वैशाख शुक्ल दशमी की साँझ निराली,
उत्तरा हस्त नक्षत्र मध्य क्षण पाली।
शुभ चन्द्र योग था मुदमद मंगलकारी,
जब कर्मशक्तियाँ महावीर से हारीं॥" (वही, पृ. 175)

(2) **समवसरण वर्णन**—भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्ति हुई। वे तीर्थंकर हो गये। यह पता चलते ही स्वर्ग में आनन्द की लहर दौड़ गयी। इन्द्र ने कुबेर से कहा कि वह तत्काल समवसरण का आयोजन करे। भगवान महावीर के सम्मान में आयोजित समवसरण एक दिव्य, भव्य, उदात्त, सुहावनी संकल्पना का साकार प्रतिरूप था। कुबेर ने ऋजुकूला नदी के तट पर, विपुलाचल (पर्वत) पर समवसरण (सभा) की संरचना की। सर्वत्र गहन हरियाली छायी थी। ऋजुकूला का निर्मल, दुग्धधवल, शीतल जल कल-कल, छल-छल करता हुआ बह रहा था। शीतल, मन्द, सुगन्धयुक्त समीर प्राणों में नयी चेतना जगा रहा था। आकाश निरभ्र और प्राकृतिक परिवेश शान्त था। ऐसे वातावरण में कुबेर ने विराट् समवसरण का आयोजन किया।

प्रथम भाग में 'नाट्यशाला' थी, जहाँ नित्य भजन-कीर्तन होता था। दूसरा भाग 'जलभूमि' थी, जहाँ स्वच्छ जल में असंख्य कमल खिले थे, और देव-देवांगनाएँ नौका विहार कर रहे थे। तीसरे भाग में 'पुष्पवाटिका' थी, जहाँ नाना रूप, रंग, रस, गन्धयुक्त मोहक फूल खिले थे। उसके आगे त्यागी, साधु पुरुषों का निवास था, जिसे 'अशोक भूमि' कहते थे। उसके आगे 'ध्वज-भूमि' में उच्च पर्वत-श्रेणियों पर, उत्तुंग स्तम्भों पर रंग-बिरंगे ध्वज लहरा रहे थे। छठी 'कल्पवृक्ष भूमि पर' अपने शुद्ध स्वरूप में केवलज्ञानी मुनि विराजमान थे। अन्तिम क्षेत्र में, जिसे 'स्तूपभूमि' कहा जाता है, गगनचुम्बी स्तूपों पर बने हुए मन्दिरों में सिद्धों और अरिहन्तों की मनोज्ञ मूर्तियाँ थीं।

इसके बाद चक्राकार भूमि में बारह सभा-गृहों की रचना की गयी थी। प्रथम तीन भागों में मुनि, कल्पवासीदेव और आर्यिकाएँ थीं। फिर देव-देवियों के लिए स्थान सुरक्षित था। दो भागों में मनुष्य थे। इस मांगलिक समायोजन में पशु-पक्षी भी पारस्परिक बैर-भाव त्यागकर एकत्र उपस्थित थे।

समवसरण के मध्य में एक गन्धकुटी थी, जिसमें कमलाकार स्वर्ण-सिंहासन पर भगवान महावीर विराजमान थे। सर्वज्ञ केवली होने के कारण उनका परिशुद्ध शरीर आत्मचेतना से अपूर्ण था, इसीलिए वे सिंहासन से ऊपर, वायुमण्डल में अधर विराजमान थे। भगवान महावीर की दिव्यध्वनि सुनने के लिए आगन्तुक ऋषि, मुनि, साधु, श्रावक, देवी-देवतादि सभी आतुर थे। सबने तीर्थंकर महावीर की वन्दना की, किन्तु उनके श्रीमुख से वाणी प्रस्फुटित नहीं हुई। अवधिज्ञान से इन्द्र ने जाना कि भगवान महावीर के दिव्य विचारों को आत्मसात् कर उन्हें संसारी जीवों तक हस्तान्तरित करने के लिए एक सुयोग्य संघनायक गणधर की आवश्यकता है।

(३) **इन्द्र का गौतम ब्राह्मण के यहाँ गमन, गौतम द्वारा महावीर प्रभु की स्तुति एवं सम्यक्‌दर्शन**—इन्द्र ने अपने दिव्य ज्ञान से यह संकेत प्राप्त किया कि मगध देश के गौर्वर ग्राम के पण्डित वसुभूति का ज्येष्ठ पुत्र 'इन्द्रभूति गौतम' भगवान महावीर का प्रथम गणधर होगा। उसे यहाँ लाना चाहिए, अतः इन्द्र ने बटु का रूप धारण किया और ताड़पत्र पर एक श्लोक लिखकर इन्द्रभूति गौतम से उसका अर्थ पूछा—

"त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव-षट्‌काय लेश्याः।"

उक्त श्लोक का अर्थ इन्द्रभूति गौतम की समझ में नहीं आया। अतः वह अपने 500 शिष्यों के साथ बटु का अनुसरण करते-करते विपुलाचल पर भगवान महावीर के समवसरण में आया। तीर्थंकर महावीर के दर्शन मात्र से उसे दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ। उसे उच्च कोटि का मनःपर्ययज्ञान एवं बुद्धि, औषधि, अक्षय, ओज, रस, तप और विक्रिया नामक सात ऋद्धियाँ उपलब्ध हुईं। इस तरह से महापण्डित, महाज्ञानी, इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रथम शिष्य और ज्येष्ठ गणधर हुए। उन्होंने तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि का सूक्ष्म आशय आत्मसात् कर उसे लोकभाषा में,

जनवाणी 'अर्धमागधी' में लोकहितार्थ प्रकट किया। भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे—(1) इन्द्रभूति (गौतम), (2) अग्निभूति, (3) वायुभूति, (4) शुचिदत्त, (5) सुधर्मा, (6) मानुष्य, (7) मौर्यपुत्र, (8) अंकपन, (9) अचल भ्राता, (10) मेतार्य और (11) प्रभास।

इन्हीं गणधरों ने महावीर-वाणी का संकलन, विवेचन, विश्लेषण, आकलन किया। उपर्युक्त प्रसंग के विवेचन में कवि ने निम्न छन्द का प्रयोग किया है—

"बन गये विप्र गौतम प्रधान, जीवन सुधन्य था चतुर ज्ञान।
गौतम ने पाया दिशा ज्ञान, अब द्वादशांग सम्भव महान॥"

(वही, पृ. 211)

इस प्रकार केवलज्ञान-प्राप्ति के 66 दिन बाद गौतम के गणधर बनते ही भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से हितोपदेश का लाभ उपस्थित प्राणीमात्र को समवसरण में प्राप्त हुआ।

षष्ठ सर्ग में गणधर गौतम तथा भगवान महावीर के मध्य प्रश्नोत्तर का वर्णन मिलता है।

सातवाँ सर्ग—भगवान महावीर के हितोपदेश का प्रभाव

राजगृही के महाराज श्रेणिक (बिम्बसार) भगवान महावीर के उपदेश श्रवण के लिए विपुलाचल पर आते हैं और उनके दर्शन, वन्दना आदि करते हैं। वे तीर्थंकर महावीर का उपदेश सुनकर उनके परम भक्त बन गये। गणधर गौतम राजा के पूर्व जन्म के वृत्तान्त का कथन करते हैं। महावीर का मर्मस्पर्शी उपदेश जब जनता ने सुना तो धर्म का सुन्दर सत्य स्वरूप उसे ज्ञात हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि पशु-यज्ञ के विरोध में एक व्यापक लहर फैल गयी। यज्ञ करानेवाले पुरोहितों के तथा यज्ञ करनेवाले यजमानों के हृदय में परिवर्तन आया। वे अहिंसा के समर्थक हो गये। इस तरह श्री वीर प्रभु की वाणी प्रारम्भ से ही अच्छी प्रभावशाली सिद्ध हुई। स्वयं राजा श्रेणिक बौद्धधर्म का त्याग कर जैनधर्म को दृढ़ श्रद्धा से स्वीकार करता है।

आठवाँ सर्ग—भगवान महावीर का परिनिर्वाण-महोत्सव

भगवान महावीर का विहार पावापुर में होता है। कैवल्यप्राप्ति के बाद भगवान महावीर लोक-कल्याणार्थ सतत विहार करते रहे। वे जहाँ भी ठहरे, वहाँ उनका नवीन समवसरण बनता रहा (धर्मसभामण्डप)। कई दिनों तक उनका प्रभावशाली धर्मोपदेश हुआ और धर्म की निरन्तर प्रभावना होती रही। तीर्थंकर महावीर ने इच्छारहित होकर भी भव्य जनों के प्रति सहज दया से प्रेरित होकर मगध, काशी, कश्मीर, वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, वाराणसी, कौशाम्बी, मिथिला, हस्तिनापुर, नालन्दा, साकेत, विदर्भ,

गौड़, आन्ध्र, केरल आदि प्रदेशों में धर्म प्रभावना की। उनकी भाषा दिव्यध्वनिमय थी, जिसे सभी उपस्थित श्रोता समझते थे और अन्त में पावानगर में अनेक सरोवरों के बीच उन्नत भूमि पर वे स्थित हो गये। वहाँ उन्होंने 6 दिन योग निरोध करके अन्तिम चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया और शेष अघाती कर्मों का क्षय करके कार्तिक वदी अमावस्या के (ब्राह्म मुहूर्त में, सूर्योदय से पहले) संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त की। औदारिक आदि शरीरों का नाश किया। भगवान महावीर अरिहन्त पद से सिद्ध पद तक पहुँच गये। आत्मा की सिद्धावस्था चरमावस्था है। वही अवस्था परमात्मावस्था है। आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण भगवान महावीर के चरित्र से हमें प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य में तीर्थंकरों के चरित्र-वर्णन की प्राचीन परम्परा को अपनाते हुए भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण किया है। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के महावीर विषयक प्रबन्धकाव्यों के आधार पर आधुनिक हिन्दी काव्य लिखे गये हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने आठ सर्गों में भगवान महावीर के जन्म से लेकर परिनिर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक जीवन-यात्रा का वर्णन किया है। तीर्थंकर-चरित्र लिखने की प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए अपनी कल्पना एवं प्रखर प्रतिभा के द्वारा भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण सुन्दर एवं सरल शैली में चित्रित करने का प्रयास किया है।

महाकाव्य में सर्गों को शीर्षक नहीं दिये हैं। फिर भी महावीर की सम्पूर्ण जीवनी को आठ उत्थानों में प्रस्तुत किया है। आठ वर्ष तक का बाल-जीवन परिचय प्रथम सर्ग में है। दूसरे सर्ग में तीस बरस तक का किशोर एवं युवा जीवन चित्रित है। तीसरे एवं चौथे सर्गों में मुनि जीवन के तप, संयम, ध्यान आदि के द्वारा चरित्र-चित्रण किया है। पाँचवें सर्ग में केवलज्ञान एवं अर्हन्त पद की प्राप्ति से प्राप्त तेज एवं समवसरण वैभव के वर्णन द्वारा महावीर के व्यक्तित्व की चरम अवस्था पर प्रकाश डाला है। षष्ठ सर्ग में महावीर द्वारा दिये गये उपदेशों का विवरण है। सातवें सर्ग में महावीर-वाणी के प्रभाव को अंकित करके आठवें सर्ग में निर्वाण-महोत्सव का चित्रण किया है। इसमें पूर्वभवों एवं गर्भकल्याणक के चित्रण का अभाव है।

'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र' महाकाव्य

अभयकुमार 'यौधेय' का यह अभिनव महाकाव्य 'श्रमण भगवान महावीर' है। इसका प्रकाशन भगवान महावीर प्रकाशन संस्था, मेरठ द्वारा अगस्त, 1976 में हुआ। भगवान महावीर के चरित्र की विराटता इसमें वर्णित है।

श्वेताम्बर जैनाचार्यों-कवियों-सोमप्रभसूरि-मेरुतुंगादि ने अपभ्रंश भाषा में तीर्थंकरों

के चरित्र का वर्णन किया है। वर्द्धमान चरित्र का वर्णन विभिन्न कथाओं में 'कल्पसूत्र' और 'स्थानांगसूत्र' ग्रन्थों में हुआ है। ये ही प्रस्तुत चरित्र रचना के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। प्रस्तुत महाकाव्य '352' पृष्ठों का है। भगवान महावीर के सम्पूर्ण चरित्र को कवि ने नौ सोपानों में विभाजित करके चित्रित किया है।

'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र' में महावीर-चरित्र

प्रथम सोपान--गर्भ एवं जन्म-कल्याण

(1) **स्वर्ग से च्यवन**—बिहार राज्य के वैशाली नगर में महाकुण्ड नामक गाँव में ऋषभदत्त ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी देवानन्दा एक विदुषी नारी थी। देवलोक से तीर्थंकर के जीव ने देवानन्दा के गर्भ में प्रवेश किया। यही वर्द्धमान का जीव था। तभी से धन-धान्य की समृद्धि होने लगी। ब्राह्मण कुल में तीर्थंकर का जन्म नहीं होता है। वर्द्धमान के जीव में ब्रह्मतेज के साथ क्षत्रिय भावना का अद्‌भुत मिश्रण था। अतः ब्राह्मण कुल को छोड़ क्षत्रिय कुल में गर्भ का परिवर्तन इन्द्र ने किया। प्रबल संस्कार से यह परिवर्तन सम्भव होता है।

(2) **माता त्रिशला के गर्भ में**—वैशाली के क्षत्रिय कुण्डग्राम में राजा सिद्धार्थ रहता था। उसकी रानी त्रिशला के गर्भ में तीर्थंकर का जीव आया। रानी त्रिशला को आषाढ़ शुक्ल षष्ठी तिथि की रात के अन्तिम प्रहर में स्वप्न दिखाई दिये। सपनों में सिंह, हाथी, बैल, लक्ष्मी, दो पुष्पमाला, चन्द्र, सूरज, ध्वज, कलश, पद्म, सिन्धु, विमान, रत्न, धूम्ररहित अग्नि, मुख में जाता हुआ हाथी आदि चौदह स्वप्न थे।

(3) **सपनों का विश्लेषण**—रानी त्रिशला ने राजा सिद्धार्थ को सपनों की बात कही। तब राजा ने कहा कि सभी स्वप्नों का फल यही है कि एक भव्य अलौकिक जीव तीर्थंकर भगवान के रूप में तेरे गर्भ में बढ़ रहा है। इतने में इन्द्र सपरिवार आकर राजा-रानी का पूजन करके गर्भोत्सव मनाते हैं।

(4) **जन्मकल्याणक**—चैत्र-शुक्ल त्रयोदशी सोमवार (विधुवार) के दिन बालक वर्द्धमान का जन्म हुआ। प्रसव काल में स्वर्ग से देवों ने आकर उत्सव मनाना आरम्भ किया। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। इन्द्र और इन्द्राणी उस नवजात बालक को लेकर सुमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर अभिषेक करने के लिए ले जाते हैं। और शिशु को राजमहल में माता के पास लाकर छोड़ जाते हैं। अलौकिक, महामानव के गर्भजन्म-महोत्सव मनाने स्वर्ग से इन्द्रादिदेवों का आगमन होता है। यह पौराणिक दृष्टि रही है।

द्वितीय सोपान—बाल एवं किशोर अवस्था

(1) **बाल-लीला**—शिशु वर्द्धमान के जन्मतः तीन ज्ञान थे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान। ये भीतर से संवेदनशील थे। वर्द्धमान बाहर से क्रीड़ाशील थे। बाललीलाओं का चित्रण मनोहारी है।

(2) **किशोर अवस्था**—एक दिन वर्द्धमान ने छत पर से देखा कि नगर-पथ पर एक मदोन्मत्त हाथी अनेक लोगों को अपने पैरों तले कुचलता हुआ दौड़ रहा है। वर्द्धमान झट जाकर हाथी को वश में कर लेते हैं और नगरजनों की रक्षा करते हैं। कवि वर्णन करता है—

"ऐसे संकट की वेला में, कैसा शौर्य दिखाया।
जान हथेली पर लेकर, जनता को आन बचाया॥"

(श्रमण भगवान महावीर-चरित्र, पृ. 86)

महावीर के चरित्र में परोपकार, जनकल्याण की भावना रही है। किशोर वर्द्धमान जंगल में मित्रों के साथ वृक्ष के ऊपर खेल खेल रहे थे। इतने में वहाँ एक विषैला सर्प विकराल रूप धारण करके दिखाई दिया। सभी बाल-मित्र भाग गये। लेकिन किशोर वर्द्धमान ने उस पर विजय पायी। वह सर्प मायावी रूप छोड़कर देव के रूप में प्रकट हुआ। उसने किशोर वर्द्धमान से क्षमा माँगी और प्रभु की वन्दना करके देवलोक में लौट गया।

तृतीय सोपान—युवक एवं विरागी महावीर

(1) **तरुणावस्था**—किशोर वर्द्धमान ने युवावस्था में पदार्पण किया। कवि युवावस्था का वर्णन करता हुआ कहता है—

"विकसित पुलकित अंग, हृदय में साहस, हीरे-सी जगमग थी काया।
नख-शिख में अनुपात, सुघरता छवि में, सिहर उठी यौवन की माया॥"

(वही, पृ. 93)

युवक वर्द्धमान के सौन्दर्य से सभी प्रभावित थे। अतः माता-पिता ने वर्द्धमान के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। वसन्तपुर नगरी के राजा समरवीर की बेटी यशोदा माता को बहू के रूप में पसन्द थी। वर्द्धमान के मन में विवाह करें या न करें—इस बात को लेकर द्वन्द्व चलता रहा। लेकिन माता-पिता के प्रति अत्यधिक सम्मान होने के कारण वे विवाह के पक्ष में विचार करते हैं।

(2) **अन्तर्द्वन्द्व**—माता-पिता की इच्छा को टालकर वर्द्धमान उन्हें दुःख पहुँचाना नहीं चाहता था। अतः उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया। कुण्डग्राम में वर्द्धमान के विवाह की वार्ता सुनकर आनन्दमय वातावरण फैला। विवाहोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। वर्द्धमान और यशोदा के प्रेमव्यवहार का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया—

"टूट गयी थी डोर वासना जीत गयी, मधुर मिलन में घड़ियाँ कितनी बीत गयीं।
पंख लगाकर प्यार-गगन में विचर गया, थी अनन्त की सत्ता जैसे जीत गयी॥"

(वही, पृ. 105)

गृहस्थावस्था में युवक वर्द्धमान रम गये थे। लेकिन कुछ ही दिनों में वासना और विवेक में संघर्ष आरम्भ हुआ। वर्द्धमान चित्त के समस्त विकारों-वासना आदि के विरुद्ध संघर्ष करने उद्यत हुए।

(3) **वर्द्धमान का आत्मचिन्तन**—माता-पिता की मृत्यु की घटना अनुभव करके वर्द्धमान के अन्तःकरण में वैराग्य भावना जाग उठी। युवक वर्द्धमान संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेने का संकल्प करते हैं। संसार क्षणभंगुर है, देह नश्वर है। अतः आत्मकल्याण के लिए शेष समय का उपयोग करना चाहिए।

वे कहते हैं—

> "मूल्यवान है एक-एक पल इस जीवन का,
> हो जाए व्यतीत, न फिर यह माँगा जाए।" (वही, पृ. 116)

इस प्रकार मुनिदीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प वर्द्धमान ने किया। अपना संकल्प भाई नन्दिवर्धन से कहा। भाई विरोध करता है। अन्त में दो साल के बाद महल छोड़ने का निश्चय व्यक्त करते हैं।

(4) **महलों में योगी**—वर्द्धमान महलों में रहकर भी योगी थे। वे भोगी नहीं थे, नीरोग थे। उन्हें मुक्ति के वैभव का आकर्षण रहा। परपीड़ा को दूर करने के लिए धनवैभव का उपयोग किया। दान की पराकाष्ठा उनके चरित्र में है।

(5) **विदा की वेला**—गौतम बुद्ध की यशोधरा की मनोव्यथा का जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'यशोधरा' चम्पू काव्य में चित्रण किया है, उसी प्रकार महाकवि योधेयजी ने भी वर्द्धमान की विद्रोही यशोदा की अन्तर पीड़ा को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। यशोदा की व्यथित अवस्था को देखकर वर्द्धमान की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वर्द्धमान के मुख-मण्डल को देखकर यशोदा शान्त हुई और उसके प्रति श्रद्धा का भाव जाग उठा।

चतुर्थ सोपान—भगवान महावीर की मुनिदीक्षा

(1) **आत्म-निर्णय के क्षण**—वर्द्धमान के मन ने संकल्प किया कि—

> "पीड़ा में कोई पलता हो, लँगड़ाकर कोई चलता हो।
> उसका सम्बल बनकर जीना, जो दुःख में सड़ता गलता हो।"
> (वही, पृ. 131)

इस तरह वर्द्धमान के हृदय में दीन-दलितों के प्रति करुणा का स्रोत उमड़ पड़ा और परोपकार की भावना जाग उठी।

(2) **सहनशीलता**—गुलाब के फूल, धरती, तवे पर की रोटी की तरह दूसरों के द्वारा दिये गये कष्टों को सहन करके उनका उपकार करती है। उसी तरह मनुष्य को

भी सहनशील होना चाहिए। अतः आत्मा की महानता का रहस्य निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है—

> "दयावान दानी जो होता, मानरहित मानव जो होता,
> क्षमाशील होने से सबका, प्रिय सखा मनभावन होता॥" (वही, पृ. 135)

जनकल्याण करने के लिए लोक हितकारी चरित्र को दयाशील, क्षमाशील तथा विनम्र होना अनिवार्य होता है।

(3) **दीक्षा के समीप**—वर्द्धमान सत्य, अहिंसा, समता, संयम का चिन्तन करते-करते मुनि-दीक्षा लेने का संकल्प करते हैं। देव उस समारोह की तैयारी में लगते हैं। त्रिलोक में प्रभु के इस संकल्प से उत्साह का निर्माण हुआ। लोककल्याण के लिए वर्द्धमान घोर तपश्चर्या करने के लिए उद्यत हुए।

(4) **दीक्षा**—वर्द्धमान मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष, दशमी तिथि के सुबह रत्नजटित परिधान पहनकर धीर-वीर सेनानी जैसे शत्रु पर विजय पाने के लिए महल से वन निकले। वहाँ जंगल में सब वस्त्र और आभूषण छोड़ दिये और पाँचमुष्टि से केशलोंच किया।

(5) **दीक्षा के उपरान्त**—दीक्षा के उपरान्त वर्द्धमान के भाई नन्दिवर्धन को अपना जीवन अधूरा लगने लगा। भाई के विरह में वे अत्यन्त दुःखी हुए। एक नंगा भूखा ब्राह्मण मुनि वर्द्धमान के पास कुछ भीख माँगता है। प्रभु ने आधा देव वस्त्र उसे दे दिया। ब्राह्मण को उस आधे वस्त्र का मूल्य एक लाख मोहर मिली। वह प्रसन्न हुआ। शेष आधा वस्त्र जंगल की झाड़ी में उलझ गया। प्रभु ने उस आधे वस्त्र को वहीं छोड़ा। उन्हें उसे छोड़ने का तनिक भी खेद नहीं हुआ। वर्द्धमान स्वेच्छा से समस्त राजवैभव का त्याग करके श्रमणसाधना के पथ पर चलते रहे।

पंचम सोपान—साधना एवं उपसर्ग

(1) **तप-साधना एवं उपसर्ग**—प्रभु वर्द्धमान वन के प्रांगण में वनस्पति, पशु-पक्षियों के बीच सहज जीवन व्यतीत करते हुए आत्मध्यान करते थे। वर्द्धमान के तप का सामर्थ्य ऐसा था कि समस्त पशु-प्राणी परस्पर वैर को भूलकर निर्भयता से बैठे हुए थे।

(2) **उपसर्ग**—तप करते समय अनेक भँवरों ने, कीड़ों ने प्रभु के देह को नोचा, लेकिन वे शान्त भाव से उस उपसर्ग को सहन करते रहे।

षष्ठ सोपान—साधना का स्वरूप

(1) **साधना का स्वरूप आत्मगत एवं समष्टिगत**—साधना से साधक के हृदय में नवशक्ति का संचार होता है। कवि का कथन है—

"आलस्यहीन, श्रमलीन मनुज, आबद्ध-वृत्ति, सक्रिय मनुज।
हो जाता आत्मजयी अर्हत्, यदि स्वस्थ-चित्त से रहे मनुज।"

(वही, पृ. 220)

श्रमणसाधना चित्त की शुद्धता और एकाग्रता के महत्त्व को स्पष्ट करती है।

(2) **वर्द्धमान का साधना पथ**—वर्द्धमान की साधना का पथ अत्यन्त कठोर था। वह पीड़ा से विचलित नहीं होते थे। सदैव कर्तव्यशील, सहनशील और निर्लिप्त भाव में रहते थे।

"पाप-पुण्य दोनों की सीमा, उनको बाँध न पाती थी।
कठिन साधना करते रहकर, देह नहीं थक पाती थी॥" (वही, पृ. 230)

प्रभु करुणा सागर ने अपनी पीड़ा का कभी खयाल नहीं किया। पर-पीड़ा को दूर करने के लिए जीवन समर्पित किया।

सप्तम सोपान—भगवान महावीर को केवलज्ञान-प्राप्ति

(1) **साधना की चरम स्थिति**—भगवान महावीर की ध्यान-साधना अब चरम उत्कर्ष पर पहुँची।

(2) **लक्ष्य के निकट**—वर्द्धमान ऋजुबालिका नदी के तट पर जृम्भक नामक ग्राम में विहार करने गये। कठोर साधना के परिणामस्वरूप वर्द्धमान भगवान महावीर बने।

(3) **केवलज्ञान की उपलब्धि**—वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि में—

"केवलज्ञान हुआ उपलब्ध 'वीर' को तत्क्षण।
संसृति का हर जीव, उन्हें था वन्दन करता।" (वही, पृ. 287)

भगवान महावीर वीतरागी एवं केवलज्ञानी बने। अतः वे सर्वत्र वन्दनीय रहे।

अष्टम सोपान—भगवान महावीर के उपदेश का प्रभाव

(1) **ग्यारह गणधर**—भगवान महावीर के समवसरण में इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह गणधर पहुँचे। प्रभु के दर्शन से उनकी सभी शंकाएँ निर्मूल हो गयीं। समस्त पण्डितों का गर्व नाश हुआ और उन्होंने मुनिदीक्षा ग्रहण की। महावीर के शिष्य बने। प्रभु की सर्वज्ञता की महिमा जानकर वैदिक ब्राह्मण गणधरों ने जैनसाधना में दीक्षा ग्रहण की।

(2) **चन्दनबाला का संयम ग्रहण**—भगवान के समवसरण में चन्दनबाला भी साधना करने के लिए संयमपूर्वक दीक्षा लेने आयी थी। महावीर ने उसे साधना-पथ में दीक्षित करके उसे संघप्रमुख बनाया।

नवम सोपान—भगवान महावीर का परिनिर्वाण-महोत्सव

(1) निर्वाण क्या?

निर्वाण का अर्थ है—मुक्ति पाना। मुक्तावस्था में पहुँचना। मुक्ति का सुख या आनन्द शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

(2) परिनिर्वाण—ध्यान की चौथी स्थिति शुक्लध्यान में पहुँचने पर शुद्धात्मा परमात्मा पद को प्राप्त करता है अर्थात् उसका परिनिर्वाण होता है। परिनिर्वाण में मान्यता है कि देह त्यागकर जीव जहाँ पहुँचता है (लोकाकाश का अग्रिम स्थान, सिद्ध शिला) वहाँ से लौटकर नहीं आता है अर्थात् भव-भ्रमण से मुक्त होता है।

संक्षेप में, अभयकुमार 'योधेय' ने श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार महावीर के चरित्र-चित्रण में त्रिशला माता के चौदह स्वप्नों का विश्लेषण करके गर्भान्तरण के प्रसंग को चित्रित किया है। महावीर के विविध नामों के अन्वयार्थ का प्रतिपादन करते हुए जिन घटनाओं का जिक्र किया है, वे प्रसंग श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार हैं। वर्द्धमान के विवाह की घटना तथा उसके सन्तान होने की मान्यता भी उक्त परम्परा की है। मुनिवेश धारण करके साधना करते समय जिन उपसर्गों एवं परीषहों को चित्रित किया गया है, वे भी उसी श्वेताम्बर परम्परा से प्राप्त वर्णन हैं। महावीर के उपदेशों का सार यह है कि प्रत्येक जीव उसी की तरह साधना करके वैसा ही केवलज्ञानी बन सकता है। वह स्वयं अपना भाग्य विधाता है। व्रत, संयम, तप एवं ध्यान से हर जीवात्मा उत्थान की चरम सीमा तक अर्थात् परमात्मा पद तक पहुँच सकता है।

निष्कर्ष

आधुनिकता की धारणा का मूलाधार ऐतिहासिक चेतना है। अतः वह प्राचीन इतिहास एवं पौराणिक परम्परा से चेतन, गतिशील तत्त्वों को स्वीकार करती है। मानवी जीवन के शाश्वत-चिरन्तन मूल्यों को अपनाकर उन्हें आधुनिक परिवेश के यथार्थ पर विवेकशीलता की कसौटी पर कसकर उन्हें आचरण में लाने की बुद्धिवादी वैज्ञानिक जीवनदृष्टि आधुनिकता है। उक्त दृष्टि से आधुनिक ऐतिहासिक महाकाव्यों में आधुनिकता का रंग भरा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुशीलन का विषय हिन्दी महाकाव्यों में चित्रित भगवान महावीर होने से महावीर-चरित्र के आधुनिक छह महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र का अध्ययन प्रस्तुत करने पर निष्कर्ष के रूप में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं—

(1) जैनधर्म के अन्तिम 24वें तीर्थंकर जैनधर्म के समुन्नायक, प्रबल प्रवर्तक, ऐतिहासिक महावीर के समग्र जीवन की अभिव्यक्ति समस्त आलोच्य

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में हुई है। तीर्थंकर, परमज्योति, श्रमणभगवान, अर्हत्, केवली भगवान, महामानव के रूप में महामहिम वर्द्धमान के ऐतिहासिक चरित्र को रूपकों, प्रतीकों, मिथकों के द्वारा पौराणिक महापुरुष के रूप में मुख्यतः चित्रित किया गया है।

(2) समस्त कवियों ने महावीर के चरित्र की अलौकिकता, दिव्यता, लोकोत्तरता की महिमा का भक्ति-भाव से वर्णन किया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की भगवान महावीर-चरित सम्बन्धी महाकाव्यों की परम्परा का अनुकरण करते हुए आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में महावीर चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए समस्त महाकाव्यों में भगवान महावीर के चरित्र को पंचकल्याणक महोत्सवों के प्रसंग वर्णनों द्वारा प्रस्तुत किया गया। ये समस्त महाकाव्य ऐतिहासिक होते हुए भी उनमें एक मात्र चरित्र ही इतिहाससिद्ध है। इनमें अन्य ऐतिहासिक यथार्थ प्रसंगों का अभाव है।

(3) आधुनिक कवियों ने ऐतिहासिक महावीर के चरित्र को मानवीय भावभूमि पर अवतरित होने नहीं दिया, अपितु उनके लोकोत्तर, ईश्वरीय रूप को ही अधिक ग्राह्य, आदर्शपरायण और परम आध्यात्मिक माना है। क्योंकि इन चरित महाकाव्यों में भगवान महावीर के उपदेशों का प्रतिपादन एवं प्रचार-प्रसार मुख्य उद्देश्य रहा है। भगवान महावीर के विचारों को जैन परम्परासम्मत रूप में उनकी आध्यात्मिकता एवं लोकोत्तरता को अक्षुण्ण एवं विशुद्ध रखा है। भगवान महावीर के जीवन-दर्शन को लेकर किसी सम्प्रदाय विशेष में मतभेद नहीं दिखाई देता। मतमतान्तर जो है वह भगवान महावीर की ऐतिहासिक जीवनी को लेकर है।

(4) आलोच्य महाकाव्यों के कवियों में से कवि वीरेन्द्र प्रसाद जैन ने अपने 'तीर्थंकर भगवान महावीर' महाकाव्य में महावीर की जीवनी को दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार रेखांकित किया है। महावीर आजन्म ब्रह्मचारी रहे। युवावस्था में ही दिगम्बर मुनिदीक्षा ग्रहण करके निर्ग्रन्थ के रूप में तप-साधना की। धन्यकुमार जैन 'सुधेश' ने महावीर के चरित्रांकन को दिगम्बर सम्प्रदाय के ढंग पर प्रस्तुत किया है। इन दोनों कवियों ने महावीर के जीवन में आदि से अन्त तक वीतरागता के रूप को स्पष्ट किया है।

(5) कवि अभयकुमार योधेय ने श्वेताम्बर मान्यताओं के अनुसार भगवान महावीर के चरित्र में उनके विवाह तथा एक सन्तान होने की चर्चा की है। दीक्षा के समय सचेल होने का भी उल्लेख है। भगवान महावीर के

गर्भान्तरण के प्रसंग भी चरित्र में समाविष्ट हैं। भगवान महावीर की साधना एवं उपद्रवों की घटनाएँ परम्परागत श्वेताम्बर मान्यताओं के अनुसार चित्रित की गयी हैं।

(6) महाकवि अनूप ने 'वर्द्धमान' महाकाव्य में भगवान महावीर का चरित्र प्रस्तुत करते हुए दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा वैदिक सम्प्रदाय की विचारधाराओं में समन्वयवादी दृष्टि अपनायी है। श्रमण परम्परा और ब्राह्मण परम्परा के आदर्शों का समन्वय भगवान महावीर के चरित्रादर्शों एवं उपदेशों में स्थापित करके सन्तुलित दृष्टि का परिचय महाकवि अनूप ने दिया है। डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने अपने 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य में समन्वय की दृष्टि अपनाते हुए अधिकतर दिगम्बर मान्यताओं के अनुसार भगवान महावीर के चरित्र का परिचय दिया है। भगवान महावीर के गर्भकल्याणक महोत्सव के प्रसंग को टाल दिया है। महावीर के चरित्र के प्रति उनका दृष्टिकोण बुद्धिवाद का रहा है। भगवान महावीर की चिन्तनधारा का सुव्यवस्थित, सन्तुलित एवं वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है। भगवान महावीर के जीवनवृत्त को एक नये परिवेश में देखकर उसे महाकाव्यात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी है। रघुवीरशरण 'मित्र' ने 'वीरायन' में भगवान महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को अपने युगीन परिस्थितियों के परिवेश में परखकर उनके जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति को प्रधानता दी है। सही अर्थों में इस रचना में भगवान महावीर के चरित्र-वर्णन में आधुनिकता की दृष्टि का परिचय हमें प्राप्त होता है। समन्वयवादी दृष्टिकोण से भगवान महावीर के चरित्र को प्रस्तुत करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। कुल मिलाकर भगवान महावीर के चरित्र में हमें नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा, आत्मविकास के विविध सोपानों की प्रक्रिया की वैज्ञानिक दृष्टि मिलती है। सामाजिक पक्ष में उदारमतवादी, मानवतावादी, समतावादी, सर्वोदयवादी के रूप में चरित्र उभरकर आया है।

तृतीय अध्याय

भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण

भगवान महावीर के चरित्र का समग्र चित्रण हिन्दी साहित्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। साम्प्रदायिक अभिनिवेश से मुक्त, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महावीर-चरित्र हिन्दी साहित्य की धरोहर हो सकती है। हिन्दी के आधुनिक महावीर चरित महाकाव्यों के अनुशीलन से महावीर चरित्र का सम्यक् एवं वैज्ञानिक आकलन करने का प्रयास है।

भगवान महावीर लोकोत्तर, आत्मज्ञ महापुरुष थे। वे अन्तर्जगत के जगज्जेता थे। उनका व्यक्तित्व और चरित्र विश्व के उन सभी योद्धाओं, राजाओं, महाराजाओं और चक्रवर्ती सम्राटों से भिन्न है, जिन्होंने भयंकर रक्तपात कर अपनी राजसत्ता का विस्तार किया तथा आतंकवादी साम्राज्यवाद का पोषण करते हुए भोगासक्त जीवन बिताकर मृत्यु की शरण ली। युद्ध में लाखों-करोड़ों दुर्जेय योद्धाओं को जीतने की अपेक्षा एक अपनी आत्मा को जीतना सर्वश्रेष्ठ विजय है। आत्मा द्वारा आत्मा को जीतनेवाला ही पूर्णतः सुखी हो सकता है, सच्चा विजेता वही है। महावीर ऐसे ही वीर योद्धा हैं।

भगवान महावीर की जीवनगाथा आत्मसंघर्ष, आत्मविजय और आत्मसुख की त्रिसूत्रीय योजना में गुँथी हुई है। इसीलिए भगवान महावीर का चरित्र भौतिक घटनाओं और सामयिक प्रसंगों का चित्रण मात्र नहीं है। उनका चरित्र अन्तःसाधना, आत्मचिन्तन एवं आत्मोत्कर्ष का क्रमिक विकास है। अन्तर्मुखता उनके चरित्र का प्रधान गुण तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संयम, तप, ध्यान आदि उनकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं। कर्मकाण्ड का प्रदर्शन उनका स्वभाव नहीं है। डॉ. भगवानदास तिवारी के शब्दों में—"यही कारण है कि भगवान महावीर के व्यक्तित्व और चरित्र के आकलन के लिए उनके जीवन की बाह्य घटनाओं के साथ-साथ उनकी अन्तरंग वैचारिक क्रान्ति का अन्तर्दर्शन अनिवार्य है।...भगवान महावीर के विचारों को समझे बिना उनके व्यक्तित्व और चरित्र को आत्मसात नहीं किया जा सकता। विचार और व्यवहार, चरित्र के क्रमशः अन्तरंग और बहिरंग पक्ष हैं। इसीलिए भौतिक जीवन के उतार-चढ़ाव की अपेक्षा अन्तःसाधना में, आत्मान्वेषी प्रज्ञा की ऊर्ध्वगामी गति में,

अन्तर्यात्रा में भगवान महावीर का सूक्ष्म चरित्र अधिक स्पष्ट, मुखर और प्रभविष्णु है।"[1]

अतः भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण क्रमशः बहिरंग चित्रण और अन्तरंग चित्रण दो विभागों में किया जाता है।

बहिरंग-चित्रण का स्वरूप

प्रत्येक चरित्र के दो रूप होते हैं—एक दृश्य रूप और दूसरा अदृश्य रूप। व्यक्ति का आकार, रंग, रूप, वेशभूषा और पंचेन्द्रियों द्वारा व्यक्त क्रियाएँ, ये सभी दृश्य रूप के अन्तर्गत आते हैं। कोई क्रिया करने के पहले या बाद में व्यक्ति के मन में जो विचार आते हैं वे अव्यक्त रूप में होते हैं। किसी व्यक्ति का व्यक्त रूप ही उसका बहिरंग रूप है और अव्यक्त रूप ही उसका अन्तरंग रूप होता है। हिमनग का व्यक्त रूप देखकर सम्पूर्ण हिमनग की कल्पना करना असम्भव है, क्योंकि हिमनग का विशाल रूप छिपा रहता है। उसी प्रकार किसी पात्र का जो व्यक्त रूप (बहिरंग रूप) होता है, उससे उस पात्र के सम्पूर्ण चरित्र की कल्पना करना भ्रामक होता है। फिर भी बहिरंग चित्रण से पात्र के अन्तरंग का एक अनुमान किया जा सकता है। डॉ. वसन्त मोरेजी का कथन है—"बहिरंग चित्रण पात्र के व्यक्तित्व को एक ठोस रूप देकर उसे मांसल बनाता है। इस चित्रण के आधार पर किसी पात्र का एक मूर्त रूप हम देख सकते हैं, और इस चित्रण की सहायता से ही उसका अन्तरंग चित्रण समझने में हमें सहायता मिलती है।"[2]

बहिरंग चित्रण की प्रणालियाँ

चरित नायक का प्रथम प्रभाव इस बहिरंग चित्रण के आधार पर ही पाठकों पर पड़ता है। अतः श्रेष्ठ साहित्यकार पात्र के अन्तरंग चित्रण के साथ-साथ बहिरंग चित्रण पर भी समान रूप से ध्यान देते हैं। उससे पात्र के व्यक्तित्व का परिपूर्ण और प्रभावी चित्रण होता है। अतः काव्य चरित के अध्ययन में बहिरंग चित्रण आवश्यक होता है। राजवंशवर्णन, नामअर्थ-प्रतिपादन, आकृति-रूप-वेशभूषा वर्णन, स्थित्यंकन, अनुभावचित्रण, घटनाओं द्वारा चित्रण इन छह चित्रण प्रणालियों से भगवान महावीर के चरित्र का बहिरंग चित्रण किया गया है।

राजवंश-वर्णन :—आजकल यह नहीं माना जाता कि श्रेष्ठ चरित्र की दृष्टि से चरित्र नायक का जन्म श्रेष्ठ कुल में ही होना चाहिए। लेकिन प्राचीन भारतवासियों की

---

1. डॉ. भगवानदास तिवारी : भगवान महावीर : जीवन और दर्शन, पृ. 4
2. डॉ. वसन्त केशव मोरे : हिन्दी साहित्य में वर्णित छत्रपति शिवाजी के चरित्र का मूल्यांकन, (शोध-प्रबन्ध), पृ. 726

यह धारणा थी कि चरित्रनायक श्रेष्ठ कुल में ही उत्पन्न हो। अतः महाकाव्य के लक्षणों में यह अनिवार्य था कि नायक श्रेष्ठ कुल में (क्षत्रिय, राजवंश में) उत्पन्न हो। आज भी कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि श्रेष्ठ कुल के कारण वंशपरम्परा से नायक में श्रेष्ठ गुण आ जाते हैं। भगवान महावीर का जन्म राजवंश में क्षत्रिय कुल में हुआ है। पिता सिद्धार्थ जिस के अधिनायक थे वह ज्ञातृकुल भगवान ऋषभदेव का इक्ष्वाकुवंशीय कुल था। भगवान ऋषभदेव का गोत्र भी काश्यप था। सिद्धार्थ का गोत्र भी काश्यप था। उल्लेखनीय बात यह है कि 22 तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंशीय काश्यप गोत्रीय हुए हैं।

ईसापूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत के पूर्वी भाग में लिच्छवि जाति के नाथकुल में इक्ष्वाकुवंशीय, काश्यपगोत्रीय राजा सिद्धार्थ, वज्जी गणतन्त्र के प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ, आत्मजाग्रत, सदाचारी, सम्यग्ज्ञानी, महापराक्रमी, आदर्श, लोकप्रिय शासक थे। उनका विवाह वैशाली के ही धर्मवीर चेटक की कन्या प्रियकारिणी त्रिशला के साथ हुआ था। वह अत्यन्त रूपवती, गुणवती, धर्मपरायणा विदुषी थी। यही त्रिशला और राजा सिद्धार्थ तीर्थंकर भगवान महावीर के माता-पिता थे। महाकवि 'अनूप' 'वर्द्धमान' महाकाव्य में भगवान महावीर के वंश के सम्बन्ध में कहते हैं...

"यही यशस्वी हरि-वंश-व्योम के,
दिनेश सिद्धार्थ प्रदीप्तमान थे।" (वर्द्धमान, पृ. 42)

'वीरायन' महाकाव्य में कवि भगवान महावीर के कुल के सन्दर्भ में लिखता है—

"ज्ञातृकुल में वीर वर, वैशालिय अवतीर्ण।
अणु-अणु कण-कण में हुई, सुरभित ज्योति विकीर्ण॥"

(वीरायन, पृ. 96)

वर्द्धमान की माता त्रिशला देवी के राज-वैभव का चित्रण करते हुए कहा गया—

"है कुण्डग्राम में छटा छबीली छायी
राजोद्यान में रूप-राशि मुस्कायी॥"

(तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 22)

भगवान के पिता सिद्धार्थ वैशाली जनतन्त्र के अधिपति थे। राज-दरबार में रानी त्रिशला का आगमन होते ही वे उसका यथोचित स्वागत कर सम्मान भी करते हैं। कवि लिखते हैं—

"राजा ने भी कर दिया रिक्त अर्द्धासन।
सब बैठे अब हो रही सभा अति शोभन॥" (वही, पृ. 26)

सभी प्राचीन भारत के इतिहासकारों ने लिच्छवि गणतन्त्र भारत का प्राचीनतम

गणराज्य माना है। विदेह देश स्थित लिच्छवि गणतन्त्र 'भारत का प्राचीनतम उज्ज्वल गणराज्य था। इस गणराज्य के प्रमुख राजा चेटक इतिहास प्रसिद्ध यशस्वी क्षत्रिय थे। राजा चेटक के एक अत्यन्त सौम्य स्वभाववाली त्रिलोकसुन्दरी त्रिशला नामक कन्या थी। उसके शील सौजन्य को देखकर माता-पिता ने उसका एक अन्य नाम प्रियकारिणी रखा। उसका यह नाम उसके सद्गुणों के अनुरूप था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुई तो चेटक महाराज ने उसका विवाह भूपाल शिरोमणि कुण्डग्राम पुरस्वामी राजा सिद्धार्थ के साथ कर दिया।

डॉ. हीरालाल जैन ने 'महावीर युग और जीवनदर्शन' पुस्तक में महावीर के समकालीन ऐतिहासिक पुरुषों का विवरण सप्रमाण दिया है। "महापुराण (अपभ्रंश ग्रन्थ) सन्धि 98 में तथा संस्कृत उत्तरपुराण (पर्व 75) में वैशाली के राजा चेटक का वृत्तान्त आया है। चेटक अतिविख्यात, विनीत और परम अर्हत् अर्थात् जिन धर्मावलम्बी थे। उनकी रानी का नाम सुभद्रा देवी था। उनके दश पुत्र एवं सात पुत्रियाँ थीं। सबसे बड़ी पुत्री का नाम प्रियकारिणी (त्रिशला) था, जिसका विवाह कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था। उन्हें ही भगवान महावीर के माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"[1]

इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर स्वयं ऐतिहासिक पुरुष थे। और उनके माता-पिता की ऐतिहासिकता भी प्रमाणित हो चुकी है।

भगवती प्रसाद खेतान वर्द्धमान महावीर की ऐतिहासिकता की प्रामाणिकता के विषय में लिखते हैं—"लिच्छवियों के एक प्राचीन ज्ञातृकुल में बिहार की वैशाली नगरी के समीप कुण्डग्राम (आधुनिक वासुकुण्ड) में ई. पू. 599 में भगवान महावीर का जन्म हुआ। उनके पिता सिद्धार्थ इस कुल के मुखिया थे।"[2]

उल्लेख है कि इस भारतवर्ष में चौबीस तीर्थंकर श्रावक (क्षत्रिय) कुल में उत्पन्न हुए। उन्होंने केशलुंचनपूर्वक तपस्या में अपने आपको युक्त किया। उन्होंने इस निर्ग्रन्थ दिगम्बर पद को पुरस्कृत किया। जब-जब वे ध्यान में लीन होते थे, फणीन्द्र नागराज उनके ऊपर छाया करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर का जन्म राजवंश के क्षत्रियकुल में हुआ था।

तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर वैशाली गणतन्त्र के राजकुमार थे। गणतन्त्रों के इतिहास में वैशाली के गणतन्त्र का प्रमुख स्थान है। यह मल्ल, लिच्छवि, वज्जी एवं ज्ञातृ आदि आठ गणतन्त्रों का एक संयुक्त गणतन्त्र था। संयुक्त गणतन्त्र की राजधानी वैशाली थी। इसी वैशाली के उपनगर क्षत्रियकुण्ड (बसाढ) में ज्ञातृशाखा के

1. डॉ. हीरालाल जैन : महावीर : युग और जीवन दर्शन, पृ. 31
2. भगवतीप्रसाद खेतान : महावीर : निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श, पृ. 1

गणराजा सिद्धार्थ थे। उनके सुपुत्र महावीर हैं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत वर्ष के पूर्वीय आँचल के बिहार प्रदेश में वैशाली के उपनगर क्षत्रिय कुण्ड (बसाड़ग्राम) के ज्ञातृगणतन्त्र के काश्यपगोत्रीय राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहाँ 'चैत सुदि तेरस' के दिन भगवान महावीर का जन्म हुआ था। आधुनिक कालगणना के अनुसार उनकी जन्मतिथि 27 मार्च, सोमवार ई. पू. 599 मानी जाती है। महावीर की माता वैशाली की राजकुमारी रानी त्रिशला थी। त्रिशला 'वैशाली' गणराज्य के महामान्य राष्ट्राधीश चेटक की पुत्री थी। त्रिशला का दूसरा नाम प्रियकारिणी था। महावीर के नाना महाराजा चेटक थे। कलिंग देश के राजा जितशत्रु अपनी बेटी यशोदा का विवाह वर्द्धमान के साथ करना चाहते थे। भारत का पूर्वखण्ड उन दिनों शासनतन्त्रों की प्रयोगभूमि था। मगध, वत्स आदि राजतन्त्र के समर्थक थे। महावीर मूलतः गणतन्त्र के राजकुमार थे, परन्तु उनके पारिवारिक सम्बन्ध दोनों तन्त्रों से थे। राजकुमार महावीर को राजवैभव सर्वोच्च रूप में प्राप्त था। परन्तु महावीर का जाग्रत मन विवाह और वैभव-भोग की ओर आकर्षित नहीं हो सका। यौवन के रंगीन-क्षणों में भी वे जन्मजात योगी रहे। इस प्रकार आधुनिक कवियों ने अपने महाकाव्यों में भगवान महावीर के राजवंश का वर्णन ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार सफलतापूर्वक किया है।

नामों के प्रतीकार्थ

वर्द्धमान—भगवान महावीर के गर्भावतरण के बाद वैशाली में पिता सिद्धार्थ के वैभव, यश, प्रताप, प्रभाव और पराक्रम में वृद्धि प्राप्त होने लगी। और स्वयं बालक तीर्थंकर भी द्वितीया के चन्द्र की भाँति वृद्धि को प्राप्त हुए। अतः उनका नाम 'वर्द्धमान' रखा गया। महावीर के विभिन्न कार्यकलापों के कारण उनके अनेक नाम रूढ़ हुए हैं। उनके नामों में केवल नाम-निर्देश ही नहीं, अपितु तदनुकूल वास्तविक गुण भी कारण थे।

"खेत लहलहा उठे भरपूर
बढ़ा पल-पल राजा का कोष
दिया तब, 'वर्द्धमान' शुभनाम
हुआ नगरी का संवर्धन" (श्रमण भगवान महावीर-चरित्र, पृ. 75)

बालक के आगमन से वैभव की वृद्धि हुई, अतः वर्द्धमान नाम सार्थक है।

जन्म के बारहवें दिन राजा सिद्धार्थ ने एक विशाल प्रीतिभोज का आयोजन किया, जिसमें अपने समस्त मित्र, स्वजन-परिजनों को आमन्त्रित किया। सभी को भोजन, वस्त्र आदि से सम्मानित करके राजा सिद्धार्थ ने उनके समक्ष अपने विचार व्यक्त किये--"जब से यह बालक देवी त्रिशला के गर्भ में आया है, उसी दिन से हमारे

परिवार में परस्पर प्रीति, सद्भाव, सम्मान, लक्ष्मी, धन-धान्य, मणि-सुवर्ण आदि की अभिवृद्धि हुई है। प्रजा में आरोग्य, सुख-शान्ति, सौहार्द बढ़ा है। अतः देवी त्रिशला एवं मैंने यह विचार किया है कि इस बालक का गुण सम्पन्न नाम 'वर्द्धमान' रखा जाए।"[1]

भगवान महावीर के विविध नामकरण इन्द्र के द्वारा होने की चर्चा है। कहते हैं—

"सिद्धार्थ तुम्हारा सुत सन्मति, सत्यों का सतत प्रकाश यहाँ।
यह वर्द्धमान यह ज्ञानवान, यह अद्भुत ईश्वर का स्वरूप॥"
(वीरायन, पृ. 100)

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने वर्द्धमान नाम के अर्थ का विश्लेषण करते हुए महावीर के चरित्र का बहिरंग चित्रण किया है।

सन्मति—वर्द्धमान का दूसरा नाम 'सन्मति' प्रचलित रहा। क्योंकि इनके दर्शन मात्र से ही दर्शकों की मिथ्या बुद्धि सम्यक्बुद्धि में परिवर्तित हो जाती है। अतः विजय और संजय चारण मुनियों ने वर्द्धमान की प्रशंसा करते हुए कहा है—

"युग मुनिवर ने इनको पाया,
सु-विचक्षण बालक मेधावी।
झट सोचा 'सन्मति' नाम सुभग,
मति भेद सकी गति मायावी॥" (तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 75)

इस तरह विशेष लक्षण को देखकर वर्द्धमान का नाम सन्मति रखा गया।

कुमार वर्द्धमान बचपन से तीन ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) के धारी थे, अतः उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की विशेष आवश्यकता नहीं थी। "पुराणों में कुमार वर्द्धमान के मेधावी एवं सन्मति होने की चर्चा मिलती है। उन्होंने संजय और विजय दो मुनियों की शंकाओं का निरसन किया। वर्द्धमान के रूप में तीर्थंकर के जीव के आने की बात जानकर दो मुनि कुछ शंका लेकर आये। परन्तु बालक वर्द्धमान को दूर से देखते हुए उनकी शंका का निरसन हो गया। वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और वर्द्धमान का नाम तभी से सन्मति विख्यात हुआ। इस तरह 'सन्मति' नाम की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए महाकवियों ने भगवान महावीर के चरित्र की विशेषता को स्पष्ट किया है।"

वीर—कुण्डलपुर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर मार्ग में आनेवाले स्त्री-पुरुषों को कुचलता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। जनता भयभीत हो उठी। वर्द्धमान ने हाथी

---

1. सं. श्री. अमरमुनि : सचित्र तीर्थंकर-चरित्र, पृ. 115

का काल जैसा विकराल रूप देखा। निर्भय होकर वर्द्धमान ने कठोर शब्दों में हाथी को ललकारा। वह ललकार सिंह गर्जना-सी प्रतीत हुई। अतः वह सहमकर खड़ा हो गया। वर्द्धमान उसके मस्तक पर जा चढ़े और अपनी वज्रमुष्टियों (मुक्कों) के प्रहार से उसे निर्मद कर दिया। तब जनता ने वर्द्धमान की निर्भयता और वीरता की प्रशंसा करके उसे 'वीर' नाम से पुकारा। इस तरह वर्द्धमान का नाम 'वीर' रूप में प्रसिद्ध हुआ। पिता सिद्धार्थ वर्द्धमान की निर्भयता की प्रशंसा सुनकर धन्य हुए। नगरवासियों ने 'वीर' के नाम से सम्बोधन किया।

अतिवीर—कवि ने 'वर्द्धमान' के 'अतिवीर' नाम की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए कहा है—नगर में एक मदोन्मत्त हाथी विकराल रूप धारण करके उत्पात मचा रहा था।

"उस दिन से ही 'अतिवीर' नाम
भी उनके लिए प्रयुक्त हुआ।" (परमज्योति महावीर, पृ. 256)

वीर वर्द्धमान की इस दृढ़ता की निर्भयता की प्रशंसा करते हुए नगर जनों ने उसका 'अतिवीर' नाम से जयजयकार किया।

महावीर—लगभग आठ वर्ष के होने पर वर्द्धमान एक बार अपने साथियों के साथ प्रमद-वन में क्रीड़ा करने गये। वृक्ष को लक्ष्य करके क्रीड़ा (आमली क्रीड़ा) कर रहे थे। जब वे अपने साथियों के साथ खेल रहे थे, तभी इन्द्र द्वारा प्रेरित संगमदेव उनकी परीक्षा लेने आया। वह महाभयंकर सर्प का रूप लेकर उस वृक्ष से आकर लिपट गया, जिस पर वर्द्धमान अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे। विषधर को देखते ही अन्य साथी तो भयभीत होकर भाग गये, लेकिन वर्द्धमान डरे नहीं। उन्होंने दोनों हाथों से सर्प को पकड़ा। निर्भयतापूर्वक सर्प के साथ क्रीड़ा करने लगे। सर्प की पूँछ पकड़कर दूर फेंक दिया। अपनी पीठ पर बैठाकर भी संगमदेव रूपी सर्प ने उन्हें डराना चाहा, किन्तु सफल नहीं हुआ। राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता एवं साहस को देखकर संगमदेव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्रकट होकर वर्द्धमान तीर्थंकर की स्तुति की, और उन्हें 'महावीर' की महत्ता से अलंकृत किया। तभी से 'वर्द्धमान' 'महावीर' कहलाने लगे।

आलोच्य महाकाव्यों में 'अहि-मर्दन' प्रसंग का चित्रण कलात्मक ढंग से किया गया है।

डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य में महावीर नाम की सार्थकता के प्रसंग का चित्रण चौथे सर्ग में किया है। वर्द्धमान दिगम्बर मुद्रा में तपसाधना करते थे। उज्जयिनी के महाश्मशान में प्रतिमा योग साधना में मग्न थे। स्थाणुरुद्र ने उनकी धीरता की परीक्षा ली। पिशाचदल सहित उसने विकराल रूप दिखाकर वर्द्धमान को डराने का प्रयत्न किया, लेकिन असफल रहा। अन्त में वर्द्धमान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

"इसी से महावीर शुभ नाम, श्रेष्ठतम मात्र तुम्हीं गुणग्राम।"

(तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 84)

यही महावीर नाम विश्वविख्यात हुआ। इस परीक्षा के बाद और कोई परीक्षा का प्रसंग नहीं आया। वर्द्धमान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तभी से भगवान तीर्थंकर महावीर के रूप में विश्वव्यवहार में प्रसिद्ध रहे।

समस्त आलोच्य महाकाव्यों में आमली क्रीड़ा, हाथी नियन्त्रण, रुद्रस्थाणु का उपद्रव, अहिमर्दन आदि घटनाओं का चित्रण हुआ है। इन घटनाओं के कारण वर्द्धमान 'महावीर' के रूप में विश्वविख्यात हुए हैं। कुमार वर्द्धमान बचपन से ही निडर थे। वे वीर, अतिवीर, सन्मति एवं महावीर बने।

डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल ने अपने 'ऐतिहासिक महापुरुष तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर' नामक ग्रन्थ में उक्त घटना को ऐतिहासिक घटना के रूप में प्रतिपादित किया है। "कुमार वर्द्धमान के कुमार काल की आमली क्रीड़ा की एक प्राचीन प्रतिमा लखनऊ के पुरातत्त्व संग्रहालय में है। यह ईसवी प्रथम शती की है। एक अन्य शिलापट्ट मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय में कुषाण काल का है। इसमें वर्द्धमान अपने बाल सखाओं के साथ क्रीड़ारत हैं। मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय की शिलापट्ट-प्रतिमा में संगमदेव कुमार वर्द्धमान को दायें कन्धे पर और एक अन्य कुमार को बायें कन्धे पर चढ़ाये हुए नाच रहा है। मथुरा संग्रहालय का संग्रह सं. 1115 आठ इंच का शिलापट्ट है।"[1]

वर्द्धमान पुराणम् (सेनापति चामुण्डराय कृत, कन्नड़भाषा, पृ. 291) के अनुसार कुमार वर्द्धमान के साथ क्रीड़ारत तीन अन्य कुमारों के नाम इस प्रकार हैं—कुमार चलधर, कुमार काकधर, कुमार पक्षधर। आचार्य श्री विद्यानन्दजी और डॉ. खण्डेलवाल इसके समर्थक हैं।

इस प्रकार वर्द्धमान के पाँचों नामों के अर्थ प्रतिपादन विविध घटनाओं के चित्रण द्वारा करके आधुनिक महाकाव्यों में भगवान महावीर के चरित्र का बहिरंग चित्रण किया है।

महावीर के पाँच नाम जहाँ एक ओर अनुश्रुतियों (किंवदन्तियों) में गुँथे हैं वहीं दूसरी ओर कथा की स्थूलता को चीरकर खड़े हैं। उन नामों के बीच के सत्य को खोज निकालने की एक स्पष्ट शोध प्रक्रिया है।

महावीर के नामान्तर—वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर, अतिवीर—की कहानियाँ बहुत ही स्थूल लौकिक धरातल पर हैं। लेकिन आध्यात्मिक धरातल पर इन पाँच नामों में एक सूक्ष्म गहराई है। महावीर के पाँच नामों के पीछे एक रहस्य छिपा हुआ है। इसे तलाशने और पकड़ने के लिए चित्त को शुद्ध करने की ज़रूरत है।

---

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : ऐतिहासिक महापुरुष : तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, पृ. 17

महावीर का सम्पूर्ण जीवन सत्य और सम्यकृत्व की खोज पर समर्पित जीवन था। सम्यक्-दर्शन की, सम्यक्-ज्ञान की और सम्यक्-चारित्र की तलाश अर्थात् उनके सत्यार्थ की उत्तरोत्तर खोज से उपलब्धियाँ पाना महावीर के जीवन का लक्ष्य था। इसी तथ्य को हम महावीर के जीवन-पथ को एक सूत्र में कह सकते हैं—"सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"

महावीर सत्यार्थी हैं। अतः उनके पाँच नामों में सत्य को खोजने की वैज्ञानिक प्रतिक्रिया प्रतिबिम्बित है। जो सत्यार्थी है उसे वर्द्धमान बने रहने की ज़रूरत है। वर्द्धमान से तात्पर्य प्रगतिशील होना है। सत्य की पहली दिखाई देने वाली मुद्रा है—साधु अर्थात् प्रयोगधर्मी साधक होना। वर्द्धमान नाम नहीं है, वह सर्वनाम है। महावीर में सम्यक्त्व की खोज जहाँ से शुरू होती है वहाँ से वह 'वर्द्धमान' है। वर्द्धमानता का सन्दर्भ उनकी सिद्धार्थता के आरम्भ से है।

वर्द्धमानता सन्मति को जन्म देती है। प्रगतिशीलता विशुद्ध मति को जन्म देती है। सन्मति से तात्पर्य है—विवेक युक्त ज्ञान। सन्मति गतिमान एवं प्रज्वलित होती है अनुशासन में रहने से। साधक के व्रती बनकर उपाध्याय के अनुशासन में रहने से वह 'सन्मति' बन जाता है। सम्यकृत्व की खोज की यह दूसरी सीढ़ी है। प्रयोग के बाद उपलब्धियों के लिए अनुशासन की आवश्यकता है।

महावीर का तीसरा नाम है—वीर। वीरत्व पुरुषार्थ का नामान्तर है। वर्द्धमान, सन्मति वीरत्व में प्रकट होती है। वीरता का मतलब है—लौकिक अड़चनों की चिन्ता न करते हुए सम्यकृत्व की खोज में अविचल रहना। महावीर में इस खोज-यात्रा में अग्रसर होने के लिए वह निर्भयता, शूरता आयी थी अर्थात् स्व-पर-विज्ञान के चिन्तन से उनकी प्रज्ञा चरम उत्कर्ष पर पहुँची।

उज्जयिनी के अतिमुक्तक श्मशान में ध्यानस्थ महावीर की साधना में स्थाणुरुद्र दैत्य ने अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं, लेकिन वह दैत्य हार गया और उनकी शरण में जाकर कहा—महावीर हैं आप, मुझे क्षमा करें। महावीर की अप्रतिम साधना ने उसे अर्हत् की अर्हता के सोपान पर प्रतिष्ठित किया। महावीर श्मशान स्वयं गये थे, अपने समस्त विकारों के दहन के लिए। अतः महावीर का यह नाम कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

भगवान महावीर का पाँचवाँ नाम अतिवीर है। अतिवीरत्व की स्थिति सिद्धत्व में है। अतिवीरता से तात्पर्य है—लौकिक (बाह्य एवं आन्तरिक) वीरता की इति और अलौकिक वीरता का सद्भाव। अतिवीरता शाश्वत, चिरन्तन वीरता है। यह वीरता आत्मा की अनन्त शक्ति है। वीरता की तीन श्रेणियाँ हैं—वीरता, महावीरता, अतिवीरता। वीरता याने प्रगतिशील, प्रयोगधर्मी साधु की सन्मति का सार्थ पुरुषार्थ है, महावीरता से तात्पर्य स्व-पर-भेद का उसकी सम्पूर्णता में प्रकट होना है। अतिवीरता से तात्पर्य है - बन्ध-मोक्ष के पार्थक्य की सम्पूर्ण सिद्धि का परमपुरुषार्थ है। डॉ. नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं—

"महावीर के पाँचों नामों की स्थिति के अनुसन्धान की क्रमानुवर्ती कथा है। वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर, अतिवीर ये पाँच उत्थान विकसित पूर्ण व्यक्तित्व के मीलस्तम्भ हैं। साधक को मुनि, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त एवं सिद्ध की दशा से गुजरकर ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। णमोकार मन्त्र और महावीर बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में है। णमोकार मन्त्र साधक के जीवन की शिखर पर से उतरती डगर है। साधना में पहले प्रयोग, फिर विश्लेषण, फिर पुष्टि (कृति), फिर व्यवहार (लोककल्याण) और तदनन्तर सिद्धि। जैनधर्म इसी भेद-विज्ञान का दर्पण है।"[1]

भगवान महावीर को जितेन्द्रिय भी कहते हैं। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरेन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय–इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों के भोग से पूर्ण विरक्त अर्थात् वीतरागी होना ही सिद्धपद को प्राप्त करना है। इस आधार पर भी उनके पंचनामों का अर्थ-प्रतिपादन हो सकता है। इस प्रकार नाम-अर्थ के प्रतिपादन से आधुनिक महाकवियों ने भगवान महावीर के चरित्र का प्रभावी चित्रण किया है।

आकृति, वेश-भूषा, रूप-वर्णन

आकृति या वेश-भूषा-रूप के आधार पर किसी चरित्र के गुणों के सम्बन्ध में कुछ कल्पना करना भ्रामक हो सकता है। लेकिन किसी नये व्यक्ति से प्रथम भेंट के समय हमारा ध्यान सबसे पहले उसकी आकृति और वेश-भूषा-रूप पर ही पड़ता है। सर्वप्रथम हम उस व्यक्ति की आकृति-वेश-भूषा-रूप के आधार पर ही उसके चरित्र गुणों को आँकने का प्रयत्न करते हैं। आकृति और वेशभूषा रूप के आधार पर साहित्यकार पात्रों की मनोदशा पर होनेवाले परिवर्तनों को भी व्यक्त करते हैं। पाठकों के सामने पात्रों की आकृति और वेशभूषा रूप के चित्रण द्वारा ही साहित्यकार पात्रों का साकार रूप खड़ा कर देते हैं। सिर्फ साकार रूप ही प्रस्तुत करने के लिए आकृति और वेशभूषा रूप का चित्रण नहीं होता, अपितु पात्रों के गुणावगुणों का और मनोदशा के सांकेतिक चित्रण के लिए भी उपयुक्त होता है। अतः बहिरंग चित्रण पात्र के चरित्र-चित्रण में योगदान अवश्य करता है।

भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण करते समय आलोच्य वीर चरित महाकाव्यों में आकृति-वेशभूषा एवं रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

(1) आकृति–आकार रंग-रूप आदि का चित्रण।

(2) वेशभूषा–वस्त्र, आभूषणादि का चित्रण।

(3) चरित्र के विविध रूप–गर्भरूप, बालरूप, किशोर रूप, युवकरूप, श्रमणरूप, अर्हत् रूप तथा सिद्धरूप का चित्रण।

आकृति वर्णन–भगवान महावीर जितने भीतर से सुन्दर थे, उतने ही बाहर से

---

1. सं. डॉ. नरेन्द्र भानावत : भगवान महावीर : आधुनिक सन्दर्भ में, पृ. 11.

सुन्दर थे। उनका आन्तरिक सौन्दर्य जन्मलब्ध था और साधना ने उसे शिखर तक पहुँचा दिया। उनका शारीरिक सौन्दर्य प्रकृति-प्राप्त था और स्वास्थ्य ने उसे शतगुणित बना दिया था। उनके शरीर की ऊंचाई एक धनुष थी। रंग पीला सुवर्ण जैसा था। तीनों लोक में सबसे सुन्दर अद्‌भुत रूप था। अतिमनोज्ञ उनके शरीर में जन्म से ही दस अतिशय थे। सर्वांग सुन्दर उनकी आकृति थी। सुगन्धित श्वास था। अतिशय बल एवं मधुर वाणी थी। उनके शरीर में 1008 उत्तम चिह्न थे। महावीर की देह मलमूत्र रहित, प्रस्वेद रहित, रक्त का रंग श्वेत दूध समान था और वज्रसंहनन देह था।

समस्त आलोच्य महाकाव्यों में वर्द्धमान की वेशभूषा का चित्रण दिखाई देता है। चित्रण परम्परागत पौराणिक पद्धति के अनुसार आधुनिक कवियों ने आलोच्य महाकाव्यों में किया है। इन्द्र के द्वारा किये गये वर्द्धमान के वेशभूषा के चित्रण का उल्लेख पं. आशाधर ने 'पूजापाठ' में किया है—

"धृत्वा शेखरपट्टहार-पदकं ग्रैवेयकालम्बकम्।
केयूरांगदमध्यबन्धुरकटीसूत्रं मुद्रान्वितम्।
चंचत्कुण्डलकर्णपूरममलं पाणिद्वये कंकणम्।
मंजीरं कटकं पदे जिनपतेः श्रीगन्धमुद्रांकितम्॥"[1]

अर्थात् राजकुमार महावीर के सोलह आभूषणों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है— 1. शेखर, 2. पट्टहार, 3. पदकं, 4. ग्रैवयक, 5. आलम्बकम्, 6. केयूर, 7. अंगद, 8. मध्यबन्धुर, 9. कटीसूत्र, 10. मुद्रा, 11. कुण्डल, 12. कंकण, 13. कर्णपूर, 14. मंजीर, 15. कटक, 16. श्रीगन्ध।

वेशभूषा-वर्णन के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर के चरित्र में ईश्वरीय रूप प्रारम्भ से ही मानने की प्रवृत्ति परम्परागत रूप में आज तक विद्यमान रही है। इससे तद्‌युगीन सांस्कृतिक जीवन की विविध छटाओं का बोध हमें प्राप्त होता है।

आलोच्य महाकाव्यों में भगवान महावीर के समग्र चरित्र की कथा को वर्णित किया गया है। चरित्र की विविध अवस्थाओं के रूपों का गर्भरूप, जन्मरूप, शिशुरूप, किशोररूप, युवारूप, तपस्वीरूप, केवली अर्हन्तरूप तथा सिद्धरूप का चित्रण पौराणिक शैली में पंचकल्याणक महोत्सवों के वर्णनों द्वारा हुआ है। कल्याणक-महोत्सव केवली अरिहन्तों के मनाने की परम्परा पौराणिक काल से आज तक प्रचलित रही है। ऐसे महोत्सवों के अवसरों पर स्वर्ग के इन्द्र-इन्द्राणी, अन्य देवतागण भूतल पर मनुष्य रूप में अवतरित होकर अर्हत् महावीर के चरित्र की विविध अवस्थाओं के रूप, गुण आदि विशेषताओं की प्रशंसा करते हैं। राजा-महाराजाओं, सामन्तों अन्य त्यागी गणों के

1. पद्मचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, पृ. 31 से उद्धृत।

द्वारा भी महावीर चरित की विविध अवस्थाओं का गरिमापूर्ण भाषा-शैली में गौरवगान किया जाता है। आधुनिक कवियों ने भी अपने चरित-काव्यों में इसी परम्परागत चित्रण पद्धति को अपनाते हुए महावीर के चरित्र का बहिरंग चित्रण किया है।

गर्भरूप—गर्भस्थ प्रभु महावीर चर्मचक्षुओं के अगोचर अवश्य हैं, किन्तु उनके प्रभाव से माता में अपूर्व सौन्दर्य तथा अद्भुतता दिखाई देती है। भगवान के गर्भ-कल्याणक के उत्सव के समय पृथ्वी भी रत्नवर्षा के कारण रत्नगर्भा हो जाती है। तत्त्व-दृष्टि से जीव का गर्भ में आना तथा गर्भ से बाहर जन्म लेने में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर इतना ही है कि जन्म लेने पर चर्म चक्षुओं से प्रभु के दर्शन करने का सौभाग्य सबको प्राप्त होता है। प्रभु का सद्भाव माता के उदर के भीतर गर्भकल्याणक में हो जाता है। इसी कारण माता त्रिशला का प्रभाव अद्भुत रूप में दिखाई पड़ता है। माता की बुद्धि विशुद्ध हो जाती है और उसका सौन्दर्य विलक्षण होता है।

शिशुरूप—वर्द्धमान का शिशुरूप सौन्दर्य अलौकिक एवं दिव्यत्व से ओतप्रोत था। सभी कवियों ने उनके शिशुरूप का सुन्दर चित्रण किया है।

किशोर रूप—कुमार वर्द्धमान विविध बाल-लीलाओं को करते हुए शनैः-शनैः बढ़ रहे थे। जब उनकी उम्र आठ वर्ष की हुई तब उन्होंने बिना किसी अन्य प्रेरणा के ही स्वयं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों का आंशिक त्यागकर पाँच अणुव्रतों को धारण किया। स्वर्ग के देव किशोररूप धारण कर किशोरवीर प्रभु के साथ सुखदायी क्रीड़ा करते थे। इसी किशोर अवस्था में अहिमर्द, हाथी नियन्त्रण, मुनि साहचर्य आदि घटनाओं के सन्दर्भ में उनके सन्मति, वीर, अतिवीर, महावीर आदि नाम प्रचलित हुए।

युवा रूप—कुमार वर्द्धमान की युवावस्था में उनके अंग-अंग में यौवन का उभार आ गया। वे बचपन से सुन्दर थे। युवा होने पर वे अधिक सुन्दर दीखने लगे, ठीक वैसे ही जैसे चाँद सहज ही कान्त होता है, शरद् ऋतु में वह और अधिक कमनीय हो जाता है। कुमार की यौवनश्री को पूर्ण विकसित देख माता-पिता ने विवाह की चर्चा की। यौवन सुलभ सुन्दरता का वर्णन मनोहारी ढंग से चित्रित है। यौवन के समय स्वभाव से नर-नारियों में काम-वासना का प्रबल वेग से संचार हो जाता है। कामदेव पर विजय पाना कठिन हो जाता है। लेकिन अदम्य कामवासना का लेशमात्र भी प्रभाव क्षत्रिय युवराज वर्द्धमान के हृदय पर नहीं पड़ा है।

कवि धन्यकुमार के शब्दों में—

> "उस कामदेव की सेना के
> द्वारा भी हारे 'वीर' नहीं।
> क्या तृण से क्षोभित हो सकता
> है क्षीरोदधि का नीर कहीं।" (परमज्योति महावीर, पृ. 349)

कामदेव मदन से भी युवक वर्द्धमान कान्तिमान थे। पिता-माता के द्वारा प्रस्तावित विवाह का विरोध करते हुए प्रभु कहते हैं–

"बन्ध मुझको स्वीकार नहीं मैं केवलज्ञान चाहता हूँ।"

(वीरायन, पृ. 211)

प्रभु को अनिमित्तिक वैराग्य प्राप्त होता है। वे आत्मविकास के लिए दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं।

श्रमण रूप—आत्मकल्याण और लोककल्याण युवराज वर्द्धमान का विशेष आकर्षण था। इसीलिए वर्द्धमान ने गृहस्थाश्रम की अपेक्षा श्रमण-मुनि जीवन को अंगीकृत किया। तीस वर्ष की अवस्था में कठोर श्रमणसाधना पथ को स्वेच्छया स्वीकृत किया। तपस्या के बारह वर्ष के काल में महावीर को मनुष्यकृत, देवकृत एवं पशुकृत अनेक दुर्धर प्रसंगों को झेलना पड़ा। फिर भी वे अपनी साधना पर दृढ़ रहे।

आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने महावीर की श्रमणावस्था की महिमा का गरिमापूर्ण भाषा-शैली में बड़ी श्रद्धा से चित्रण किया है। मुनिदीक्षा के प्रसंग को चित्रित करता हुआ कवि कहता है–

"कर डाले सारे केश, विलुंचित क्या देरी।
बज उठी कहीं थी, सहसा कोई रणभेरी ॥
निर्मुक्त पाप की सकल क्रिया से थे प्रभुवर।
अब मूल अठाइस गुण, के पालन में तत्पर ॥"

(तीर्थंकर महावीर, पृ. 124)

मुनिदीक्षा के समय समस्त वेष-आभूषण का त्यागकर सम्पूर्ण नग्न रूप में स्थित होना, सिर के बालों को भी अपने हाथों से उखाड़कर फेंक देना, घर त्यागकर वन में एकान्त में मौन रहकर साधना करना, उपवास करना तथा नीरस आहार सप्ताह में, मास में, दिन में एक बार हस्तपुट में करना आदि आचारों का पालन अत्यावश्यक होता है। मुनिवेश में तप करते हुए महावीर की आकृतिमुद्रा का चित्रांकन करते हुए कवि गुप्तजी कहते हैं–

"बैठ तरुतल समाधि में लीन, किया करते तप में तन क्षीण।
शिशिर में जब काया थर-थर, चतुष्पद या सरिता तट पर॥
बैठ प्रभु करते थे नित्य ध्यान ॥" (वही, पृ. 147)

सूर्य के तेज के समान प्रभु का तेज था।

बाह्य संघर्षों के साथ आन्तरिक संघर्ष का चित्रण भी आलोच्य महाकाव्यों में हुआ है। चार कषायों, अष्ट कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए महावीर को स्वयं से युद्ध करना पड़ा। उस आत्मसंघर्ष में वे विजयी हुए। गुप्तजी लिखते हैं–

"अब प्रबल कर्म अरि दल से टक्कर लेना
यों महावीर योद्धा महान् बलशाली।" (वही, पृ. 175)

वर्द्धमान की वीरता, महावीरता, अतिवीरता भौतिक पक्ष को लेकर नहीं, आध्यात्मिक पक्ष की दृष्टि से समझना चाहिए।

अर्हत् रूप—आत्मा अनन्त वैभव का पुंज है। उसका मूल वैभव अतुलनीय है। अपने ही आत्म-पुरुषार्थ से अपने अनन्त चतुष्टय (दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) को प्रकट करने से तथा संयम-तप की साधना से यह आत्मा परम शुद्ध परमात्मा बनती है। परमात्मा, भगवान, सिद्ध, तीर्थंकर, गॉड (God) आदि हजारों नाम हैं—शुद्धस्वरूप आत्मा के।

जैन परम्परा में ईश्वर के दो रूप हैं—साकार, निराकार। सगुण (देहसहित) अवस्था में अर्हन्त की सम्पूर्ण काया से दिव्यध्वनि प्रस्फुटित होती है जो प्रत्येक प्राणी को कल्याणकारी उपदेश देती है और जिसे पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी भाषा में सुनते हैं तथा आत्मकल्याण करते हैं।

केवली अरिहन्त चार अंगुल अन्तराल में स्थिर रहकर दिव्यध्वनि के द्वारा उपदेश देते हैं। तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सर्वांगीण और ॐकार रूप निरक्षरमय रहती है। ध्वनि प्राकृत भाषा में गूँजती थी। कवि रघुवीरशरण 'मित्र' लिखते हैं—

"तीर्थंकर की दिव्यध्वनि, सुनते हैं जो लोग
उनको जीवन में कभी, रहता शोक न रोग।" (वीरायन, पृ. 298)

सिद्धरूप—भगवान महावीर की सिद्धावस्था से तात्पर्य है—आत्मा की मुक्तावस्था। मुक्ति का अर्थ बन्धन से छूटना है अर्थात् पूर्ण स्वतन्त्रता को उपलब्ध होना। मुक्ति की अवस्था में जीव सदाकाल निज आनन्द रस में लीन रहता है, उससे कभी चलायमान नहीं होता।

संक्षेप में, वेशभूषादि के विवेचन में हमने देखा है कि स्वर्ग के इन्द्रों द्वारा शिशु वर्द्धमान के वेशभूषा के परिधान भेजने के विवरण मिलते हैं। बाह्य वैभव विलास प्रदर्शन में विरागी वर्द्धमान की रुचि नहीं के समान दिखाई देती है। वे महलों में योगी के रूप में ही दिखाई देते हैं।

ऐतिहासिक महापुरुष महावीर को पौराणिक परिवेश में प्रस्तुत करते समय उनकी आकृति, रूप-सौन्दर्य, वेश, आभूषण आदि के वर्णन में अलौकिकता, दिव्यता का आधार अतिशयोक्तिपूर्ण चमत्कारपूर्ण ढंग से दिखलाना कवि सुलभ सहज प्रवृत्ति का द्योतक है। भगवान महावीर के श्रमण रूप की पवित्रता एवं दीर्घ साधना की अभिव्यक्ति से वर्द्धमान की निर्भयता, शूरता एवं पुरुषार्थ का प्रभाव पाठकों के चित्त पर अमिट रूप से पड़ता है। एक दीर्घ, कठोर तपस्वी की प्रतिमा का महान् ऋषि की महानता का—उसकी अलौकिक दिव्यता का बोध प्रेरणादायी है। केवली अर्हत् रूप का

चित्रण पौराणिक शैली में जैन-परम्परागत रूप में विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत हुआ है। जैन आगम की मान्यता के अनुसार अर्हत् एवं सिद्ध रूप के चित्रण में कवियों को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

स्थित्यंकन

किसी पात्र की व्यक्त प्रतिक्रिया के आधार पर उसके गुणों के बारे में किया गया अनुमान कदाचित् भ्रामक हो सकता है। अतः किसी पात्र के चरित्र-चित्रण को सही रूप से जानने के लिए उस पात्र की विशेष प्रतिक्रिया किस विशेष परिस्थिति में व्यक्त की गयी है, यह जानना भी बहुत आवश्यक होता है। स्थिति विशेष के कारण कोई प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण या कम महत्त्वपूर्ण होती है। इसी स्पष्टता के लिए स्थिति का चित्रण अनिवार्य है।

रणवीर रांग्रा का कथन है कि "किसी व्यक्ति की स्थिति विशेष (सिच्युएशन) को जाने बिना उसकी व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके चरित्र के बारे में लगाया गया अनुमान भ्रामक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि किसी की क्रियाकलापों का विश्वसनीय मूल्यांकन उन्हें उस स्थिति के सन्दर्भ में रखकर ही किया जाता है जिसमें वे व्यक्त हुए हों। स्थितियाँ अपने भीतर उत्तेजकों को लिये रहती हैं जो व्यक्ति के आचरण को प्रेरित करके उद्दीप्त करती रहती हैं।"[1]

सिर्फ़ क्रिया देखने से उसका महत्त्व और क्रिया करनेवाले पात्र का चरित्र गुण स्पष्ट नहीं होता। उदाहरणार्थ, युद्धस्थिति का अनुचित लाभ उठाकर देश के रक्षा-कोष के लिए दस हज़ार रुपये दान देनेवाला काला बाज़ारवाला व्यापारी और दस रुपये रक्षा-कोष के लिए दान देनेवाली, इसी युद्ध में मारे गये सैनिक की विधवा इन दोनों में किसका देशप्रेम श्रेष्ठ है? दस हज़ार रुपयों का दान या दस रुपयों का दान। यह कार्य देखने से स्पष्ट होता है कि काला बाज़ारवाला व्यापारी श्रेष्ठ देशप्रेमी है। मगर स्थिति देखने के बाद उस विधवा का ही देशप्रेम सच्चा और श्रेष्ठ है, यह सिद्ध हो जाता है।

आकृति-वेशभूषा-रूप वर्णन द्वारा पाठकों के मन में पात्र के बारे में जो अभिमत बनता है वह सत्य ही होगा, ऐसा नहीं है। जब तक पात्र विभिन्न स्थितियों से गुज़रता नहीं, तब तक उसका स्वभाव अधिक स्पष्ट नहीं होता, इसीलिए श्रेष्ठ साहित्यकार अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय पात्र की विशेष-क्रिया की विशेष स्थिति का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्रण करता है, जिससे पात्र के गुणावगुण का यथार्थ चित्रण होता है। आलोच्य महाकाव्यों में भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण करते समय कवियों ने इस स्थित्यंकन तत्त्व का प्रयोग किस प्रकार किया है, यह देखना आवश्यक है।

---

1. रणवीर रांग्रा : हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ. 70

भगवान महावीर की जन्मतः बाल्यावस्था से वैराग्य मूलक मनोधारणा रही। युवावस्था में उनकी यह वैराग्य भावना दृढ़तम हो गयी। इस जन्म में जो विरागता का भाव चरम उत्कर्ष पर उदित हुआ, उसके मूल रहस्य को जाने बिना महावीर के चरित्र के यथार्थ का अंकन सही रूप में नहीं हो सकेगा।

भगवान महावीर की इस धारणा का कारण उनके पूर्वभवों के संचित कर्म हैं। उन्हें कुमार अवस्था में ही पूर्वभवों का जातिस्मरण हो जाता है। किस प्रकार 33 पूर्वभवों में मिथ्यात्व के कारण भ्रमण करना पड़ा और यह दुर्लभ मनुष्य जन्म अब प्राप्त हुआ है। अतः आत्मविकास की साधना में रत रहकर मुक्ति को पाना उन्होंने अपने जीवन का चरम लक्ष्य बनाया। महावीर का वैराग्य ज्ञानमूलक था। वह अनिमित्तिक वैराग्य था। पूर्वजन्मों के संचित पुण्योदय के कारण जन्मतः वे छद्मस्थ ईश्वर के रूप में ही थे। अतः वे मति, श्रुति, अवधि तीन ज्ञानधारी थे। पूर्वभवों के अनुशीलन करने पर ही भगवान महावीर के चरित्र की वैज्ञानिकता का यथार्थ बोध हो सकेगा।

किसी भी महान् पुरुष के चरित्र के अनुशीलन में उस चरित्र की पार्श्वभूमि, उसकी मनःस्थिति, आत्मगत स्थिति को समझना अत्यन्त आवश्यक है। स्थित्यंकन के बोध मात्र से चरित्र-नायक की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के चित्रण का सम्यक् बोध हो सकता है। स्थित्यंकन का वर्णन पूर्वदीप्ति या फ्लैशबैक शैली में प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें स्मृति के माध्यम से आत्मानुभूत तथ्यों का निरपेक्ष अंकन होता है। ये पूर्वभव की घटनाएँ वर्तमान स्थिति विशेष से सम्बद्ध होती हैं अथवा उनकी सार्थकता प्रदान करने में सहायक होती हैं। भगवान महावीर को भगवत् रूप में मान लेने से भक्तजनों को उनके लौकिक जीवन की समस्त घटनाएँ अलौकिक ही प्रतीत होती हैं।

अनुभाव-चित्रण

भावों का मन में उदय होने के बाद शरीर में जो विकार दिखाई देते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं। ये अनुभाव हमें पात्र के भावों का अनुभाव कराते हैं। अतः पात्र का अन्तरंग समझने के लिए अनुभावों का अध्ययन जरूरी होता है। "अनुभावयन्ति इति अनुभावाः।"

अर्थात् भावों के अनुभव होने को अनुभाव कहते हैं। प्रत्येक स्थिति में उसकी प्रतिक्रिया तुरन्त प्रकट नहीं होती। अतः प्रतिक्रिया व्यक्त होने से पहले स्थिति प्रभाव से पात्र की मनोदशा में होनेवाले परिवर्तन जानने के लिए पात्र के अनुभावों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

स्थित्यंकन के बाद तुरन्त क्रिया-प्रतिक्रिया का वर्णन अनुभावों के वर्णन के अभाव में अस्वाभाविक और कृत्रिम हो जाता है। सहजात प्रतिक्रिया को दबाकर सायास की गयी बनावटी प्रतिक्रिया के आधार पर किया गया अनुमान भी गलत हो

सकता है। लेकिन सहजात अनुभावों को दबाना कठिन है। अतः पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया की अपेक्षा उनके अनुभावों के आधार पर उन्हें समझना अधिक विश्वसनीय होता है।

व्यवहारकुशल राजनीतिक पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया बहुधा बनावटी होती है। ऐसे पात्रों का वास्तविक रूप उनके अनुभावों से ही स्पष्ट होता है, और क्रिया-प्रतिक्रिया की जो कृत्रिमता होती है, उसकी पोल खुल जाती है। इन सभी कारणों से पात्रों का मूल रूप जानने के लिए उनके अनुभावों का अध्ययन आवश्यक है। उसी प्रकार पात्रों के सफल चित्रण के लिए उनके अनुभावों का चित्रण भी परम आवश्यक है। अब हम यह देखेंगे कि भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण करते समय आलोच्य महाकाव्यों के कवियों को भगवान महावीर के अनुभावों का चित्रण करने में कहाँ तक सफलता मिली है?

भगवान महावीर का चरित्र विरागी वृत्ति से परिपूर्ण है। अतः उनके जीवन में घात-प्रतिघात संघर्ष के लौकिक प्रसंग बहुत कम मात्रा में चित्रित हुए हैं। उनका संघर्ष आन्तरिक विकारों से था और संघर्ष के शस्त्र थे—मौन रहकर संयमपूर्वक ध्यान, तप करना। अतः उनकी मुद्रा पर भौतिक सुखों से उदासीनता की छटा और आत्मानन्द की प्रसन्नता का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। अनुभावों के द्वारा क्रिया-प्रतिक्रिया का चरित्र-चित्रण उनकी किशोर अवस्था की क्रीड़ाओं एवं लीलाओं के चित्रण में किये गये हैं, उनमें अनुभावों के दृश्य प्राप्त होते हैं।

उन्मत्त हाथी को वश करने के लिए जिस साहस के साथ प्रभु वर्द्धमान ने मुठभेड़ की उसे कवि के निम्नांकित छन्द में हम देख सकते हैं—

> "वे सिंह सदृश केहरि सम्मुख, जा खड़े हुए भय-भाव-रहित,
> मदमाता हाथी सूँड़ उठा, झपटा इन पर अति वेग-सहित।
> पर वीर सूँड़ से चढ़े शीघ्र, उसके मद विगलित मस्तक पर,
> गज सहम गया मद भूल गया, पा शासन सन्मति का शिर पर।"

(तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 89)

उक्त छन्द में किशोर वर्द्धमान के अनुभावों का स्पष्ट चित्रण है।

कवि ने प्रभु वर्द्धमान की युवा अवस्था में उनकी वासना और विवेक के संघर्ष का वर्णन करते हुए अनुभावों द्वारा महावीर के चरित्र का चित्रण किया है। वासना जब प्रबल होती है तब शरीर के विभिन्न अंगों में हलचल होती है। कवि के शब्दों में—

> "तन गयी थी अस्थि-मज्जा और नस-नस
> द्वन्द्व में पड़कर हुआ वह वीर बेबस।"

(श्रमण भगवान महावीर चरित्र, पृ. 106)

युवा अवस्था में वासना के कारण प्रभु के शरीर में जो क्रिया-प्रतिक्रिया उत्पन्न होती थी उस दृश्य को निम्न छन्द में चित्रित किया है—

"श्वास फूला, वक्ष धड़का जा रहा था,
युद्ध में दुश्मन पछाड़े जा रहा था।
उभर आयी, भाल पर उसके शिराएँ
था उठा, पर श्वास उखड़ा जा रहा था।" (वही, पृ. 106)

मुनि दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व प्रभु के मन में दीन, दलितों के प्रति अपूर्व करुणा भावना उमड़ रही थी।

प्रभु वर्द्धमान विरागी निश्चल तथा शान्त वृत्ति के थे। अतः अनुभावों के चित्रण कम मात्रा में हुए। निर्वेद वृत्ति होने से शान्तरस के नायक के चित्रण में इसके लिए अवसर कम होते हैं।

अनुभावों द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली को भी महाकाव्यों में अपनाया गया है। स्थित्यंकन द्वारा चित्रण में हमें इस तथ्य का बोध हुआ है कि भगवान महावीर का चरित्र जन्म से लेकर अन्त तक योगी से महायोगी, परमयोगी स्वरूप का रहा है। अतः वे धीरोदात्त, विरागी, शान्त, गम्भीर, निश्चल वृत्ति के व्यक्तित्व के रहे हैं। परिणाम स्वरूप बहुत कम अवसर किसी घटना विशेष को लेकर क्रिया-प्रतिक्रियाओं के द्योतक शारीरिक हलचलें दिखाई देती हैं।

पूर्वभव स्मृत्यंकन

चेतना-प्रवाह चित्रण प्रणाली, पात्र के अध्ययन के लिए, उसके व्यक्तित्व को समझने के लिए उपयुक्त होती है। किसी पात्र की आज की मानसिक अवस्था और कार्य के कारणों का, पात्र के भूतकालीन या पूर्वभव के जीवन में या उसकी वंश परम्परा में ढूँढ़ा जाता है। विगत जीवन का, कुल परम्परा का और पूर्व-भवों का अध्ययन करके पात्र के आज के और भविष्यकालीन व्यक्तित्व के निर्देश इस प्रणाली के चित्रण द्वारा प्राप्त होते हैं।

पूर्व दीप्ति पद्धति द्वारा मस्तिष्क में उठनेवाली स्मृति-तरंगों का चित्रण होता है। लेकिन चेतना प्रवाह शैली में समस्त घटनाएँ, पूर्वभव वृत्तान्त बाह्यजगत् से दूर मानसिक संसार में अवतरित होती हैं। संसार की बाह्य रूपरेखाएँ आन्तरिक भावानुभूति में बदल जाती हैं। बाहर से दिखाई देनेवाली क्रिया के पीछे स्थित चेतन मन की सूक्ष्म स्थितियाँ, भाव एवं संवेदनाएँ ही इस शैली में शब्दबद्ध की जाती हैं। हृदय की प्रत्येक धड़कन का, भाव-घनत्व के उत्थान-पतन का विशद चित्रण होता है और मन के गूढ़तम गह्वरों में छिपे रहनेवाले विचारों को प्रकाश में लाया जा सकता है। चेतना प्रवाह शैली में किया गया चित्रण मानव-जीवन के आन्तरिक यथार्थ का चित्रण होता है, जिससे पात्रों के तीव्र अन्तर्द्वन्द्व को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उजागर किया जाता है।

अतः भगवान महावीर के द्वारा अवधिज्ञान से स्मरण की गयी पूर्वभवों की

घटनाओं के विवेचन से उनके इस जन्म की वैराग्यमूलक मनःस्थिति का सम्यक् बोध हो सकेगा। अतः उनके 33 पूर्वभवों की घटनाओं का चित्रण आलोच्य आधुनिक महाकाव्यों में हमें प्राप्त होता है।

जैनधर्म, जैनसंस्कृति और जैनदर्शन में कर्मसिद्धान्त का असाधारण महत्त्व है। कृतकर्म के फलानुसार प्रत्येक आत्मा भव-भवान्तर की शृंखला में, जन्म-जन्मान्तर की परम्परा में, अनेकानेक योनियों में भटकती रहती है। कर्मसिद्धान्त और पुनर्जन्म का अन्योन्य सम्बन्ध है। सत्कर्म करने से पुण्य संचय होता है, दुष्कर्म करने से दुःख भुगतना पड़ता है। जैनधर्म का कर्मसिद्धान्त एक नकद व्यापार है। इस हाथ से दो, उस हाथ में लो। जैसी करनी, वैसी भरनी होती है।

मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचार से आत्मा को नरक, तिर्यंच योनियों में भ्रमण करना पड़ता है, तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र की पूर्णता से निर्वाण की प्राप्ति होती है। संसार अवस्था में अनादि-अनन्त आत्मा की, जन्म-कर्म-जरा मृत्यु की शृंखला में कर्म-कर्मफल, पाप-पुण्य और पुनर्जन्म की यात्रा चलती रहती है। भगवान महावीर को भी केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति तक अनेकानेक योनियों में, भवों में जन्म लेकर सुख-दुख के चक्र में घूमना पड़ा था।

इस प्रकार महावीर चरित्र के अनुशीलन में, उनकी जीवनी के सम्यक् आकलन के लिए, उनके चरित्र में घटित क्रिया-प्रतिक्रियाओं की यथार्थ अनुभूति के लिए उनके मूल में स्थित परिवेश की स्थिति के अध्ययन में उनके पूर्वभवों के विवरण से सहायता प्राप्त होती है। दिगम्बर परम्परा में उनके तैंतीस पूर्वभवों का तथा श्वेताम्बर परम्परा में सत्ताईस पूर्वभवों का विवरण प्राप्त होता है। आलोच्य महाकाव्यों में पूर्वभवों का वर्णन गुणभद्राचार्य रचित उत्तरपुराण के आधार पर किया गया है। आलोच्य महाकाव्यों में वर्द्धमान, परमज्योति महावीर एवं वीरायन महाकाव्यों में भगवान महावीर के पूर्वभवों का चित्रण प्राप्त होता है।

भगवान महावीर ने स्वयं बतलाया कि सर्वसाधारण के समान मैं भी अनादि काल से संसार में जन्म-मरण के चक्कर में भ्रमण करता रहा। इस युग की आदि में मैं आदि महापुरुष 'ऋषभदेव' का पौत्र था। किन्तु अभिमान के वश में होकर मैंने अपने उस मानव पर्याय का दुरुपयोग किया। परिणामस्वरूप उत्थान-पतन की अनेक अवस्थाओं से गुज़रते हुए उत्तरोत्तर आत्मविकास करके मैंने इस अवस्था को आज प्राप्त किया है। अतः मेरे समान ही सभी प्राणी अपना विकास करते हुए मेरे जैसे बन सकते हैं। भगवान महावीर का भिल्लराज पुरुरवा के भव से लेकर अन्तिम भव तक का जीवन-काल उत्थान-पतन की अनेक विस्मयकारक करुण कहानियों से भरा हुआ है।

कवि के शब्दों में—

> "इस समय उन्हें संस्मरण स्वतः
> निज पूर्व जन्म हो आये थे।

या भील-जन्म से अब तक का,
हर जन्म उन्हें तत्काल दिखा।" (परमज्योति महावीर, पृ. 320)

तैंतीसभव

पुरुरवा भील—तीर्थंकर भगवान बनने की मंगल साधना का आरम्भ भील पुरुरवा के जीवन से प्रारम्भ होता है। पुरुरवा को झाड़ियों के झुरमुट में शान्त मुद्रा स्थित कोई शिकार दिखाई दिया। उसका वध करने के लिए उसने धनुष-बाण उठाया। उसकी पत्नी कालिका ने बाण चलाने से रोका, क्योंकि वह देखती है कि वह कोई शिकार न होकर शान्त मुद्राधारी मुनि है। पुरुरवा ने उन ध्यानस्थ मुनि की वन्दना की। मुनिराज ने उसे अहिंसा का उपदेश दिया। उपदेश से प्रभावित होकर भीलराज ने अहिंसा आदि अणुव्रतों को धारण किया। परिणामस्वरूप वह मृत्यु के बाद स्वर्ग में देव हुआ। इस प्रकार महावीर की जीवात्मा ने आत्म-उत्थान की साधना भील पर्याय से प्रारम्भ की।

सौधर्म स्वर्ग में देव—अहिंसा व्रत का पालन करके भील से देव हुए उस जीव को सौधर्म स्वर्ग में अनेक दिव्य ऋद्धियाँ प्राप्त हुई और दो सागरोपम वर्ष तक उसने पुण्य फल का उपभोग किया। अहिंसा के पालन से एक भील जैसे अज्ञानी को भी स्वर्ग-सुख प्राप्त हुआ। स्वर्ग में उसे अवधिज्ञान था, परन्तु आत्मज्ञान का अभाव था। आयु पूर्ण होने पर स्वर्ग से चयकर मनुष्य लोक में अवतरित हुआ।

ऋषभदेव का पौत्र मरीचिकुमार—स्वर्ग में पूर्व संस्कार से पुरुरवा भील का जीव वहाँ के भोगों में आसक्त नहीं हुआ। फलस्वरूप भारत वर्ष में प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत के यहाँ अनन्तमती रानी के गर्भ से मरीचि के रूप में जन्म लिया। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के समय गुरुभक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। किन्तु श्रमण जीवन की कठोर साधना से उसका मन विचलित हो गया। इसीलिए उसने श्रमण-साधना के कठोर नियमों में परिवर्तन कर लिया। वह सुविधावादी परिव्राजक बन गया।

भगवान ऋषभनाथ के समवसरण में मरीचि के पिता भरत ने भगवान से पूछा—हमारे कुल में आप तीर्थंकर हुए। आप जैसा तीर्थंकर होनेवाला दूसरा कोई उत्तम पुरुष इस समय कौन है? तो प्रभु की दिव्य-ध्वनि में उत्तर मिला कि हे भरत, तुम्हारा पुत्र मरीचिकुमार इस भरत क्षेत्र में चौबीसवाँ अन्तिम तीर्थंकर (महावीर) होगा। प्रभु की वाणी में अपने तीर्थंकर होने की बात सुनकर उस मरीचि ने सम्यक्त्व का अनुसरण न करते हुए मिथ्यात्व को अपनाया। मुनिवेश छोड़कर भ्रष्ट हुए मरीचि ने तापस का वेश धारण किया और सांख्य मत का प्रचार किया। उस मूर्ख जीव ने मिथ्या मार्ग के धारण से अपनी आत्मा को अनेक भवों तक घोर संसार-दुःखों में डुबोया। मरीचि का यह भव भगवान महावीर के ज्ञात पूर्व भवों की दृष्टि से तीसरा भव है। यद्यपि मरीचि

जीवनभर मिथ्या मार्ग का प्रचार करता रहा, तथापि घोर तप के प्रभाव से मरकर वह पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग में जाकर देव हुआ।

तीर्थंकर कुल में और बाह्यतः जैन दीक्षा लेकर भी मरीचि ने सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया था, आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया था, और मिथ्यात्व सहित कुतप किया था। परिणामतः वह पाँचवें स्वर्ग में देव हुआ। मिथ्यात्व सहित होने के कारण स्वर्ग में उसके परिणाम कुटिल थे। अतः असंख्य वर्षों तक स्वर्गीय सुख भोगने के बाद भी उसे आत्मशान्ति का अनुभव प्राप्त नहीं हुआ। और अन्त में वह जीव स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य गति में एक ब्राह्मण का पुत्र हुआ।

ब्राह्मण कुल में जन्म होने पर पूर्व के मिथ्या संस्कारवश इस भव में भी वह मिथ्यामार्ग का प्रचार करता रहा। मिथ्यातप से क्लेशपूर्वक मरकर वह जीव प्रथम स्वर्ग में देव हुआ। अपने हित-अहित के विवेक से रहित वह देव स्वर्ग में भी सुखी नहीं था। दो सागर तक स्वर्गीय भोगों को लालसा सहित भोगकर उसने स्वर्ग से मृत्यु लोक में जन्म धारण किया। सातवें भव में पुष्यमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ और परिव्राजक बनकर उसी मिथ्यामत का प्रचार करता रहा। दीर्घकाल तक मिथ्यात्व सहित कुतप का क्लेश सहन करके वह मरा और दूसरे ईशान स्वर्ग में देव हुआ। धर्म रहित, हीन, पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होकर उसने मनुष्यलोक में जन्म धारण किया।

नौवें भव में ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर अग्निसह नाम का ब्राह्मण हुआ और परिव्राजक बनकर उसी कपिलमत का प्रचार किया। दीर्घकाल तक कुमार्ग का प्रवर्तन करके अन्त में मरकर वह चौथे माहेन्द्र स्वर्ग में सनतकुमार देव हुआ। असंख्य वर्षों तक स्वर्गीय सुखों का उपभोग कर वह मनुष्य लोक में अवतरित हुआ। ग्यारहवें भव में वह पुनः इसी भूतल पर जन्म लेकर अग्निमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ और उग्र तपस्वी हुआ। कपिल मत का प्रचार किया। जीवन के अन्त में मरा और बारहवें भव में माहेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ। वहाँ पुण्यक्षय होने पर भूतल पर मनुष्य लोक में नरभव धारण किया।

तेरहवें भव में भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ और पुनः गतजन्म की भाँति संन्यासी होकर कुतप में जीवन व्यतीत किया। कपिल मत का प्रचार करता हुआ मरकर चौदहवें भव में माहेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ। इस प्रकार मरीचि का जीव लगातार विगत पाँच मनुष्य भवों में अपने पूर्व दृढ़ संस्कारों से प्रेरित होकर उत्तरोत्तर मिथ्यात्व का प्रचार करता हुआ सभी पापकर्मों का बन्ध करता रहा, जिसके परिणामस्वरूप चौदहवें भव में स्वर्ग से च्युत होकर कई नीच त्रस पर्यायों में भटका। अन्त में स्थावर एकेन्द्रिय पर्याय में गया। इस प्रकार असंख्य बार भव-भ्रमण करके उसने कल्पनातीत दुःख सहन किये। दीर्घकाल में कुयोनियों से निकलकर पुनः मनुष्य हुआ। निगोद दशा को सदा के लिए छोड़ दिया। कर्म-भार के हलके होने पर मरीचि का जीव गणनीय पन्द्रहवें भव में 'स्थविर' नामक ब्राह्मण हुआ। इस भव में भी तपस्वी बनकर और

मिथ्या मत का प्रचार करते हुए मरकर सोलहवें जन्म में माहेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ।

राजगृही के विश्वभूति राजा के पुत्र विश्वनन्दि की पर्याय में चरित्रनायक का जीव अवतरित हुआ। चचेरे भाई विशाखनन्दि से उद्यान पाने के हेतु युद्ध किया। वैराग्य भाव से मुनि-दीक्षा ग्रहण की। मुनि वेष में भी चचेरे भाई विशाखनन्दि को मार डालने का निदान किया। परिणामस्वरूप निदान शल्य सहित मरकर तप के प्रभाव से महाशुक्र नाम के स्वर्ग में देव हुआ। अनुपम व्रत प्राप्त करके भी उनका पूरा लाभ वह नहीं ले सका। देव आयु के पूर्ण होने पर वह भरत क्षेत्र में उन्नीसवें भव में 'त्रिपृष्ठ' नाम का प्रथम नारायण हुआ, और उसका भाई विशाखनन्दि अश्वग्रीव नाम का प्रतिनारायण हुआ।

विश्वनन्दि तथा विशाखनन्दि दोनों चचेरे भाइयों के जीव इस भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव नारायण और प्रतिनारायण 'अश्वग्रीव' के रूप में अवतरित हुए। पूर्वभव के वैरभाव के संस्कार से एक स्त्री का निमित्त पाकर दोनों में घमासान युद्ध हुआ। और त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव को मारकर एकछत्र त्रिखण्ड राज्यसुख भोगा। आयु के अन्त में मरकर बीसवें भव में 'त्रिपृष्ठ' का जीव सातवें नरक का नारकी हुआ।

सिंह भव और नारकी भव—चरित्रनायक के इक्कीसवें जन्म में,

> "वह जीव सिंह गिरि पर जन्मा, जीवों का वध करनेवाला।
> पापों को संचित करता था, वह शेर प्राण हरनेवाला।
> फल मिला मर गया शर खाकर, जैसी करनी वैसी भरनी।
> सागरपर्यन्त नरक में रह, हँसते रोते भोगी करनी।" (वीरायन, पृ. 141)

वह निर्दय सिंह वहाँ से मरकर पुनः नरक में गया और असंख्य वर्षों तक वहाँ के तीव्र दुख भोगने लगा।

चरित्रनायक का जीव नरक से निकलकर एक बलवान सिंह हुआ। दसवें भव में जो तीर्थंकर होनेवाला है, ऐसा वह सिंह भरत क्षेत्र के एक पर्वत पर रहता था। क्रूरता से वह वन्य पशुओं को खाता था। भाग्यवश दो चारण मुनियों ने विहार करते हुए उक्त सिंह को देखकर कहा—हे भव्य जीव, तूने जो त्रिपृष्ठ नारायण के भव में राज्यासक्ति से घोर पाप उपार्जन किया, उसके फल से नरकों में घोर यातनाएँ सही हैं। और अब भी तू इस मृगजय से दीन प्राणियों को मार-मारकर घोर पाप कर रहा है।

मुनिराज के वचन सुनकर सिंह को जाति-स्मरण हो गया और वह अपने पूर्व भवों को याद करके, आँखों से आँसू बहाते हुए निश्चल खड़ा रहा। चारण मुनियों के उपदेश को सिंह ने शान्तिपूर्वक सुना और तीन प्रदक्षिणा देकर उनके चरणों में अपना सिर रखकर बैठ गया। मुनिराज ने उसे पशु मारने और मांस खाने का त्याग कराया और उसे उसके योग्य श्रावक व्रतों का उपदेश दिया। सिंह की प्रवृत्ति एकदम बदल

गयी। उसने जीवों को मारना और मांस का खाना छोड़ दिया और वह निराहार रहकर विचरने लगा। अन्त में संन्यासपूर्वक प्राण छोड़कर प्रथम स्वर्ग का देव हुआ। यह भगवान महावीर का गणनीय चौबीसवाँ जन्म था। तेईसवें सिंह भव तक उनका उत्तरोत्तर पतन होता गया। और मुनि समागम के पश्चात् चरित्रनायक के जीव का आत्मोत्थान प्रारम्भ हुआ।

कवि के शब्दों में–

> "आसन पर बैठ अहिंसा के, तप व्रत मृगेन्द्र ने बहुत किये।
> तन सूख गया तज दिये प्राण, पर आमिष खाकर नहीं जिये ॥
> तप के प्रसाद व्रत के फल से, मृगराज जीव सुरराज हुए।
> सौधर्म स्वर्ग में 'सिंहकेतु' धरती माता के ताज हुए।"
>
> (वीरायन, पृ. 143)

सौधर्म स्वर्ग से चयकर चरित्रनायक का जीव पच्चीसवें भव में 'कनकोज्ज्वल' नामक राजा हुआ। किसी समय वह सुमेरु पर्वत की वन्दना को गया। वहाँ पर उसने एक मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना और संसार से विरक्त होकर मुनि बन गया। अन्त में समाधिपूर्वक प्राण त्याग करके छब्बीसवें भव में लान्तव स्वर्ग का देव हुआ।

सत्ताईसवें भव में लान्तव स्वर्ग से चयकर इसी भरत क्षेत्र के साकेत नगर में हरिषेण नाम का राजा हुआ। राज्य-सुख भोगकर और जिन-दीक्षा ग्रहण करके अट्ठाईसवें भव में वह महाशुक्र स्वर्ग का देव हुआ।

उनतीसवें भव में धातकी खण्डस्थ पूर्व दिशा सम्बन्धी विदेह क्षेत्र की पूर्व भाग-स्थित पुण्डरीकिणी नगरी में प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती हुआ। अन्त में जिन-दीक्षा लेकर वह तीसवें भव में सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ।

नन्दराजा और सोलहवें स्वर्ग का देव–सहस्रार स्वर्ग से चयकर इकतीसवें भव में इसी भूमण्डल पर चरित्रनायक का जीव 'नन्दन' नाम का राजा हुआ। इस भव में उसने प्रोष्ठिल मुनिराज के पास धर्म का स्वरूप सुना और जिनदीक्षा धारण कर ली। तदनन्तर षोडषकारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए उसने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। और जीवन के अन्त में समाधिपूर्वक प्राण छोड़कर बत्तीसवें भव में अच्युत स्वर्ग का वह इन्द्र हुआ। बाईस सागरोपम काल तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जीवन के समाप्त होने पर वहाँ से चयकर वह देव अन्तिम तीर्थंकर महावीर के नाम से इस वसुधा पर अवतीर्ण हुआ।

इस तरह वर्द्धमान का वर्तमान रूप कई भवों में किये गये सुकृत्यों के परिणाम स्वरूप है। भगवान की आत्मा ने पूर्वभवों में कठोर आत्मसाधना की थी। फलस्वरूप इस मनुष्य जन्म में एक अपूर्व अलौकिकता के तत्त्व उनके चरित्र में विद्यमान रहे। उक्त स्थित्यंकन के परिप्रेक्ष्य में वर्द्धमान चरित्र की अतिशयता एवं उनके विचारों की

दिव्यता का यथार्थ बोध हमें हो जाता है। डॉ. आ. ने. उपाध्येजी पूर्वभव वृत्तान्त का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं--

भगवान महावीर के पूर्वभववृत्तों का महत्त्व चार दृष्टियों से है–

(1) जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव से अन्तिम तीर्थंकर महावीर का सम्बन्ध स्थापित होता है।

(2) पूर्वभवों के अध्ययन से कर्म सिद्धान्त के निष्कर्ष का यह बोध होता है कि जीव अपनी बुराई-भलाई के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है और अपने कर्मों के भले या बुरे फल स्वयं उसी को भुगतने पड़ते हैं।

(3) पूर्वभवों का अध्ययन आत्मा के विकास का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन है।

(4) नैतिक एवं धार्मिक संस्कारों से भव्य जीवों का परम कल्याण हो सकता है।

आलोच्य महाकाव्यों में दिगम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के ज्ञात 33 भवों का चित्रण मिलता है। श्वेताम्बर परम्परा में भगवान के 27 ही भवों का वर्णन मिलता है। प्रारम्भ के बाईस पूर्व भव कुछ नाम परिवर्तन के साथ वे ही हैं जो कि दिगम्बर परम्परा में बतलाये गये हैं। आलोच्य महाकाव्यों में भगवान महावीर के पूर्व भवों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। यह पूर्व भवों का वर्णन 'गुणभद्राचार्य' रचित 'उत्तरपुराण' के आधार पर किया गया है और उसी का अनुसरण परवर्ती वीरचरित काव्यकारों ने किया है। पूर्वभवों के इस स्मरण से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचना किसी एक ही भव की साधना का परिणाम नहीं है, बल्कि उसके लिए लगातार अनेक भवों में साधना करनी पड़ती है।

आलोच्य महाकाव्यों के चरित्रनायक भगवान महावीर हैं। महावीर की यह तीर्थंकर भगवान अवस्था तैंतीस पूर्वभवों की साधना के पश्चात् विकसित हुई है। कवियों ने चरित्रनायक के पूर्वभवों का वर्णन इतना सरस किया है कि महावीर की आत्मा के रूप का, वैभव का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होने लगता है। वैसे तो तीर्थंकर एक जन्म के पुरुषार्थ की प्रक्रिया नहीं है। अनेक जन्मों के सत्पुरुषार्थ से आत्मशक्ति क्रमशः अनावृत होते-होते तीर्थंकर स्वरूप को प्राप्त करती है। तीर्थंकर होने का पुरुषार्थ कब से प्रारम्भ हुआ? इसका उत्तर उन भवों की गणना में प्रायः मिलता है। तीर्थंकर बनने के बाद गणधरों, देवों या इन्द्रों के द्वारा इसके रहस्य के पूछने पर तीर्थंकर स्वयं उत्तर देते हैं। अतः जैन साहित्य में तीर्थंकरों के पूर्व भवों का वर्णन प्राप्त होता है। जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि महत्त्वपूर्ण मानी गयी है, क्योंकि इसकी प्राप्ति से जीव निश्चित रूप में मोक्ष जाता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद तीर्थंकर के भव तक कितने जन्म धारण करने पड़ेंगे। इस जिज्ञासा के कारण ही

भवों की संख्या हमें प्राप्त होती है। मनुष्य जन्मों की गणना प्रमुखतः की जाती है।

पंचकल्याणक

भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने पंचकल्याणक महोत्सवों की पौराणिक पद्धति पर वर्णन करते हुए किया है। यह संसार पंच प्रकार के अकल्याणों, संकटों से व्याप्त है। इसे पंचपरावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप) भी कहते हैं। पंचकल्याणक सिर्फ केवली तीर्थंकर भगवान के चरित्र में महोत्सव के रूप में चित्रित होते हैं। भगवान महावीर तीर्थंकर हैं। अतः उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान तथा निर्वाण के प्रसंग को स्वर्ग के इन्द्र देवादि देव भगवान की जन्मभूमि में आकर नागरिकों के साथ उत्सव के रूप में मनाते हैं। विश्वास है कि इस महोत्सव में सम्मिलित होने से पंच प्रकार के संकट नष्ट हो जाते हैं।

गर्भकल्याणक—तीर्थंकर भगवान महावीर जब माता त्रिशला के गर्भ में स्वर्ग से अवतरित होते हैं, तब श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार चौदह स्वप्न और दिगम्बर परम्परा के अनुसार सोलह स्वप्न माता देखती है। देवता और मनुष्य मिलकर उनके गर्भावतरण का महोत्सव मनाते हैं। उस क्रिया को गर्भकल्याणक कहा जाता है। इस सन्दर्भ में कवि अनूप ने लिखा है—

"जिन्हें लखा जागृति में न था कभी
विलोक ले वे सुखस्वप्न सुप्ति में
प्रसन्न है पुत्र त्वदीय गर्भ में
स-हर्ष देता नव प्रेरणा तुझे।" (वर्द्धमान, पृ. 107)

जन्मकल्याणक—जैन मान्यतानुसार जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तब स्वर्ग के देव और इन्द्र पृथ्वी पर आकर तीर्थंकर का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाते हैं और मेरु पर्वत पर ले जाकर वहाँ उनका जन्माभिषेक करते हैं।

दीक्षाकल्याणक—तीर्थंकर भगवान महावीर के दीक्षाकाल के उपस्थित होने के पूर्व लोकान्तिक देव उनसे प्रव्रज्या लेने की प्रार्थना करते हैं। वे एक वर्ष तक करोड़ों स्वर्णमुद्राओं का दान करते हैं। दीक्षा-तिथि के दिन देवेन्द्र अपने देवमण्डल के साथ आकर उनका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाते हैं। वे विशेष पालकी में आरूढ़ होकर वनखण्ड की ओर जाते हैं जहाँ अपने वस्त्राभूषण का त्याग करके पंचमुष्टि लोच करते हैं। तीर्थंकर स्वयं ही दीक्षित होते हैं, किसी गुरु के पास दीक्षा नहीं लेते। इस तरह इस प्रसंग को महोत्सवपूर्वक मनाया जाता है। अतः यह दीक्षाकल्याणक महोत्सव कहा जाता है।

केवलज्ञानकल्याणक—तीर्थंकर भगवान महावीर जब अपनी साधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, उस समय भी स्वर्ग से इन्द्र और देवमण्डल आकर कैवल्य

महोत्सव मनाते हैं। इस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर तीर्थंकर की धर्मसभा के लिए समवसरण की रचना करते हैं।

निर्वाणकल्याणक—भगवान महावीर के परिनिर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होने पर भी स्वर्ग के देवों द्वारा उनका दाह-संस्कार कर परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया जाता है। यथार्थ में प्रभु ने निर्वाण के कारण कर्मों का क्षय किया है। भगवान महावीर ने मृत्यु को जीतकर अमरत्व की स्थिति प्राप्त की। उस समय देव, देवेन्द्रों ने आकर निर्वाणोत्सव मनाया। आलोच्य महाकाव्यों में उक्त कल्याणक का उत्सव के रूप में चित्रण निम्न रूप में प्राप्त होता है। कवि के शब्दों में—

> "कर गया सहज ही ऊर्ध्वगमन,
> सत, शुद्ध बुद्ध निर्मल चेतन।
> तनगृह से अब शिव सौख्य-सदन
> पहुँचा लहराया जयकेतन।" (तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 170)

इस प्रकार भगवान महावीर के चरित्र में मोक्ष (निर्वाण) पाने का महोत्सव सुरनरों ने मनाया। मोक्ष से तात्पर्य है—दुःखों से, विकारों से, बन्धनों से मुक्त होना। मोक्ष आत्मा की अनन्त आनन्दमयी दशा है। शाश्वत आनन्दमय होने से मोक्ष परम कल्याणस्वरूप है। इस मोक्ष-प्राप्ति के कारण ही गर्भ, जन्म, तप आदि कल्याणक स्वरूप माने गये हैं।

भगवान महावीर के चरित्र में उनके जीवन की पाँचों अवस्थाओं—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान तथा निर्वाण—के महोत्सव देव-इन्द्र तथा मनुष्यों द्वारा मनाये गये। वैभवपूर्ण महोत्सव पंचकल्याणक के नाम से प्रचलित हैं। ये पंचकल्याणक उनके मनाये जाते हैं जो केवलज्ञान प्राप्त करके वीतरागी, सर्वज्ञ होकर लोककल्याण के उद्देश्य से उपदेश देते हैं। तात्पर्य केवली अरिहन्त पद को प्राप्त तीर्थंकरों के जीवन में ये महोत्सव होते हैं। "कल्याणं करोति इति कल्याणकः" की उक्ति के अनुसार लोककल्याण करनेवालों को कल्याणक कहते हैं। भगवान महावीर का चरित्र कल्याणक चरित्र है। पाँच कल्याणकों में निर्वाणकल्याण परमकल्याण स्वरूप माना जाता है। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् पौराणिक युग आया। उसमें ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र की प्रस्तुति पौराणिक आख्यानों की शैली में चमत्कारों के परिवेश में की गयी है।

ऐतिहासिक महापुरुष महावीर के जीवनवृत्त के साथ चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जुड़ गयीं। अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से दैवी घटनाओं को अंकित किया गया। पंचकल्याणकों के चित्रण में तथ्य या घटना की अपेक्षा कवि-कल्पना की गुरुता अधिक है। यह तथ्य है या नहीं, यह अनुसन्धेय हो सकता है, किन्तु इसे काव्यगत सत्य तो माना जा सकता है। समस्त आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने भगवान महावीर के समग्र चरित्र को पंचकल्याणक महोत्सवों की घटनाओं, प्रसंगों एवं दृश्यों के चित्रण द्वारा चित्रित किया है। भगवान महावीर का चरित्र उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, तप, ज्ञान, उपदेश तथा

निर्वाण आदि समस्त अवस्थाओं का चित्रण पौराणिक शैली में प्रस्तुत कर लोकरंजक एवं लोककल्याणकारी के रूप में उनके व्यक्तित्व को वर्णित किया गया है।

तात्पर्य यह है कि विश्व का रंगमंच विचित्रताओं और विविधताओं का अपूर्व संगमस्थल है। हर एक जीव अनादि काल से असंख्य भवों में भटकता रहा है। उन जीवों में से कोई ऐसे जीव रहते हैं जो अपनी आत्मा को स्वावलम्बन के द्वारा समुन्नत बनाकर सिद्ध भगवान की पूर्ण स्थिति को प्राप्त करने में सफल होते हैं। ऐसे ही प्रातःस्मरणीय एवं वन्दनीय पुण्यात्माओं में भगवान महावीर हैं। हिन्दी के कवियों ने निष्कर्ष के रूप में प्रतिपादन किया है कि आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचना किसी एक ही भव की साधना का परिणाम नहीं, बल्कि उसके लिए लगातार अनेक भवों में साधना करनी पड़ती है। अनेक जन्मों के सत् पुरुषार्थ से आत्मशक्ति क्रमशः विकसित होती हुई भगवत् रूप को प्राप्त करती है। जैन मान्यता में तीर्थंकर भगवान होने का मूलाधार सम्यक्त्वपूर्वक षोडश भावनाओं की आराधना माना गया है। पूर्वभव में श्रमण साधना की कठोर तपश्चर्यापूर्वक षोडशभावनाओं के चिन्तन के परिणामस्वरूप भगवान महावीर को तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ था, ऐसी दृढ़ मान्यता जैन परम्परा में दिखाई देती है। हिन्दी के तीन महाकाव्यों में महावीर के पूर्वभवों का वृत्तान्त, चेतना प्रवाह शैली में करके उनके इस जन्म के जन्मजात वैराग्य मूलक मनोवृत्ति के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

समस्त आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने भगवान महावीर के समग्र चरित्र—उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, तप, केवलज्ञान, उपदेश तथा निर्वाण आदि अवस्थाओं को पंचकल्याणक महोत्सवों की पौराणिक घटनाओं के वर्णनों द्वारा चित्रित किया है। समस्त कवियों ने महावीर की आत्मा को उनके इस मनुष्यभव में तीर्थंकर भगवान के रूप में माना है। जैन आगम के अनुसार पंचकल्याणक महोत्सव केवल तीर्थंकरों के स्वर्ग से आगत देव, इन्द्रादि द्वारा विशेष रूप से मनाये जाते हैं। और यह मान्यता वर्तमान काल में भी जिनमन्दिरों में तीर्थंकरों की तदाकार मूर्तियों की प्रतिष्ठा-महोत्सवों में अविच्छिन्न रूप से प्रचलित रही है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव उसका ही अनुकरण है। इस महोत्सव में अर्हत् केवली तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान तथा निर्वाण सम्बन्धी क्रिया-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से नर से नारायण बनने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है।

अन्तरंग चित्रण

बहिरंग चित्रण पात्र का बाहरी रूप हमारे सामने मूर्त करता है। यह रूप भ्रामक हो सकता है। अतः पात्र का अन्तरंग चित्रण ही महत्त्वपूर्ण होता है। पात्र का बाहरी रूप हम देख सकते हैं, मगर उसका अन्तरंग रूप नहीं देख सकते। देह, आकृति, वेशभूषा रूप व्यक्त होते हैं, लेकिन मन अव्यक्त होता है। कुछ क्रियाओं द्वारा यह मन

व्यक्त होता है, लेकिन किसी भी पात्र का सम्पूर्ण मन किसी कार्य या घटना में व्यक्त नहीं हो सकता। हिमनग की तरह उसके दर्शन आंशिक होते हैं। पात्र का प्रियजन भी उसे पूर्णरूप से नहीं जान सकता। स्वयं पात्र भी अपने मन को पूर्ण रूप से जानने में असमर्थ होता है। साहित्यकार अगर अपने पात्रों का निर्माता और अभिव्यंजक दोनों होता है तो वह पात्र के अन्तरंग का सुन्दर चित्रण कर सकता है। विश्वबन्धु शर्मा का कथन है—"चरित्र-कल्पना से यह अर्थ निकलता है कि पात्र के आन्तरिक एवं बाह्यस्वरूप का निर्माण उसके वर्ण, रूपाकार, वेशभूषा एवं वस्त्रालंकार, भाव सौन्दर्य, गुण सौन्दर्य, व्यापार सौन्दर्य, उपदेश एवं शिक्षण सौन्दर्य, बौद्धिकता, कलात्मकता, धार्मिकता, भाव, अवगुण, आदतें, स्वभाव, कार्य-व्यापार आदि सभी का निर्माण चरित्र में इतिहास, पुराण और कवि-कल्पना से ही होता है। इतिहास पुराणाश्रित कवि कल्पना से चरित्र में विविधता आती है। इसी विविधता के कारण पाठकों को आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसी बलवती कल्पना से ही सत्-असत् पात्रों में संघर्ष चित्रित कर चरित्रनायक के गुणों का चरमोत्कर्ष स्पष्ट किया जाता है।"[1]

ऐतिहासिक महाकाव्यों में यह सम्भव नहीं हो सकता। साहित्यिक अपने ऐतिहासिक पात्रों का स्रष्टा नहीं होता, वह सिर्फ निवेदक, कथाकार या चरित्रचित्रणकार होता है। अतः साहित्यिक अपने ऐतिहासिक चरित्रनायक से पूर्णतः परिचित नहीं होते। इतिहासकारों ने ऐतिहासिक पुरुष के जीवन की जो सत्य घटनाएँ दी हैं, उन घटनाओं के आधार पर ही साहित्यिक को चलना पड़ता है। उसमें परिवर्तन करने का कोई अधिकार साहित्यिक को नहीं रहता। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक चरित्रनायकों का अन्तरंग चित्रण इन बन्धनों के कारण सीमित या शिथिल होने की सम्भावना रहती है। इतिहास में अधिकांश नायक के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन के ही निर्देश होते हैं। नायक के पारिवारिक जीवन का निर्देश इतिहास में नहीं होता है। साहित्यकार सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन को इतिहास-सम्मत चित्रित करें और पारिवारिक जीवन को अपनी कल्पना के अनुसार और ऐतिहासिक चरित्र-चित्रण को ध्यान में रखकर चित्रित करें तो अन्तरंग चित्रण प्रभावी हो सकता है। भगवान महावीर के चरित्र का अन्तरंग चित्रण करने के लिए आलोच्य महाकाव्यों में निम्न प्रमुख चित्रण प्रणालियों का प्रयोग हुआ है।

1. स्वप्नविश्लेषण द्वारा चित्रण। 2. अन्तःप्रेरणाओं के अनुस्मरण द्वारा चित्रण। 3. जीवन-दर्शन द्वारा चित्रण।

स्वप्नविश्लेषण

पात्र के अचेतन मन की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए साहित्यकार विभिन्न

---

1. डॉ. विश्वबन्धु शर्मा : साठोत्तर महाकाव्यों में पात्र-कल्पना, पृ. 308।

मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं। कवियों के लिए इस प्रकार का चित्रण करना कठिन कार्य होता है। अतः मनोविश्लेषण, स्वप्नविश्लेषण, निराधार प्रत्यक्षीकरण विश्लेषण, प्रत्यावलोकन विश्लेषण, सम्मोहन विश्लेषण, पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (पूर्वभव), शब्द सह-स्मृति परीक्षण आदि प्रणालियों का उपयोग साहित्यकार अपने पात्रों के अन्तरंग का, अचेतन मन का चित्रण करते समय करते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में पात्रों के व्यक्त विचार, भाव और प्रतिक्रियाओं को उत्तेजित करनेवाले कारणों को स्पष्ट करके साहित्यकार पाठकों के सामने पात्रों का अन्तरंग स्पष्ट करते हैं।

आलोच्य महाकाव्यों में कवियों ने भगवान महावीर की माता त्रिशला के षोडशस्वप्नों का विश्लेषण करते हुए स्वप्नविश्लेषण चित्रण प्रणाली का प्रयोग किया है। स्वप्नविश्लेषण शैली के द्वारा पात्र की आन्तरिक भावनाओं, इच्छाओं एवं विचारों को स्वप्नचित्रण के माध्यम से उजागर किया जाता है। स्वप्नविश्लेषण की भाँति निराधार प्रत्यक्षीकरण शैली का प्रयोग चरित्रनायक के अवचेतन मन में स्थित भावनाओं और इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए होता है। जाग्रत अवस्था में स्वप्नवत् मनःस्थिति का चित्रण करने में निराधार प्रत्यक्षीकरण शैली का विशेष रूप से प्रयोग होता है। प्रत्यावलोकन विश्लेषण शैली में पात्र के चेतन या अचेतन मन के विचारों की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति देने का प्रयास होता है। इस चित्रण शैली के माध्यम से घटनाओं, परिस्थितियों तथा पात्रों के कार्यों के मूल में स्थित कारण स्पष्ट हो जाते हैं।

भगवान के जन्म होने के पूर्व माता के चारों ओर का वातावरण इन्द्र की आज्ञा तथा कुबेर की व्यवस्था से 56 कुमारी देवियाँ ऐसा सुन्दर और नयन मनोहारी बनाती हैं कि जिससे किसी भी प्रकार का क्षोभ माता के मन में उत्पन्न न होने पाए। इसी सब सावधानी का यह सुफल होता है कि उस माता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाला बालक अतुल, तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान) धारक और महाप्रतिभाशाली होता है।

साधारणतः यह मान्यता है कि किसी भी महापुरुष तीर्थंकर भगवान के जन्म लेने के पूर्व उसकी माता को कुछ विशिष्ट स्वप्न आते हैं जो किसी महापुरुष के जन्म लेने की सूचना देते हैं।

डॉ. तिवारी के शब्दों में—"स्वप्नविज्ञान और लोकविश्वास के अनुसार स्वप्न अर्धचेतन मन के काल्पनिक बिम्ब ही नहीं होते, अन्तश्चेतना द्वारा प्रदत्त भावी घटना प्रसंगों के पूर्व संकेत भी होते हैं, इसलिए कालज्ञपुरुष स्वप्नों के शुभाशुभ फलों की व्याख्या किया करते हैं।"[1]

स्वप्नों के अन्वयार्थ : महाराजा सिद्धार्थ निमित्तज्ञानी थे। स्वप्न शास्त्रानुसार अपनी रानी त्रिशला को उनका अन्वयार्थ बताने लगे। माता के सोलह स्वप्न—

1. डॉ. भगवानदास तिवारी : भगवान महावीर : जीवन और दर्शन, पृ. 8

(1) **हाथी :** स्वप्नशास्त्र में ऐरावत हाथी महत्ता का प्रतीक है। वह लौकिक गजों से भिन्न अलौकिक तथा मनोज्ञ होता है। महाराजा सिद्धार्थ ने कहा—ऐरावत हाथी के दर्शन का फल है कि तेरा बालक तीर्थनायक, पतितपावन, विश्व-उद्धारक, अनेकान्त-स्थापक, परम अहिंसा धर्म का उपासक, करुणा-सागर, संवेग एवं ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होगा।

(2) **श्वेत वृषभ :** माता त्रिशला ने दूसरे स्वप्न में नेत्रों को प्यारा, अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता हुआ तथा मेघ के समान गर्जना करता हुआ बैल देखा। श्वेत वृषभ का देखना धीर पवित्र आचरणसम्पन्न वीतरागी, सहिष्णुता का प्रतीक है। आलोच्य महाकाव्यों में इस स्वप्न का चित्रण निम्न पंक्तियों में किया गया है—

"होगा तव सुत वह धर्म सुरथ का चालक।"

(तीर्थंकर भगवान महावीर, पृ. 27)

"वह सुत की धर्म धुरन्धरता की ही सामर्थ्य दिखाता है।"

(परमज्योति महावीर, पृ. 131)

तात्पर्य श्वेत वृषभ का स्वप्नदर्शन यह सूचित करता है कि बालक वीतरागी होगा।

(3) **धवल सिंह क्रीडारत :** स्वप्न में सिंह क्रीडा करते देखना, बल प्रताप पौरुष का प्रतीक है। बालक शत्रुता नाशक, अतुल पराक्रमी, आत्मद्रष्टा, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन से परमात्म पद प्राप्ति करनेवाला होगा।

(4) **सिंहासन पर स्थित लक्ष्मी को गजस्नान कराते हुए :** चौथे स्वप्न में कमल पर विराजमान तथा हाथ में सुन्दर सरोज धारण किये हुए लक्ष्मी देखी, जिसका शुभ हाथियों द्वारा सुगन्धित जल से परिपूर्ण कलशों से अभिषेक हो रहा था। सिंहासन स्थित लक्ष्मी का गजों द्वारा स्नान 'शतेन्द्र' पूज्यता का प्रतीक है। जन्म के समय सौधर्म इन्द्र अपने परिवार सहित शिशु का सुमेरु पर जन्माभिषेक सम्पन्न करेगा। बालक बड़ा होकर बाह्य-आभ्यन्तर लक्ष्मी का स्वामी एवं वस्तु-स्वरूप प्रतिपादक होगा। लक्ष्मी स्नान का दर्शन बालक की पूज्यता का द्योतक है।

(5) **मन्दार पुष्पों की दो मालाएँ :** माता त्रिशला को पाँचवें स्वप्न में भ्रमरों से शोभायमान तथा अतिशय लम्बायमान, सुवास सम्पन्न दो मालाएँ दिखाई पड़ीं। मन्दार पुष्पों की मालाएँ यश एवं अतीन्द्रिय आत्मसुख की सूचक हैं। गर्भस्थ शिशु का शरीर सुगन्धित, कान्तिमान और अनेक शुभ-लक्षणों से संयुक्त होगा। हृदय कोमल एवं वासनामुक्त होगा। स्वप्न के इस अन्वयार्थ को सुनकर 'त्रिशला' रानी फूली नहीं समायी। तात्पर्य यह है कि मन्दार पुष्प की माला अतीन्द्रिय आत्मसुख की द्योतक है। समस्त आधुनिक कवियों ने स्वप्नों का वर्णन अपने महाकाव्यों में किया है।

(6) **नक्षत्रों से परिवेष्टित पूर्णचन्द्रमा :** छठे स्वप्न में अन्धकार को नष्ट

करनेवाला अत्यन्त रमणीय चन्द्रमा निर्मल नभोमण्डल में दिखाई पड़ा। नक्षत्रवेष्टित चन्द्र अनुपम सदन की प्रतीति करा रहा है। चन्द्र प्रकाश अत्यन्त शीतल एवं आनन्दकारी है। नक्षत्रों से वेष्टित चन्द्र अमृत वर्षा का प्रतीक है। बालक के सर्वांग से दिव्यध्वनि खिरेगी, जिससे भव्य जीव कर्म-कालिमा मिटाकर अतीन्द्रिय आनन्द प्रकट करेंगे। बालक के वचन भवरोगियों को औषधि, संसार तापितों के लिए चन्दन के समान शीतल होंगे। तात्पर्य यह है कि पूर्ण चन्द्रमा का देखना यह अर्थ सूचित करता है कि बालक के सर्वांग से दिव्यध्वनि खिरेगी।

(7) उदित होता सूर्य : सातवें स्वप्न में रानी ने देखा कि उदित सूर्य से सम्पूर्ण लोक आलोकित हो गया। अवनि (पृथ्वी) और अम्बर रत्नप्रभा के समान प्रकाशित हो रही है। शीतल प्रकाश सहस्र सूर्यों की आभा झलका रहा है। सूर्य रश्मियाँ मोतियों की झालर सदृश दृष्टिगोचर हैं। इस स्वप्न का अर्थ है—उदित सूर्य दिव्य ज्ञान-प्राप्ति का प्रतीक है। बालक जन्म से ही मति, श्रुत, अवधिज्ञान का धारी होगा। उसकी दिव्य ज्ञान-ज्योति से सरागता की समाप्ति और वीतरागता का प्रकाश होगा।

(8) कमलपत्रों से आवृत जलपूर्ण दो स्वर्ण कलश : आठवें स्वप्न में माता त्रिशला देवी ने सुवर्णमयी कलश युगल देखे। वे कलश सुगन्धित जल से परिपूर्ण थे। तथा चारों ओर कमलों से शोभायमान थे। जल से परिपूर्ण कलशों से प्रतीत होता है कि तुम्हारा पुत्र समस्त जगत् के मनोरथों को पूर्ण करेगा और उसके प्रभाव से राज-मन्दिर निधियों से परिपूर्ण होगा। कमलपत्रों से आवृत कलश करुणा का प्रतीक है। वह जगत् के जीवों को भव से पीड़ित देख करुणा से द्रवीभूत हो अहिंसा धर्म का प्रबल प्रचारक होगा।

(9) सरोवर में क्रीडारत युगल मीन : नौवें स्वप्न में माता त्रिशला ने बिजली के समान चंचल, परस्पर में स्नेह करनेवाले, द्वेषरहित मीन युगल के दर्शन किये। मीन अपनी मस्ती में अठखेलियाँ कर रही हैं। लहराती बलखाती मदभरी चाल मधुर रस को टपका रही है। उनके पुच्छ भाग मणिमय कान्तिमान हैं। क्रीडा करती हुई मछलियाँ सूचित करती हैं कि तुम्हारा पुत्र पहले इन्द्रियजन्य आनन्द करता हुआ, अध्यात्ममय जीवन जीता हुआ तपश्चर्या के बल से अभीष्ट सिद्धियों को प्राप्त करेगा। युगल मीन अनन्त सौख्य का सूचक है।

(10) हंसों और कमलों से सुशोभित विशाल जलाशय : दसवें स्वप्न में रानी त्रिशला ने एक निर्मल स्वच्छ विशाल सरोवर देखा। वह जल से परिपूर्ण था, कमलों से अलंकृत था, और राजहंस आदि सुन्दर पक्षियों से मनोहर दिखता था। हंसों और कमलों से सुशोभित विशाल जलाशय संवेदनशीलता का प्रतीक है। बालक उत्तमोत्तम लक्षणों का भण्डार होगा और धन आदि की तृष्णा से त्रस्त मनुष्यों की तृष्णा शान्त कर उन्हें परमधाम मोक्ष में पहुँचाएगा। बालक समदर्शी, अलिप्त, शान्तिसन्देशक, स्वानुभूतिमग्न होगा।

(11) तरंगित अथाह सागर : ग्यारहवें स्वप्न में भयंकर मगरमच्छ आदि स्वच्छन्द क्रीड़ा करनेवाले जन्तुओं से परिपूर्ण विशाल समुद्र देखा जो शुभफेन राशि तथा उन्नत लहरों से अलंकृत था। समुद्र-दर्शन सूचित करता है कि पुत्र की बुद्धि समुद्र के समान गम्भीर होगी तथा वह अनेक नीति रूपी नदियों से परिपूर्ण शास्त्र का समुद्र होगा। उत्तम मार्ग का उपदेश देकर जीवों को संसार-सागर से पार करेगा। अथाह सागर हृदय की विशालता का प्रतीक है। बालक के हृदय की विशालता अहिंसात्मक विधि से जीवों को यथार्थ सुख का उपाय बताएगी।

(12) स्वर्ण सिंहासन : बारहवें स्वप्न में लक्ष्मी का स्वर्ण-सिंहासन देखा जो तेजस्वी सिंहों से अलंकृत था। उत्कृष्ट रत्नमयी सिंहासन के दर्शन का यह फल है कि तुम्हारा पुत्र समस्त जगत् पर आज्ञा चलाएगा। मणिजड़ित सिंहासन वर्चस्व और प्रभुत्व का सूचक है। आभ्यन्तर सम्पदा का स्वामी अनन्त चतुष्टयधारी होगा।

(13) रत्नों से अलंकृत देव-विमान : तेरहवें स्वप्न में आकाश में गमन करता हुआ सुन्दर विमान दिखाई दिया जो मुक्ता (मोती) मालाओं से देदीप्यमान था। इस विमान स्वप्न का अन्वयार्थ आलोच्य महाकाव्यों में स्पष्ट किया गया है।

कवि का वर्णन है—

> "देव विमान दिखा जो नभ में, अन्तर का उत्थान महान्।
> देव विपूजित जीव प्रकट हो, इसे सत्य करके लो जान।"
>
> (श्रमण भगवान महावीर, पृ. 66)

सुन्दर विमान दर्शन से सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र निरहंकारी मनुष्यों का स्वामी होगा। देव विमान कीर्ति का प्रतीक है। स्वर्ग से च्युत हो जीव गर्भ में आएगा। लोक में सर्वत्र कीर्ति फैलेगी। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता रूप मोक्षमार्ग का नेता होगा।

(14) पृथ्वी से उठता हुआ नागेन्द्र का गगनचुम्बी भवन : चौदहवें स्वप्न में उदयाचल पर्वत पर नागेन्द्र का गगनचुम्बी भवन देखा। भवन सर्व सुविधायुक्त है। भवन का निचला भाग अरुण मणियों के समान कान्तिमान है। ऊर्ध्वभाग रत्नाभ है। भवन के अग्रभाग में चन्द्रकान्त मणियों की कान्ति जलप्रवाह का भ्रम उत्पन्न करती है। पृथ्वी को भेदकर निकला हुआ नागेन्द्र भवन सूचित करता है कि तुम्हारा पुत्र इस संसार रूपी पिंजरे को खण्ड-खण्ड करेगा और वह मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान रूप त्रिविध ज्ञान नेत्रों को प्राप्त करेगा। नागेन्द्र का भवन अवधिज्ञान का प्रतीक है। बालक जन्म से ही अवधिज्ञानी होगा। धर्मान्धता का लोप कर शुद्ध आत्मधर्म का संस्थापक होगा। समस्त जगत् में मैत्री भाव निर्माण करेगा।

(15) रत्नों की राशि : पन्द्रहवें स्वप्न में रत्नों की राशि देखी जो रंग-बिरंगी कान्ति से इन्द्र-धनुष तुल्य लगती थी। अनेक प्रकार की रत्नों की राशि के दर्शन से

सूचित होता है कि वह नाना गुणरूपी रत्नों की राशि होगी। रत्नों की राशि अनन्त गुणों की प्राप्ति का प्रतीक है। रत्नत्रय की एकता की पूर्णता मोक्षमार्ग है। उसे जन-जन को सिखाएगा। स्वयं मोक्षमार्गी बनकर जगत् को मोक्षमार्ग का प्रकाश करेगा।

(16) धकधकाती हुई निर्धूम अग्नि : अन्तिम सोलहवें स्वप्न में त्रिशला देवी ने शुभ कान्तियुक्त देदीप्यमान धूम्ररहित अग्नि देखी। अग्नि की ज्वाला अरुण मणियों की झालर है। निर्धूम अग्नि स्वप्न के दृष्टान्त को आलोच्य महाकाव्यों में रेखांकित किया है। तात्पर्य यह है कि निर्धूम अग्नि सकल कर्मों के क्षय की प्रतीक है। बालक स्वरूपाचरण चारित्र के साथ ध्यान-अग्नि से अष्टकर्मों को नष्ट कर सिद्ध-पद प्राप्त करेगा।

अन्त में रानी त्रिशला को यह प्रतिभास हुआ कि—

"तदनन्तर मुख में जाता-सा
देखा था गजराज महान्!
ऐसा कौतुक देख अन्त में—
जागी माता, हुआ विहान।" (श्रमण भगवान महावीर-चरित्र, पृ. 62)

स्वप्न के अन्त में त्रिशला को यह आभास हुआ कि मुख में गजराज प्रवेश कर रहा है। इसका प्रतीकार्थ है कि माता के गर्भ से शीघ्र ही तीर्थंकर भगवान का जन्म होनेवाला है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि महारानी त्रिशला के सोलह स्वप्न इस तथ्य का पूर्वाभास था कि भगवान महावीर दिव्यगुणों से युक्त, धर्मतीर्थप्रवर्तक, जगत्वन्द्य, मनोजयी, आत्मजेता तीर्थंकर होंगे और उनकी गणना विश्व की एक महान् विभूति के रूप में होगी। श्वेताम्बरों के अनुसार केवलज्ञान की प्राप्ति के पूर्व श्रमणसाधना के चरम शिखर पर पहुँचते ही भगवान महावीर को दस स्वप्न आये थे। उन स्वप्नों का फल निमित्तज्ञ ने इस प्रकार बताया कि शीघ्र ही भगवान महावीर को केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, द्वादशांग रूप ज्ञान की देशना करेंगे। श्रावक एवं श्रमण के रूप में धर्म के दो रूपों का उपदेश होगा। चतुःसंघ की स्थापना होगी। चारों निकायों के देवता सेवा करने आएँगे। मोक्षप्राप्ति होगी। श्रमण महावीर के सम्बन्ध में दस स्वप्नफल शीघ्र ही यथार्थ रूप में साकार हुए।

आलोच्य महाकाव्यों में से केवल 'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र' महाकाव्य में अभयकुमार योधेय ने दस स्वप्नों का और माता के चौदह स्वप्नों का विवेचन किया है। माता के सोलह स्वप्नों का विवेचन अन्य पाँच महाकाव्यों में हुआ है।

अन्तःप्रेरणाओं का अनुस्मरण

जन्मजात विरागी : भगवान महावीर धर्म पुरुषार्थ सम्पन्न महावीर थे। उन्होंने

कठोर तपस्या करके वीतरागी अर्हन्त पद को प्राप्त किया। विश्व के समस्त मानव मात्र को आत्मोत्थान का हितोपदेश देकर विश्वमानव का कल्याणकारी कार्य किया। अतः वे युगान्तरकारी नवयुग के प्रवर्तक माने जाते हैं। युगीन रूढ़ि, परम्परा, वर्ण, वर्ग, आश्रम, लिंगभेद, नारी की दासता, विषमता आदि के प्रति विद्रोह करके नवमानवतावादी, समतावादी मान्यताओं की स्थापना की। भौतिक जीवन के प्रति निवृत्ति-विरक्ति अपनाते हुए भी वे आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्यप्रवणशील प्रवृत्ति से क्रान्तिकारी महामानव बने। महामानव तीर्थंकर भगवान महावीर के चरित्र में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वे वीतरागी होते हुए भी चतुःसंघ के कर्णधार थे। भगवान महावीर के चरित्र का अध्ययन करते समय केवल उनके आध्यात्मिक, साधनापरक मुनिदशा तथा भगवान रूप का ही अधिक विवेचन होता रहता है, लेकिन उनकी श्रमण-साधना की उपासना-पद्धति पर जो सामाजिकता का, मानवतावाद का, समतावाद का भी पुट चढ़ा हुआ है, उसका अनुशीलन आधुनिक सन्दर्भ में करने की आवश्यकता है।

सामाजिकता की प्रवृत्ति : भगवान महावीर का यह संवेदनाशील व्यक्तित्व साधारण जन के लिए अज्ञात ही रहा है। भगवान महावीर का आध्यात्मिक व्यक्तित्व जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उनका विश्वमानव कल्याणकारी सामाजिक व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, "निश्चय ही भगवान महावीर के अन्तस्तल में भी यह सहज महाप्रेमिक मानव विद्यमान था। ब्रह्मचर्य, तप, कठोर साधना और दिव्य ज्ञान के प्रकाश से हमारी आँखें प्रायः चौंधियाँ जाती हैं और हम उस सहज मानव को नहीं देख पाते, परन्तु जो बात कृच्छ्राचार और तपस्या को मनुष्य के लिए ग्रहणीय और आचरणीय बनाती है, वह है महान् गुरु का सहज मनुष्यत्व।"[1] वीतरागी वृत्ति का चरित्र मानव को कमजोर, निष्क्रिय नहीं बनाता, बल्कि मानव कल्याण-सुख का पथ-दर्शन कराते हुए समाज-व्यवस्था को सुदृढ़ता एवं स्वस्थता प्रदान करता है। भौतिक जीवन के सर्वस्व को त्यागकर बने वीतरागी पुरुष ही संसार में महान् क्रान्ति, महान् कार्य करके 'महावीर' बनते हैं। वैराग्य भावना से मनुष्य में त्याग की प्रेरणा निर्मित होती है। भौतिक पंचेन्द्रियों के विषयोपभोगों की ओर से निवृत्त होकर वह अपने आत्मोद्धार से समस्त मानव के उत्थान, कल्याण के लिए चिन्तनशील क्रियाशील रहता है। भगवान महावीर का वैराग्य पूर्ण मुनिजीवन कविकल्पित या पुराणमतवादी नहीं है, वह इतिहास-सम्मत है। भगवान महावीर का तीर्थंकरत्व का व्यक्तित्व कर्तृत्वसम्पन्न, वीतरागता के साथ समाजकल्याणपरक था। अतः युग-युग तक वे पूजे जा रहे हैं। अतः महावीर के तीर्थंकरत्व के लिए कारण बनी वैराग्यमूलक अन्तःप्रेरणाओं का स्वरूप महत्त्वपूर्ण है।

---

1. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री : तीर्थंकर महावीर का पुरोवाक्, पृ. 9

अनुप्रेक्षा-चिन्तन—युवक वर्द्धमान महावीर राजभवन में अपना यौवन काल बिता रहे थे। पूर्व संस्कारों के कारण उनके चिन्तन में उदात्तता का रूप था। वे आत्मस्वरूप के चिन्तन में निमग्न थे। बाह्य भौतिक इन्द्रियोपभोगों में उनकी अरुचि थी। उनके चिन्तन का केन्द्रीय स्वर था—तत्त्वतः संसार में प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है और हर आत्मा में परमात्मा की सम्भावना है अर्थात् प्रत्येक जीव मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी है। अतः उन्होंने जीव, जगत्, कर्म-बन्ध, धर्म, आत्मसाधना तथा मोक्ष पर गहन चिन्तन-मनन किया था। "महाविजेता महावीर ने हमें यह सन्देश दिया है कि परस्पर लड़ो नहीं, लड़ना ही है तो अन्तर के विकारों से लड़ो, अपने अन्तर को झकझोरो, सुख-समृद्धि और शान्ति अपने अन्तर में ही मिलेगी, अन्यत्र नहीं। ऐसी अन्तर्मुखता ही भारतीय जैन संस्कृति की महान् देन है।"[1]

भगवान महावीर की वैचारिक मान्यता के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं में नित्यता और अनित्यता, स्थिरता और विनाश दोनों का आवास रहता है, अतः संसार की प्रत्येक वस्तु न तो सर्वथा नित्य ही है, न उसे सर्वथा अनित्य कहा जा सकता है। वास्तव में संसार के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति पुद्गलपरमाणुस्कन्धों के संघात से हुई है। परमाणु पुंज स्कन्ध हैं। पृथ्वी, जल, तेज आदि सभी पदार्थ परमाणुओं के रूप संघात हैं। अपने जीवन में इन परमाणुओं को प्रत्यक्ष क्रियमाण देख प्रत्येक मुमुक्षु जीव को आत्मोद्धार के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

उक्त चिन्तन के परिवेश में जैनदर्शन आत्मवादी दर्शन है। संसार में प्रत्येक जीव पुद्गल की कर्म-वर्गणाओं से लिप्त है। कर्म आठ प्रकार के हैं। उन कर्मों की कार्मण वर्गणाओं से जीव को अलिप्त, मुक्त, स्वतन्त्र करना मोक्ष है। समस्त भवों में नरभव मोक्ष-प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। अतः धर्म की आराधना करके संवर और निर्जरा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति आत्मा को अष्टकर्मों से मुक्त करने के लिए समस्त लौकिक कर्मों से निवृत्त होता है। क्योंकि लौकिक क्रिया-कर्मों से शुभ-अशुभ भावों का आस्रव (आगमन) होता है। पुद्गल कार्मण वर्गणाओं के संघात से वह बन्धन का कारण बन जाता है।

जीवन-दर्शन : भगवान महावीर के जीवन-दर्शन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आचार एवं विचारों की दृष्टि से भगवान महावीर के विचारों के बीज भगवान वृषभदेव के विचारों में हमें प्राप्त होते हैं। श्रमण विचारधारा प्राक्वैदिक काल से वैदिक विचारधारा के समानान्तर स्तर पर वर्तमान काल तक प्रवाहित होकर आयी है। वैदिक एवं श्रमण साधनाएँ आत्मवादी विचार-धारा को लेकर तो चलती हैं, लेकिन जीव, जगत् एवं ईश्वर के स्वरूपविषयक चिन्तन में दोनों में मौलिक अन्तर होने के कारण दोनों विचार-धाराएँ पृथक् रूप में अपना पृथक् अस्तित्व आज तक रखती आयी हैं। वैदिक विचारधारा आत्मवादी ईश्वरवादी है तो श्रमण विचारधारा आत्मवादी अनीश्वरवादी

1. ब्र. हरिलाल जैन : चौबीस तीर्थंकर, पृ. 3

है। अतः भगवान महावीर का जीवन-दर्शन अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है।

श्रमण संस्कृति का मूल सिद्धान्त है—आत्मवाद और अनेकान्तवाद। लेकिन यह आत्मवाद अनीश्वरवादी है। प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है। वह अपने सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता स्वयं है। वह पुरुषार्थ से परमात्मा हो सकता है। किसी और शक्ति का वह कृपाकांक्षी नहीं है। ईश्वर का कर्तृत्व नकारने के कारण ईश्वरवादियों ने श्रमण विचारधारा को अनीश्वरवादी—नास्तिक कहा है। वस्तुतः श्रमण आस्तिक ही हैं। उनकी आस्तिकता, आत्मा की स्वतन्त्रता, विकास की विराटता, स्वावलम्बन, परिश्रम, तप एवं पुरुषार्थ पर आधारित है। वीतरागता की प्राप्ति प्रमुख लक्ष्य है। सर्वज्ञ केवली बनना प्रमुख ध्येय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र की समन्वित अनेकान्तवादी दृष्टि से तथा अहिंसात्मक आचार पद्धति से ही केवलज्ञान की प्राप्ति हर आत्मा को हो सकती है।

आलोच्य ग्रन्थ दार्शनिक या आध्यात्मिक ग्रन्थ नहीं हैं। ये महाकाव्यात्मक चरित्र काव्यग्रन्थ हैं। भगवान महावीर के चरित्र की महानता, उदात्तता तथा श्रेष्ठता का परिचय हमें उनके सर्वव्यापक, मानवतावादी विचारों से हो जाता है। भगवान महावीर ने बारह वर्ष मौन धारण करके श्रमण तपश्चर्या की। केवलज्ञान-प्राप्ति के बाद तीस वर्ष विहार करके अपनी ॐकारस्वरूप दिव्यध्वनि द्वारा जनसाधारण तक आत्मकल्याण का मार्ग प्रतिपादित किया। उनके गणधर इन्द्रभूति गौतम ने महावीर के विचारों की अभिव्यक्ति शब्दरूप में की। जैनागम के आधार पर रचित प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश के पुराण, काव्य आदि लिपिबद्ध ग्रन्थ भगवान महावीर के विचार-दर्शन के आधार ग्रन्थ रहे हैं। आधुनिक कवियों के महाकाव्यों का सृजन करने का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण तक भगवान महावीर की सीख का प्रचार-प्रसार करना रहा है। अतः दर्शन, सिद्धान्त जैसे गहन विषयों का विश्लेषण महाकाव्यों में प्रसंगोपात ही रहा है। मुख्यतः आत्मगत आचार पक्ष और लोककल्याणकारी विचारों की अभिव्यक्ति इन महाकाव्यों में हो पायी है।

अनेकान्तवाद

जीव, जगत् और ईश्वर विषयक चिरन्तन प्रश्नों के उत्तरों की खोज महान् दार्शनिक अपनी सुनिश्चित चिन्तन-पद्धति पर युगीन सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हैं। भगवान महावीर प्रणीत जीवन-दर्शन की चिन्तन प्रणाली का नाम है—अनेकान्तवाद। विचार-धारा की कथन प्रणाली का नाम है—स्याद्वाद। कथन-प्रणाली की विविध पद्धतियों का नाम है सप्तभंगीनय। अनेकान्तवाद और स्याद्वाद भगवान महावीर के जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के आधारभूत स्तम्भ हैं। जगत् के वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान तथा यथार्थ आचार-व्यवहार अनेकान्तवाद से ही सम्भव है। इस मौलिक निरूपण प्रणाली की विवेचना आलोच्य महाकाव्यों में उपलब्ध नहीं होती। वीरेन्द्र प्रसाद जैन एवं रघुवीरशरण 'मित्र' ने अपने महाकाव्यों में इन तत्त्वों के

उल्लेखमात्र प्रसंग उल्लिखित किये हैं। वैज्ञानिक जगत् का सापेक्षवाद और भगवान महावीर का स्याद्वाद दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्याद्वाद में भौतिक जगत् के साथ आत्मतत्त्व पर भी अन्वेषण है। इस दृष्टि से स्याद्वाद पुरोगामी दर्शन है।

वीरेन्द्रप्रसाद जैन ने अपने महाकाव्य में तीनों दर्शनों का जिक्र किया है, तो रघुवीरशरण 'मित्र' ने मात्र स्याद्वाद की महिमा गायी है। समस्त आलोच्य महाकाव्य चरित्रात्मक महाकाव्य हैं। अतः भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए उनके द्वारा दिये गये उपदेशों के चित्रण पर ही अधिक बल दिया गया है। दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन महाकाव्य की कलात्मकता को कहीं नीरस न कर सके, इसीलिए अनेकान्तवाद, स्याद्वाद आदि सिद्धान्तों का बौद्धिक विश्लेषण शायद नहीं हो पाया है।

षट्द्रव्य सिद्धान्त

षट्द्रव्य सिद्धान्त के विवेचन में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों का स्थूल परिचय प्रस्तुत करके परमाणुवाद का आत्मवाद के साथ सम्बन्ध स्पष्ट किया है। जीव, जगत् एवं परमात्मा इन तीनों में परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध है। आत्मा परमात्मा के पद को कैसे प्राप्त कर सकेगा? आदि बातों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीव सत् है, जगत् सत् है, परमात्मा भी सत् है। सृष्टि चेतन और अचेतन द्रव्यों से व्याप्त है। प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व स्वतन्त्र पृथक् रूप में है। आत्मा नित्य अमर है। कर्मबन्ध के कारण उसकी पर्याएँ बदलती रहती हैं। ईश्वर का कर्तृत्व न जीव के सन्दर्भ में है, न जगत् के सन्दर्भ में है। प्रत्येक आत्मा परमात्मा हो सकती है। समस्त आधुनिक आलोच्य महाकाव्यों में द्रव्यसिद्धान्त एवं जीव, ईश्वर, जगत् के स्वरूप का विवेचन यथार्थ रूप में हो पाया है। सिर्फ़ अभयकुमार योधेय ने इन सिद्धान्तों के विचारों की अभिव्यक्ति नहीं की है। उनका लक्ष्य प्रमुखतः जीवनी को प्रस्तुत करना ही रहा है।

सप्ततत्त्व सिद्धान्त

सप्ततत्त्व सिद्धान्त के विवेचन में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सातों तत्त्वों का सन्दर्भ आधुनिक कवियों ने अपने महाकाव्यों में दिया है। सप्ततत्त्व विषयक विचार भगवान महावीर के पूर्व के तीर्थंकरों ने प्रतिपादित किये हैं। आत्मा से परमात्मा पद तक पहुँचने की तर्कसम्मत प्रक्रिया का विवेचन इस सप्ततत्त्व सिद्धान्त में होने के कारण जैन सिद्धान्तों में इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें पाप और पुण्य जोड़ने से नौ पदार्थ होते हैं। वर्द्धमान से महावीर बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया का चित्रण इसमें है। चेतन आत्मा को जड़-अचेतन के अणु-स्कन्धों तथा राग-द्वेष-मोह के बन्धन से मुक्त करना भगवान महावीर के विचारों का केन्द्रीय

स्वर है। मोहादि कषायों के कारण कर्मरूप पुद्गल कार्मणों का बन्ध आत्मप्रदेशों के साथ होता है। अतः पुद्गल वर्गणाओं के आगमन को संयम से रोका जा सकता है, वही संवर तत्त्व है। तप, ध्यान द्वारा संचित कर्म की निर्जरा (बहिर्गमन) होती है। चार घातिया कर्म नष्ट होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। अरिहन्त, वीतरागी, सर्वज्ञ होने के कारण निसर्गतः दिव्यध्वनि के द्वारा हितोपदेश होता है। उपदेशों के विचारों में प्रधानतः लोककल्याण हेतु आचार पक्ष प्रधान रहा है, तो मुमुक्षुओं के लिए सिद्धान्त पक्ष प्रमुख रूप में रहा है, जिसके बोध होने पर आत्मा साधना-पथ पर दृढ़ता से सम्यक्चारित्र का पालन करके परमात्मा बन सके। आधुनिक आलोच्य महाकाव्यों में सप्ततत्त्वों का सविस्तार विवेचन सफलतापूर्वक हो पाया है। विवेचन प्रश्नोत्तर शैली में किया गया है।

अष्टकर्म सिद्धान्त

अष्टकर्म सिद्धान्त की अभिव्यक्ति से यह निष्कर्ष स्पष्ट होता है कि पुद्गल कर्म-वर्गणाओं के द्वारा विभावों (राग, द्वेष, मोह) का बन्ध लगातार निरन्तर होने से आत्मा को अनादिकाल से भव-भवान्तर में भटकना पड़ता है। अतः पुनर्जन्म का बोध आवश्यक होता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की ज्ञान एवं दर्शनशक्ति पर आवरण डालते हैं, अतः आत्मा अज्ञानी, मिथ्यात्वी बनी रहती है। मोहनीय कर्म के उदय के कारण जड़ के प्रति आसक्ति, ममत्व, तृष्णा, मूर्च्छा बनी रहती है। परिणामस्वरूप आत्मा की व्रत, संयम, तप, त्याग आदि के चारित्रपालन की बुद्धि नहीं होती तथा अन्तराय कर्म के कारण अनेक उपसर्ग, उपद्रव सहन करने पड़ते हैं। अतः ये चार कर्म आत्मा का घात करनेवाले हैं। इन चार घातिया कर्मों का संयम, तप, ध्यान के द्वारा नाश करनेवाला ही अरिहन्त वीतरागी होता है। नाम, आयु, गोत्र, वेदनीय ये चार अघातिया कर्म महानिर्वाण के समय आप-ही-आप नष्ट होते हैं। अरिहन्त के महानिर्वाण होने पर उनकी आत्मा सिद्धावस्था में पहुँचती है।

रत्नत्रय सिद्धान्त

'रत्नत्रयसिद्धान्त' में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के पालन से ही मोक्ष मिल सकता है, इस तथ्य का विवेचन है। आलोच्य महाकाव्यों में रत्नत्रय सिद्धान्त की अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रभावी ढंग से हो पायी है, लेकिन अष्टकर्मों का विवेचन सफलता के साथ मात्र डॉ. छैलबिहारी गुप्त कर पाये हैं। अन्य कवियों ने भगवान महावीर के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रसंगोचित अष्टकर्मों के सन्दर्भ मात्र दिये हैं।

आचार-पक्ष

आचार-पक्ष विषयक भगवान महावीर के विचार-दर्शन को चित्रित करते हुए

उसे श्रावकाचार और श्रमणाचार के रूप में विभाजित किया है। श्रावक (गृहस्थ) केवलीप्रणीत जिनधर्म पर दृढ़ सम्यक् श्रद्धान रखता है। वह अष्टमूलगुणों को धारण करता है। सप्त व्यसनों से दूर रहता है। अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आदि पंचअणुव्रतों को धारण कर यथाशक्ति अंशतः उनका पालन करता है। श्रावक आचार-संहिता का पालन दैनिक जीवन में सावधानी से करता है। जिन पूजा, अभिषेक, निर्ग्रन्थ गुरु की सेवा, भक्ति, स्वाध्याय, संयम के विकास के लिए पंचेन्द्रियों को अपने वश में रखना फलस्वरूप व्रत, उपवास का पालन, यथाशक्ति सामायिक, तप, धर्मध्यान करना तथा सत्पात्र को दान देना आदि दैनिक षट्कार्यों को आचरण में लाने का प्रयत्न श्रावक करता है। धर्मसाधना में चित्त को स्थिर रखने के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करता है। परिणामस्वरूप वह विरागी होकर ही धर्ममूलक अर्थ और काम पुरुषार्थ का सम्पादन करता है। बारह व्रतों का पालन करते हुए वह क्रमशः ग्यारहवीं प्रतिमा का अधिकारी होता है। जीवन के अन्त में वह सल्लेखनापूर्वक मृत्यु को शान्तिपूर्वक वरण करता है। श्रावक के व्यक्तित्व में आत्मकल्याण के साथ लोकहितकल्याण का भाव भी निहित होता है। वह सदाचार से पुण्यसंचय करके समता, सहिष्णुता, करुणा, अहिंसा, मानवता एवं अपरिग्रही संयमी वृत्ति से आत्मकल्याण के साथ लोककल्याण में दत्तचित्त रहता है।

भगवान महावीर के जीवन-दर्शन के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केवली अरिहन्त भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित जिनधर्म एक पुरातन, सार्वकालिक, सार्वभौमिक, त्रिकालाबाधित सत्य से युक्त एक विश्वमानव का धर्म है। यह धर्म आत्मोद्धारक और लोकोद्धारक जीवन-मूल्यों से अनुस्यूत है। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता उद्घोषित कर जीवन की मूलभूत सत्ता और उसके नित्य अस्तित्व पर दृष्टि सापेक्ष की पद्धति से सर्वांगीण विचार किया गया है। विचार में अनेकान्त, आचार में अहिंसा और वाणी में स्याद्वाद ये तीन सूत्र भगवान महावीर के जीवन-दर्शन की विशिष्टतम उपलब्धि हैं। भगवान महावीर का, आत्मागत साम्यवाद, आर्थिक समाजवाद, उदात्तआत्मवाद, आत्मिक जनतन्त्रवाद, मानव प्रज्ञा की ये ही महत्तम उपलब्धियाँ हैं।

सृष्टि से आत्मतत्त्व की ओर उन्मुख भगवान महावीर के विचार, विराट् से सूक्ष्म की ओर गतिशील हैं, किन्तु श्रावक-श्रमणाचार द्वारा मोक्ष प्राप्ति करना उनका अन्तिम लक्ष्य रहा है। साथ ही मानवता के उद्धार के लिए अनेक पवित्र उदात्त विचार, संकल्प तथा कर्म-विधानों की त्रिवेणी का संगम है। भगवान महावीर के विचारों का प्रमुख सूत्र 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' है। इस सूत्र के सम्यक् बोध से 'जन' जैन बनता है। जैन बनकर मनुष्य श्रावक, साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त और सिद्ध की अवस्था को प्राप्त कर मुक्त परमात्मा के रूप में ऊर्ध्वगति-सिद्धशिला पर अपने को स्थिर रखकर, अनन्त सुख, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, इन अनन्त

चतुष्टय का अधिकारी हो जाता है। अतः भगवान महावीर का जीवन-दर्शन आत्मोद्धारक और लोकोद्धारक है।

चरित्र-चित्रण-सौन्दर्य

आलोच्य महाकाव्यों के चरित्रनायक भगवान महावीर ऐतिहासिक चरित्र होने के कारण भारतीय लोक-मानस में उनके चरित्र के सम्बन्ध में एक विशिष्ट बद्धमूल धारणा प्रचलित रही है। वे जैनधर्म की तीर्थंकर परम्परा के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर हैं। जैनधर्म के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में उनके द्वारा प्रस्थापित जीवन मूल्यादर्शों अर्थात् अहिंसा, अनेकान्त, स्याद्वाद समस्त प्राणिमात्र की आत्मा की समानता, मनुष्य मात्र की महत्ता की स्थापना, उनकी आत्मवादी जीवन दृष्टि में हर आत्मा अपने पुरुषार्थ के बल पर परमात्मा के पद को प्राप्त कर सकती है अर्थात् जीवन की स्वावलम्बी दृष्टि आदि उपदेशों को लेकर उनके अनुयायियों में सर्वसम्मति तो है, लेकिन उनकी जीवनी विषयक विविध प्रसंगों और घटनाओं को लेकर मतमतान्तर होने के कारण उनके अनुयायियों ने भगवान महावीर के चरित्र को साम्प्रदायिक चरित्र बनाया है। परिणामस्वरूप तद्युगीन विविध जैनेतर सम्प्रदायों में भी भगवान महावीर की चरित्र विषयक अनेक मिथ्या धारणाएँ प्रचलित रही हैं। अतः भगवान महावीर के चरित्र का विश्लेषण ऐतिहासिक एवं पौराणिक विकास क्रम के परिप्रेक्ष्य में करने की आज नितान्त आवश्यकता रही है।

आलोच्य महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण में आधुनिक कवियों ने मनोवैज्ञानिक, बुद्धिवादी एवं मानवतावादी दृष्टियों को विशेष महत्त्व दिया है। वस्तुतः इन्हीं दृष्टियों से महावीर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का सही मूल्यांकन हो सकेगा। आधुनिक हिन्दी कवियों ने भगवान महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को परम्परागत पौराणिक परम्परा का आधार लेते हुए भी वर्तमान युग जीवन के सन्दर्भ में उनकी जीवनी को प्रस्तुत किया है।

आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने महावीर के चरित्र-चित्रण में उनके चरित्र की महत्ता को स्थापित किया है। चरित्र के क्रमिक विकास को दर्शाने के हेतु, कथानक को सुगठित बनाने के लिए, कालक्रमानुसार चरित्र की घटनाओं का चित्रण विवरण शैली में आधुनिक कवियों ने प्रस्तुत किया है। उन्होंने पात्र का चरित्र-चित्रण, कथानक, पृष्ठभूमि और देशकाल, वातावरण भी विवरण शैली में चित्रित किया है। चरित्रनायक की युगीन परिस्थितियों एवं उनके परिवेश के चित्रण द्वारा चरित्र की सम्पूर्णता का आभास व्यक्त करने में यह शैली विशेषरूप से उपयुक्त रही है। पात्र की आकृति, वेशभूषा, क्रिया-प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म चित्रण में भी इस शैली का प्रयोग सफलता से हुआ है। नाटकों के दृश्यों के समान मार्मिक प्रसंगों को चित्रित करके, उन्हें सम्बद्ध करने, मानसिक उथल-पुथल के कारण उत्पन्न चरित्र के सूक्ष्म आचरण

की अभिव्यक्ति देने एवं मानसिक भावों एवं विचारों के चित्रण के लिए इस विवरण शैली का प्रयोग प्रभावकारी ढंग से हुआ है।

आलोच्य महाकाव्यों में आत्मकथात्मक एवं संवाद शैली का भी प्रयोग चरित्रनायक के हृदय के ऊहापोह, भावान्दोलन एवं आत्मविश्लेषण के लिए हुआ है। चरित्रनायक के मनोविश्लेषण के लिए दृश्य शैली का भी यत्र-तत्र प्रसंगोचित प्रयोग हुआ है। इस शैली के द्वारा छोटे-छोटे दृश्यों के चित्रण द्वारा वातावरण और पृष्ठभूमि के साथ-साथ चरित्रनायक की रूपाकृति एवं कार्यों का सजीव चित्रण हुआ है। जिस प्रकार चित्रकार विराट दृश्य कोरी रेखाओं एवं रंगों के माध्यम से चित्र में प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार आलोच्य महाकाव्यों के कवियों ने शब्द-चित्रों के माध्यम से चरित्रनायक के महत्त्वपूर्ण कार्यों, निर्णयों एवं छोटे-छोटे जीवनखण्डों और घटनाओं की दृश्यपरक प्रस्तुति की है।

विविध मनोवैज्ञानिक शैलियों के प्रयोग के साथ-साथ एकालाप शैली का प्रयोग भी अन्तरंग चित्रण पद्धति में दिखाई देता है। भगवान महावीर स्वयं को ही सम्बोधित करते हुए अपनी विभिन्न मानसिक स्थितियों का स्वयं विश्लेषण करते हुए चित्रित किये गये हैं। इस प्रकार आधुनिक महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण कलात्मक ढंग से प्रस्तुत हुआ है।

'वर्द्धमान' में चरित्र-चित्रण

शिल्प-सौष्ठव एवं काव्यगत उत्कृष्टता की दृष्टि से 'वर्द्धमान' एक सफल महाकाव्य है। भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवन के समग्र चरित्र को पूर्व भवों से लेकर निर्वाण पर्यन्त तक सत्रह सर्गों में विभाजित किया है। महावीर के चरित्र की शिशु, किशोर, युवक, तपस्वी एवं उपदेशक की अवस्थाओं को चित्रित करते हुए कई घटनाओं, प्रसंगों की मौलिक उद्भावना की है। जैसे—अँगूठे के स्पर्श से मेरु-कम्पन, अहिमर्दन, मदमत्त हाथी नियन्त्रण, व्यन्तरों द्वारा किये गये विविध उपसर्ग, अनंग परीक्षा, चन्दना उद्धार आदि घटनाओं के विस्तृत वर्णन के द्वारा महावीर के चरित्र की कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। महावीर के अन्तःकरण की विविध मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपकरणों का जैसे नगर, नदी, पर्वत, षट्ऋतुओं के वर्णनों द्वारा चरित्र-चित्रण हुआ है।

अपनी कल्पना-शक्ति के प्रयोग द्वारा महावीर जैसे ऐतिहासिक चरित्र को प्राचीन पौराणिक आख्यानों और उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों का आधार लेते हुए भी चित्रित किया गया है। इस प्रकार के चित्रण का उद्देश्य युगीन सन्दर्भ में महावीर के चरित्र को प्रस्तुत करना रहा है। काव्य की भाषा आद्योपान्त प्रांजल और संस्कृतनिष्ठ रही है। अत्यधिक सामासिक पदावली के प्रयोग से चरित्र-चित्रण में दुरूहता आ गयी है। चरित्र-चित्रण की भाषा-शैली में ओज, माधुर्य आदि गुण, विविध अलंकारों का

सक्षम प्रयोग हुआ है। महाकवि अनूप की चरित्र-चित्रण शैली की व्यापकता और गम्भीरता उनके व्यक्तित्व के अनुकूल ही रही है।

भगवान महावीर का व्यक्तित्व मूलतः वैराग्यमूलक रहा है। अतः उनकी चरित्रगत विशेषताओं के अनुसार शान्त रस के परिपाक से महावीर के समस्त चरित्र का चित्रण हुआ है। शान्त रस उदात्त वृत्ति का प्रेरक और पोषक है। महावीर के चरित्र-चित्रण में शान्त रस अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है और गौण रूप में शृंगार, वीर आदि रसों की अभिव्यक्ति हुई है। 'निर्वेद' शान्त रस का स्थायी भाव है। 'आलम्बन' संसार की असारता और क्षणभंगुरता है। और 'उद्दीपन' श्रमणाचार के आदर्शों—संयम, तप-त्याग आदि हैं। महावीर के चरित्र की उदात्तता एवं विचारों की महानता की कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा पाठकों को शान्त रस की अनुभूति का आनन्द हो पाता है। इस तरह कवि अनूप ने महावीर के चरित्र का चित्रण बहिरंग एवं अन्तरंग रूप में करके उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्रासंगिकता को स्पष्ट किया है।

'तीर्थंकर भगवान महावीर' में चरित्र-चित्रण

कवि वीरेन्द्रप्रसाद जैन ने लोकरंजक भगवान महावीर के पावन चरित्र का 'सरल', आडम्बररहित, सरस भाषा-शैली में मनोग्राही चित्रण किया है। भगवान महावीर के चरित्र-चित्रण में बहिरंग पक्ष एवं अन्तरंग पक्ष इन दोनों में वस्तु-वर्णन एवं भाव-चित्रण का निर्वाह साहित्यिक भाषा में तथा सरल शैली में स्वाभाविक रूप में किया गया है। प्रबन्धकाव्य में वस्तु-वर्णन के लिए आठ सर्गों का विभाजन है। उनका नामकरण क्रमशः है—पूर्वाभास, जन्ममहोत्सव, शिशुवय, किशोरवय, तरुणाई, विराग, अभिनिष्क्रमण तथा तप, निर्वाण एवं वन्दना। उक्त प्रसंगों का पंचकल्याणक महोत्सवों के वर्णनों द्वारा चित्रण किया गया है। भगवान महावीर के चरित्र का दिगम्बर-परम्परासम्मत विविध घटनाओं एवं पौराणिक प्रसंगों के वर्णनों द्वारा चित्रण किया है। महावीर के चरित्र-वर्णन की शैलीगत सुन्दरता, ध्वन्यात्मकता, स्पष्टवादिता और प्रवाहपटुता आदि विशेषताएँ इस चरित्र-चित्रण शैली की रही हैं। सर्गों के शीर्षकों से ही भगवान महावीर के चरित्र के क्रमिक विकास का आभास मिल जाता है। कवि वीरेन्द्रप्रसाद जैन ने अपनी कुशाग्र कल्पना के द्वारा भगवान महावीर के परम्परागत चरित्र में आधुनिकता का भी बोध कराया है।

महाकाव्य के प्रारम्भिक सर्ग से लेकर आठवें सर्ग के अन्त तक भगवान महावीर की अन्तःसचेतना के प्रवाह की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, तद्युगीन परिवेश का अवलम्बन लिया है। भगवान महावीर के वैराग्यमूलक चरित्रगत विशेषता के अनुकूल ही शान्तरस के माध्यम से उनके चरित्र का चित्रण किया है। गौण रूप में करुण और वीर रस का भी परिपोष हुआ है। महाकाव्य के प्राचीन संस्कृत

परम्परागत लक्षणों का अनुसरण करते हुए कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन क्रम का निर्वाह किया है। कुल मिलाकर 1111 छन्दों में महावीर के चरित्र का चित्रण किया है। भगवान महावीर की साधना का तथा साधना के समय के विविध उपसर्गों तथा परीषहों पर विजय प्राप्त करने की घटनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। चन्दना उद्धार, दलित एवं शूद्रों को संघ में शामिल करा देना आदि प्रसंगों के चित्रणों द्वारा महावीर के चरित्र की मानवतावादी, नारी स्वतन्त्रतावादी, समतावादी, अहिंसावादी आदि आदर्शों की स्थापना करके ऐतिहासिक चरित्र पर आधुनिकता का पुट चढ़ाने में कवि को कुछ मात्रा में सफलता प्राप्त हुई है।

'परमज्योति महावीर' में चरित्र-चित्रण

भगवान महावीर के चरित्र की कथावस्तु वर्णन की दृष्टि से अन्य आलोच्य महाकाव्यों से इसमें पृथक् है। इस महाकाव्य में महावीर के चरित्र का चित्रण 42 चातुर्मासों के वर्णन तथा साधना-काल के विविध उपसर्गों एवं कष्ट सहन करने के विस्तृत वर्णनों द्वारा किया है। केवलज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् 30 साल तक जिन विविध स्थानों पर विहार किया उन विहार-स्थलों का भी प्राकृतिक वर्णन के द्वारा चित्रण किया है। कवि 'सुधेश' ने अपनी प्रबल कल्पना-शक्ति के द्वारा महावीर का चरित्र-चित्रण करते समय विविध प्रसंगों एवं घटनाओं की मौलिक उद्‌भावना करके उनके सम्पूर्ण चरित्र को प्रभावी ढंग से चित्रित किया है।

'परमज्योति महावीर' के चरित्र-चित्रण में परम्परागत पौराणिक आख्यानों एवं पंचकल्याणक महोत्सवों की वर्णन शैली का अवलम्बन लिया है। 'सुधेश' जी की भाषा-शैली गरिमापूर्ण है। चरित्र-चित्रण शैली को माधुर्य एवं प्रसादगुणसम्पन्न बनाये रखने के लिए सुबोध, सुकोमल और जनप्रचलित भाषा का आश्रय लिया है।

महावीर-चरित्र के प्रस्तुतीकरण में तैंतीस सर्गों में चरित्र के क्रमिक विकास को चित्रित किया है। चरित्रांकन में कुल 2519 छन्द हैं। आदि से अन्त तक केवल एक ही छन्द का प्रयोग किया है। महाकवि सुधेश ने चरित्र-चित्रण करते समय महावीर के जीवन और तत्सम्बन्धी घटनाओं के सम्यक् निर्वाह के साथ-साथ महावीर युगीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का समुचित निरूपण किया है।

सुधेश ने अपने महाकाव्य को करुण, भक्ति एवं शान्त रस प्रधान महाकाव्य कहा है। चित्रण शैली द्वारा निश्चित रूप में पाठकों को महावीर चरित्र के अनुशीलन से शान्तरस की रसानुभूति होती है। चरित्र-चित्रण द्वारा उनके व्यक्तित्व के सफल चित्रण के साथ उनके कृतित्व, उपदेश, आचार-संहिता, धर्म-दर्शन आदि जिनेन्द्र महावीर की दिव्यवाणी की मौलिकता को अक्षुण्ण रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। उससे भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं—मानवतावादी, समतावादी, अहिंसावादी,

अनेकान्तवादी की आधुनिकता के सन्दर्भ में सार्थकता को विशद किया है। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार रचना होते हुए भी चरित्र विश्लेषण की आधुनिक पद्धतियों से उनकी चरित्र की महत्ता प्रस्थापित की गयी है।

'वीरायन' में चरित्र-चित्रण

महाकवि रघुवीरशरण 'मित्र' ने भगवान महावीर के जीवन को समसामयिक सन्दर्भ में चित्रित करने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप चरित्र की कथावस्तु के वर्णन में वर्तमान कालीन भारत की समस्याओं, अभावों, कुरीतियों आदि के विस्तृत निरूपण तथा उनके उचित समाधान के उपायों का निर्देश भी भगवान महावीर के चरित्रादर्शों के अनुकूल किया है। महावीर के समग्र चरित्र को पन्द्रह सर्गों में चित्रित करते समय उनके चरित्र की विविध अवस्थाओं को काव्यात्मक, आलंकारिक पद्धति से शीर्षक दिये हैं। इन शीर्षकों से यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक, पौराणिक, महापुरुष के चारित्र का अध्ययन आधुनिक सन्दर्भ में किस प्रकार किया जा सकता है। अन्तिम सर्ग 'युगान्तर' में निर्वाणोपरान्त भगवान महावीर के अमर वचनों और सिद्धान्तों की जीवन एवं जगत् को देन तथा उनकी उपलब्धि और उपयोगिता का प्रभावकारी ढंग से चित्रण किया है। महाकाव्योचित गरिमापूर्ण भाषा-शैली का प्रयोग भी चरित्र-चित्रण में सफलतापूर्वक संयोजित है।

वस्तुतः कवि का उद्देश्य भगवान महावीर के जीवन-वृत्तान्तों का वर्णन करने की अपेक्षा उनकी वन्दना, अर्चना और अमरवाणी, आप्तवचनों के दीर्घकालीन प्रभाव-प्रसार का उद्देश्य ही प्रस्तुत महाकाव्य के सृजन का मूल आधार है। अतः प्रस्तुत महाकाव्य में काव्यगत सौन्दर्य की दृष्टि से चरित्र-चित्रण अधिक सफल हुआ है। बहुल छन्दात्मक इस काव्य में स्थान-स्थान पर स्वतन्त्र प्रगीतों का नियोजन करके महावीर की चरित्रगत विशेषताओं का प्रभावी चित्रण किया है।

भगवान महावीर की आन्तरिक भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृतिचित्रण का स्वतन्त्र रूप से आलम्बन तथा उद्दीपन सभी रूपों में मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण के अन्तरंग पक्ष की दृष्टि से प्रमुख रूप से शान्त-रस एवं गौण रूप से वीर, शृंगार तथा करुण आदि रसों की प्रसंगोचित निष्पत्ति करके भगवान महावीर के चरित्र का चित्रण सरस बना दिया है। महावीर के चरित्र की समस्त क्रिया व्यापारों और घटना-प्रवाहों की रसात्मक अनुभूति कराने में कवि की कल्पना-शक्ति चरित्र-चित्रण शैली में उपयुक्त रही है। समग्र रूप से महावीर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की विशेषताओं का मूल्यांकन करके वर्तमान परिवेश में उनकी प्रासंगिकता का भी चित्रण महत्वपूर्ण रहा है।

'वीरायन' महाकाव्य में ओज है, सुन्दर वर्णन है, करुणा है और ललकार भी है। इसमें मार्मिक और दार्शनिक भाव व्यक्त हुए हैं। भावों एवं विचारों के चित्रण में

पवित्रता का संचार होता है। छन्द-रचना में रघुवीरशरण 'मित्र' सिद्धहस्त हैं। भाषा भी परिमार्जित और प्रौढ़ है। प्रस्तुत महाकाव्य में राष्ट्र की ही नहीं, मानवता की वाणी मुखरित हुई है। इसमें जनमानस की भावनाओं को वाणी मिली है। जनसाधारण के स्वरों की झंकार इसमें सुनाई पड़ती है।

'तीर्थंकर महावीर' में चरित्र-चित्रण

महाकवि डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने भगवान महावीर के चरित्र के समस्त इतिवृत्त को आठ सर्गों में विभाजित करके, महावीर के लोकहितरत जीवन को प्रसाद गुण सम्पन्न शैली में चित्रित किया है। ऐतिहासिक तथ्यों का ध्यान रखकर ही अपनी कवि कल्पना के सामर्थ्य से काव्य और इतिहास को एकीकृत और परस्पर उपकारक रखने में अपूर्व सफलता पायी है। भगवान महावीर के चरित्र के वस्तु-वर्णन में ऐतिहासिक सत्य का, साम्प्रदायिक एवं पारम्परिक जैन मान्यताओं की अक्षुण्णता का पूरा ध्यान रखा है। चरित्र के विविध प्रसंगों के चित्रण में कोई भी प्रसंग या कल्पना इतिहास विसंगत नहीं है। महावीर के चरित्र विषयक पौराणिक आख्यानों को अनावश्यक विस्तार नहीं दिया है।

महावीर चरित्र की विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण विशेषताओं, धीर प्रशान्त, धीरोदात्त सन्मति भगवान महावीर के जीवन वृत्त को प्रसाद तथा माधुर्य युक्त गरिमापूर्ण भाषा-शैली में चित्रित किया है। महावीर चरित्र को सुबोध, एवं सुगम तथा सरस बनाने के लिए महाकवि ने दुरूह, क्लिष्ट, संस्कृत गर्भित शब्दावली का मोह परित्याग कर जनप्रचलित सरल खड़ी बोली हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है। परिणामस्वरूप भगवान महावीर का चरित्र-चित्रण सरल, ग्राह्य और प्रवाहशील चित्रित है। चरित्र-चित्रण शैली शब्दाडम्बर रहित है, इसीलिए महावीर चरित्र के कई प्रसंग इतने मर्मस्पर्शी बन गये हैं कि पाठकों को सहज रूप से आकर्षित करने में सफल हुए हैं। महावीर का जीवन मूलतः वैराग्यमूलक होने के कारण उनके चरित्र-चित्रण में शान्तरस की प्रमुखता का होना सहज है। ऐसे चरित्र-चित्रण में महाकाव्य के लालित्य का निर्वाह करने में कई कठिनाइयाँ आती हैं। डॉ. छैलबिहारी गुप्त ने उन समस्त कठिनाइयों को एक ओर करके भगवान महावीर के चरित्र को उसकी सम्पूर्ण गरिमा और पवित्रता के साथ महाकाव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

डॉ. गुप्त ने भगवान महावीर के जीवन-वृत्त को एक नये परिवेश में परखकर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस तरह महाकवि डॉ. गुप्त ने भगवान महावीर के चरित्र को उनके जन्म से लेकर परिनिर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक जीवन यात्रा को पुराण और इतिहास परम्परा के आलोक में अपनी बलवती कल्पना एवं प्रखर प्रतिभा के द्वारा सरस चित्रण शैली में चित्रित करने का सफल प्रयास किया है।

'श्रमण भगवान महावीर-चरित्र' में चरित्र-चित्रण

कवि योधेयजी ने भगवान महावीर जीवन को छवि को पर्याप्त स्पष्टता से प्रौढ़ एवं परिपक्व चित्रण शैली में चित्रित किया है। चरित्र नायक की महानता की अभिव्यक्ति के लिए उनके चरित्र की विविध अवस्थाओं का सरस वर्णन नौ सोपानों में विभाजित करके समग्र जीवन वृत्त को प्रस्तुत किया है। गर्भावतरण से लेकर निर्वाण तक के वस्तुवर्णन में उनके चरित्र को तीर्थंकरों के परम्परागत पंचकल्याण महोत्सवों की वर्णन शैली द्वारा चित्रित किया है। चरित्र-चित्रण करते समय श्वेताम्बर मान्यताओं के अनुसार भगवान महावीर के चरित्र को साकार किया है।

गर्भान्तरण का प्रसंग, 16 स्वप्नों की बजाय 14 स्वप्नों का दृष्टान्त, विवाह-प्रणय तथा सन्तान होने का प्रसंग, साधना कालीन उपसर्गों, परीषहों आदि घटनाओं का चित्रण श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुकूल चित्रित करने की वृत्ति कवि की रही है। परम्परागत घटनाओं के चित्रण में कहीं-कहीं अपनी कल्पनाशक्ति से मौलिक प्रसंगों का चित्रण करके चरित्र को आकर्षक एवं सरस बनाने का प्रयास किया है।

चरित्र-चित्रण के बहिरंग एवं अन्तरंग पक्ष के चित्रण में बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग चित्रण को कवि ने अधिक महत्त्व दिया है। योधेयजी ने महावीर के चरित्र-चित्रण में उनकी चरित्रगत विशेषताओं के चित्रण पर अधिक बल दिया है। भाषा-शैली प्रभावी एवं सहज बोधगम्य है। भगवान महावीर के चरित्र को अपनी सरस, सुललित, संगीतात्मक शब्दावली में प्रस्तुत करके जनभाषा में जनसाधारण तक चरित्र ग्राह्य होने के लिए जनमहाकाव्यात्मक रूप में प्रस्तुत गेय कलाकृति का सृजन किया है। सरल, सुबोध, धारा-प्रवाही भाषा, प्रभावशालिनी-ओजस्विनी शैली, भावानुकूल शब्दविन्यास और माधुर्य आदि विशेषताएँ उनकी भाषा-शैली की रही हैं। छन्द, अलंकार आदि शिल्पगत विशेषताओं की ओर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया है। महाकाव्य में प्रसंगोचित प्रकृति-चित्रण, राजवंश का वर्णन किया है। प्रमुखतः उनके चरित्र-चित्रण में चरित्रनायक के चरित्र का शील, सौन्दर्य एवं अलौकिक वैभव, उनके महान् जीवनादर्शों, जीवनमूल्यों का प्रचार-प्रसार करना रहा है। रसात्मकता की दृष्टि से प्रमुखतः शान्तरस एवं गौणरूप में अन्य रसों का परिपोष चरित्र-चित्रण के द्वारा हुआ है। योधेयजी के द्वारा चित्रित भगवान महावीर का चरित्र बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकशिक्षण एवं लोकरंजन की दृष्टि से सफल लोकमहाकाव्य है।

तात्पर्य, आधुनिक महाकाव्यों में इतिहास एवं कल्पना तथा पुराण, इतिहास और कवि-कल्पना के मणिकांचन योग से महावीर के चरित्र का सृजन हुआ है। छन्द, सर्ग, शिल्प एवं स्थूल शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को पुराण महाकाव्यात्मक रूप प्रदान किया है।

महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र से तात्पर्य यह है कि आधुनिक

महाकाव्यों में महावीर के पात्र को महाकाव्य का नायक के रूप में किस प्रकार चित्रित किया गया है। प्रत्येक युग की समस्याओं, प्रवृत्तियों, आदर्शों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव उस युग के साहित्य पर अवश्य पड़ता है।

महावीर चरित्र सम्बन्धी आधुनिक हिन्दी महाकाव्य भी इस प्रभाव से नहीं बच पाये। इन महाकाव्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महावीर के चरित्र-चित्रण में आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप में कहीं-कहीं सूक्ष्म और कहीं-कहीं स्थूल परिवर्तन आ गये हैं। जैसे वर्द्धमान के शिशुवय एवं किशोरवय के चित्रण में कवियों ने अपनी कल्पनाओं से युगीन मान्यताओं-धारणाओं का आधार लेकर विविध प्रसंगों की उद्भावना की है। चन्दना के उद्धार के प्रसंग-चित्रण से नारी-मुक्ति विषयक आधुनिक धारणा स्पष्ट होती है। वर्तमान सन्दर्भ में वर्ण, जातिभेद, ऊँच-नीच का भेदभाव इतना क्षीण होता जा रहा है, उपेक्षितों, दलितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, उनके प्रति समताभाव की प्रवृत्ति आज के युग की आधुनिकता है। कवियों ने इस आधुनिकता की दृष्टि से महावीर के चरित्र का चित्रण करते समय नये-नये प्रसंगों के निर्माण द्वारा महावीर के चरित्र-चित्रण में आधुनिकता का समावेश किया है। पौराणिक और युगीन आदर्शों के समन्वय से आधुनिक कवि ऐतिहासिक चरित्रों में परिवर्तन करते हैं। चरित्र को देवता से नर, नर से नारायण के रूप में चित्रित करते हैं। अतः कवि-कल्पना साहित्य की रीढ़ है।

ऐतिहासिक चरित्र के स्वरूप-निर्धारण में आधुनिक कवि अपनी प्रतिभा से नव-नवोन्मेषशालिनी कल्पना का योगदान करते हैं। कल्पना के इस स्पर्श द्वारा ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र अपने पारम्परिक स्वरूप से निरस्त होकर नये स्वरूप में, युगीन परिवेश में आधुनिक रूप धारण करते हैं। आलोच्य महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र में आधुनिकता को चित्रित किया गया है।

भगवान महावीर के चरित्र में कवियों ने लोकमंगल की भावना की कल्पना की है। आत्मबोध-चिरन्तन सत्य की खोज के लिए राजवैभव त्यागकर श्रमण साधना में बारह वर्ष मौन रहकर मग्न रहे। साधना से उनका व्यक्तित्व परम उज्ज्वल बना। वे अहिंसावादी थे। उपद्रव करनेवालों के प्रति भी उनके मन में क्षमा भावना थी। उन्होंने अहिंसा का पालन अपनी साधना में किया। वे जातिवाद के विरोधी थे, ऊँच-नीच के भेदभाव को नहीं मानते थे। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया। महावीर नारीदासता के विरोधी थे। वे शोषणरहित, वर्गविहीन, समतावादी, जनतान्त्रिक समाज-व्यवस्था के समर्थक रहे। भगवान महावीर की चरित्रगत इन विशेषताओं को विविध प्रसंगों की उद्भावना करके आधुनिक कवियों ने चित्रित किया है।

भगवान महावीर के चरित्र में देवत्व की कल्पना करके कवियों ने अलौकिक दृष्टान्तों की योजना की है। व्यन्तर देवों द्वारा मायावी सर्प का रूप धारण करना,

मदमस्त हाथी, श्मशान में रुद्रों द्वारा उपसर्ग आदि सभी दृष्टान्त उनकी अलौकिकता को चित्रित करने के लिए आयोजित हैं। भगवान महावीर को महाकाव्य के नायक के रूप में प्रस्तुत करते हुए महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार महान् नायक के जितने सर्वोत्तम आदर्श हैं उन सभी आदर्शों की स्थापना करके उन्हें विविध घटनाओं द्वारा कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष

ऐतिहासिक चरित्र के आकलन के लिए उनके जीवन की बाह्य घटनाओं के साथ-साथ उनकी अन्तरंग मानसिकता का अन्तर्दर्शन अनिवार्य है। भगवान महावीर के विचारों को समझे बिना उनके चरित्र का अन्तरंग चित्रण सफलता से हो नहीं सकेगा। विचार और व्यवहार चरित्र के अन्तरंग और बहिरंग पक्ष हैं। भौतिक जीवन के उतार-चढ़ाव की अपेक्षा उनकी अन्तःसाधना में, आत्मान्वेषी प्रज्ञा की ऊर्ध्वगामी गति में, अन्तर्यात्रा में उनके अन्तरंग का सूक्ष्म चरित्र अधिक स्पष्ट और प्रभविष्णु है। अतः भगवान महावीर के चरित्र का अन्तरंग चित्रण निम्न प्रणालियों के माध्यम से करने का प्रयास किया है—(1) स्वप्नविश्लेषण, (2) अन्तःप्रेरणाओं का अनुस्मरण, (3) विचारदर्शन।

माता त्रिशला के स्वप्नों का अन्वयार्थ स्पष्ट करके इस तथ्य का विवेचन किया है कि भगवान महावीर के चरित्र की कतिपय अन्तरंग विशेषताओं का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। गर्भस्थ जीव की अलौकिकता का, उसके दिव्यशक्ति सम्पन्न होने का, उनके प्रखर तेज सौन्दर्य का, उनकी लोक कल्याणकारिता का तथा उनका केवली अर्हत्‌सिद्ध होने के पूर्वसंकेत भी मिलते हैं। प्रभु वर्द्धमान को श्रमणावस्था में आये हुए दस स्वप्नों का सूचक अर्थ भी शीघ्र ही उनके वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी, लोककल्याणकारी व्यक्तित्व के रूप को स्पष्ट करता है।

अन्तःप्रेरणाओं के अनुस्मरण में जैन साधना में प्रचलित बारह अनुप्रेक्षाओं के विवेचन के द्वारा भगवान महावीर की वैराग्यमूलक मनोभूमिका को विशद किया है। अपने पूर्वसंचित पुण्यातिशयों के कारण वे जन्मजात योगी रहे। उनकी वैराग्य भावना किस प्रकार दृढ़तर, दृढ़तम होती रही, परिणामस्वरूप वे समस्त राजवैभव का त्याग करके ब्रह्मचर्यपूर्वक मुनिदीक्षा ग्रहण करते हैं। यह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन गृहस्थ और श्रमण के बीच का सेतु है। निष्कर्ष के रूप में यह बोध होता है कि प्रत्येक आत्मा का एकाकीपन शरीर की अनित्यता, कर्मबन्ध और भवचक्र की अनन्त यातनाओं के बोध के बिना बारह अनुप्रेक्षाओं का, भगवान महावीर की अन्तःप्रेरणाओं का वह मर्म नहीं समझ सकता है।

आत्मस्वरूप के दस लक्षणों का अनुचिन्तन ही साधक को साधना के पथ पर स्थिर रखता है। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। आत्मारूपी वस्तु का मूलस्वभाव क्षमा,

नम्रता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन तथा ब्रह्मचर्य स्वरूप है। योग, ध्यान, तपस्या आदि द्वारा इन गुणों का आविष्कार भगवान महावीर की चरित्रगत विशेषताओं में दिखाई देता है।

आलोच्य महाकाव्यों के चरित्र नायक भगवान महावीर हैं। महावीर ऐतिहासिक पात्र हैं। फिर भी युग-युग में उनके चरित्र के स्वरूप में अलौकिकता, दिव्यता, अतिशयता के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता के, पौराणिकता के रंग कवियों की प्रबल कल्पनाओं द्वारा चढ़ाये गये। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी से होकर आधुनिक आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं के साहित्य में आज तक अविरत रूप में भगवान महावीर पर चरितकाव्य प्रकाशित होते रहे हैं। आधुनिक युग के सन्दर्भ में आधुनिक हिन्दी के कवियों ने अपने महाकाव्यों में भगवान महावीर के चरित्र को समग्रता से महाकाव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया, लेकिन भगवान महावीर के चरित्र को संस्कृत, अपभ्रंश की परम्परा में प्राप्त चरित्र की पद्धति पर ही आधुनिक हिन्दी में उन्हें अवतरित किया। भगवान महावीर की शिक्षाओं का, उपदेशों का विवेचन आधुनिक युग के सन्दर्भ में कवियों ने किया है। इन कवियों का प्रमुख लक्ष्य भगवान महावीर की जीवनी को प्रस्तुत करने की अपेक्षा, उनके विचारों की प्रासंगिकता को प्रतिपादित करना रहा है। फिर भी चरित्र को पौराणिक शैली में प्रस्तुत करते समय वह चरित्र आकर्षक, रोचक एवं सर्वजनग्राह्य हो जाए, इसीलिए आधुनिक युग की मान्यताओं के अनुसार मनोवैज्ञानिक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, एकालाप, अनुस्मरण, अनुचिन्तनात्मक, अन्तःप्रेरणाओं के एवं जीवन-दर्शन के चित्रण द्वारा भगवान महावीर के चरित्र को महाकाव्यात्मक कलाकृति में प्रस्तुत किया है।

भगवान महावीर का चरित्र जन्मजात योगी के रूप में होने के कारण योगी से महायोगी, महायोगी से परमयोगी तक की उनकी आध्यात्मिक साधना का बुद्धिग्राह्य वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करने में आधुनिक कवियों को सफलता मिली है। शान्तरस प्रधान रस होने के कारण आलोच्य महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र के अनुशीलन से सात्त्विक भाव जाग्रत होकर अलौकिक आनन्द की, शान्तरस की रसानुभूति हमें प्राप्त होती है। इसी दृष्टि से चरित्र-चित्रण में सौन्दर्य की अनुभूति अभिव्यंजित होती है।

चतुर्थ अध्याय

भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में वर्णित भगवान महावीर के चरित्र के बहिरंग एवं अन्तरंग चित्रण का अनुशीलन करने पर हमें उनके चरित्र की जो उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं उनके आलोक में भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता एवं उनके ऐतिहासिक योगदान को निम्नरूप में रेखांकित किया जाता है। प्रासंगिकता के विवेचन में यह प्रतिपादित करने का प्रयास रहा है कि भगवान महावीर के चरित्रादर्श आधुनिक सन्दर्भ में मानवमात्र के लिए किस प्रकार पथ-प्रदर्शक रहे हैं।

भगवान महावीर के जीवन के प्रथम तीस साल राजमहल में बीत जाने पर भी वे ब्रह्मचर्यपूर्वक सदाचार का जीवन व्यतीत करते हुए एक जन्मजात योगी के रूप में, आत्मस्वरूप के चिन्तन में मग्न रहे। समस्त राजवैभव को त्यागकर दिगम्बर मुनि बने। बारह वर्षीय साधनाकाल उनके अपने जीवन के लिए वीतराग, अरिहन्त केवली पद की उपलब्धि का आधार बना। तीर्थंकर भगवान बनने के बाद का तीस वर्ष का समय विश्वकल्याण के लिए समर्पित रहा।

इन तीस वर्षों में भगवान महावीर ने अनेक स्थलों पर विहार करके समस्त लोक में अपनी दिव्यध्वनि से नवजागरण किया। अपने विचारों से भगवान महावीर ने युगों से चली आती अनेक रूढ़ धारणाओं को तोड़ा और मानवता के लिए अभिशाप रूप अनेक परम्पराओं में परिवर्तन भी किया। उनके चरित्र में व्याप्त लोककल्याणकारी महानतम उपलब्धियों को मुख्य रूप से हम इस रूप में देख सकते हैं–

(1) धर्म एवं परलोक कल्याण के नाम पर होनेवाले अनुष्ठानों में पशुहिंसा, मानवबलि तथा अज्ञानमूलक क्रियाकाण्डों का, बाह्याडम्बरों का विरोध करके अहिंसा धर्म की ओर जनसाधारण को अभिमुख किया।

(2) स्त्री, शूद्र आदि शास्त्र पढ़ने और धर्म आचरण करने के अधिकारों से वंचित थे, उन्हें जिनधर्म में दीक्षा दी। सबको समान अधिकार एवं समान-स्तर प्रदान किया। वर्गवादी, वर्णवादी, आश्रमवादी, जातिवादी, सामन्तवादी विचारों के मूल्यों का निर्मूलन करके समतावादी, मानवतावादी,

जनतन्त्रवादी, परधर्म सहिष्णुतावादी एवं अहिंसा, अनेकान्त और स्याद्वादी जीवन मूल्यों को पुनः स्थापित किया।

(3) जन्म पर आधारित जाति, धन, सत्ता एवं बाह्य वैभव के आधार पर बँटे मानवीय मूल्यों को, सत्कर्म की श्रेष्ठता के आधार पर स्थापित किया। समता एवं मानवता के मूल्यों के आधार पर नवसमाज-व्यवस्था पर बल दिया।

(4) समाज के सम्पन्न एवं उच्चवर्गीय विद्वानों की मान्य संस्कृत भाषा के स्थान पर लोकभाषा और लोकजीवन की संस्कृति को महत्त्व देकर लोकभाषा प्राकृत में सरस लोकशैली में प्रवचन-उपदेश करके लोकसाधारण में आत्मविश्वास निर्माण किया। उन्हें ईश्वरवाद भाग्यवाद के जाल से निकालकर आत्मवादी बनाकर निर्भय एवं पुरुषार्थी बनाया। लोकमानव को सर्वोपरि प्रतिष्ठा प्रदान की। सही अर्थों में वे अपने युग के क्रान्तिकारी लोकनायक थे।

(5) भगवान महावीर ने श्रावकों (गृहस्थों) एवं श्रमणों को परमात्मा पद की प्राप्ति का मार्ग, "सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" के रूप में प्रतिपादित किया। साधना मार्ग में संयम, तप, ध्यान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, व्रत-उपवास की आचार-संहिता का प्रतिपादन किया। साथ ही लोककल्याण के लिए सतत प्रयत्न करते रहने का भी उपदेश दिया।

(6) भगवान महावीर ने 'चतुःसंघ' तीर्थ की स्थापना की। श्रावक-श्राविका के लिए परमात्म-साधना के लिए आचार-संहिता का पालन यथाशक्ति अंशतः (अणुव्रत) करने का विधान किया, तो मुनिआर्यिका के लिए आचार-संहिता का कठोर एवं परिपूर्ण पालन करने के लिए कहा। सभी वर्ग-वर्णस्तर के स्त्री-पुरुष उनके संघ में शामिल हो सकते थे।

(7) भगवान महावीर का चतुःसंघ धर्म, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संयम, त्याग, समता, तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि की श्रेष्ठता के आधार पर स्थित था।

(8) भगवान महावीर ने विचारशुद्धि के लिए अनेकान्तवादी विचारशैली का अनूठा दर्शन दिया, जिससे जीवन के समस्त विवादों में सुसंवाद स्थापित हो सके।

(9) आचारशुद्धि के लिए अहिंसा दर्शन को प्रतिपादित किया, जिससे समस्त प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, दया, करुणा, समता, सहअस्तित्व, सहिष्णुता आदि भाव निर्माण होकर मानवतावादी, सर्वोदयवादी जीवनदृष्टि हो सकेगी।

(10) निर्दोषवचन की सिद्धि के लिए स्याद्वाद दर्शन की देन विश्व को दी,

जिससे जगत् के समस्त पदार्थों का स्वरूप ज्ञान सप्तभंगी शैली में पूर्णसत्य स्वरूप में प्राप्त हो सके।

इस तरह समस्त मनुष्य मात्र में सही आत्मविश्वास निर्माण करके, भगवान महावीर ने सम्यग्ज्ञान से नैतिकतापूर्ण सदाचार का आचरण करने की प्रेरणा निर्माण कर प्रत्यक्षतः आत्मकल्याण और परोक्षतः लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। अतः उनके चरित्र की प्रासंगिकता त्रिकालवर्ती है।

भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता

आधुनिक हिन्दी के महावीर चरितमहाकाव्यों में भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता निम्नरूप में चित्रित की गयी है।

महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता को चित्रित करते हुए कवि रघुवीरशरण कहते हैं—

"प्रभु महावीर की वाणी से, कविताओं को मिलता प्रकाश।
स्वाधीन देश के फूलों में, तीर्थंकर का खिलता प्रकाश ॥
'गाँधी जी' के सिद्धान्तों में, प्रभु महावीर की वाणी थी।
जन-जन के हित के लिए मित्र, जिन की वाणी कल्याणी थी ॥"
(वीरायन, पृ. 349)

अर्थात् भगवान महावीर के विचार-दर्शन का क्रियात्मक रूप महात्मा गाँधी जी की चरित्रगत विशेषताओं में हमें प्राप्त होता है। भगवान महावीर के अहिंसा अनेकान्त एवं सत्य आदि का व्यापक एवं प्रभावकारी प्रयोग बीसवीं शताब्दी में महात्मा गाँधी ने प्रत्यक्ष आचरण के द्वारा विश्व के सामने प्रस्तुत किया। इससे स्पष्ट होता है जिनेन्द्र भगवान महावीर की वाणी आधुनिक युग के परिवेश में आत्महितकारी एवं लोककल्याणकारी सिद्ध हो सकती है।

तथा—

"युग बदला बदल गयी दुनिया, झूठे ईमान नहीं बदले।
प्रभु महावीर के भारत में, गाँधी जी सच्ची राह चले ॥
गाँधी जी की वाणी गूँजी, या महावीर स्वामी बोले।
जो सारे बन्धन तोड़ गये, वे बोल बुझाते हैं शोले ॥" (वही, पृ. 358)

महात्मा गाँधी ने भगवान महावीर के जीवन-दर्शन को, अपने वैयक्तिक जीवन-चारित्र में आत्मविकास के लिए अपनाया, जिससे वे आत्मा से महात्मा बन गये तथा महावीर के विचारों के सामाजिक तत्त्वों का आधार लेते हुए भारत देश को पराधीन से स्वाधीन बनाया। महात्मा गाँधी चाहते थे कि भारत देश में जीवन के समस्त क्षेत्रों में अहिंसा के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक

व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो। साम्यवादी, जनतान्त्रिक, सर्वधर्मसमभावी, शोषणरहित, सह-अस्तित्व पर आधारित अहिंसात्मक नयी समाज-व्यवस्था की स्थापना भगवान महावीर के आदर्शों को अपनाने से ही हो सकती है। यह दृढ़ विश्वास महात्मा गाँधी ने अपने चरित्र द्वारा भारतवासियों को दिलाया था। कवि का स्वर इस प्रकार है–

"दुर्गा बन शक्ति अहिंसा ने, योद्धाओं में भर दिया रक्त।
यह शक्ति अहिंसा है जिसने, वीरों के हाथों लिया तख्त ॥"

(वही, पृ. 359)

अहिंसा धर्म का पालन, वीर आत्मशक्ति सम्पन्न, दृढ़ चरित्रवाले ही कर सकते हैं। इस शस्त्र को चलाने की क्षमता कायरों में कदापि नहीं आ सकती। अहिंसा के पुजारी ही यह क्षमता रखते हैं। भगवान महावीर का जीवन सार्वजनीन लोकोपकारी है।

चरित्र की प्रासंगिकता विषयक अभिमत

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में विवेचन करते हुए लिखते हैं–

"इस देश के विसंगतिबहुल समाज को ठीक रास्ते पर ले आने के लिए, जिन महात्माओं ने गहराई में देखने का प्रयास किया, उन्होंने वाणी द्वारा कुछ भी कहने के पहले अपना चरित्र शुद्ध रखा है।...इस देश के नेतृत्व का अधिकारी एकमात्र वही हो सकता है, जिसमें चरित्र का महान् गुण हो।...भगवान महावीर इस देश के उन गिने-चुने महात्माओं में से हैं जिन्होंने सारे देश की मनीषा को नया मोड़ दिया है। उनका चरित्र, शील, तप और विवेकपूर्ण विचार सभी अभिनन्दनीय हैं।"[1]

अतः भगवान महावीर के चरित्र एवं चिन्तन की आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता है।

डॉ. एस. राधाकृष्णन लिखते हैं, "वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और सामाजिक न्याय दोनों मानव-कल्याण के लिए परमावश्यक है। हम एक के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर कहें या दूसरे को घटाकर कहें, यह सम्भव है। किन्तु जो आदमी अनेकान्तवाद, सप्तभंगीनय या स्याद्वाद के जैन विचार को मानता है, वह इस प्रकार के सांस्कृतिक कठमुल्लापन (संकीर्णता) को नहीं मानता। वह अपने और विरोधी के मतों में क्या सही है और क्या ग़लत है, इसका विवेक करने और उनमें उच्चतर समन्वय साधने के लिए सदा तत्पर रहता है। यही दृष्टि हमें अपनानी चाहिए।"[2]

---

1. सं. डॉ. नरेन्द्र भानावत : भगवान महावीर आधुनिक सन्दर्भ में, पृ. 26, 28।
2. वही, पृ. 15।

उक्त कथन से भगवान महावीर की अनेकान्तवादी जीवनदृष्टि की प्रासंगिकता पर प्रकाश पड़ता है।

महात्मा गाँधी जी के अपने विचार हैं, "इसी सिद्धान्त ने मुझे यह बतलाया है कि मुसलमान की जाँच मुस्लिम दृष्टिकोण से तथा ईसाई की परीक्षा ईसाई दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं। आज मैं विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूँ। मेरा अनेकान्तवाद सत्य और अहिंसा—इन युगल सिद्धान्तों का ही परिणाम है।"[1]

अतः यह आवश्यक है कि आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में अनेकान्तवाद को अपनाकर ही हम अपनी समस्त समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य विनोबा भावे का कथन है—"मैं कबूल करता हूँ कि गीता का गहरा असर मेरे चित्त पर नहीं है, उसका कारण यह है कि महावीर ने जो आज्ञा दी है वह बाबा को पूर्ण मान्य है। आज्ञा यह कि 'सत्यग्राही' बनो। आज जहाँ-जहाँ जो उठा सो 'सत्याग्रही' होता है। बाबा को भी व्यक्तिगत सत्याग्रही के नाते गाँधी जी ने पेश किया था, लेकिन बाबा जानता था वह कौन है, वह सत्याग्रही नहीं, सत्यग्राही है। हर मानव के पास सत्य का अंश होता है, इसीलिए मानव जन्म सार्थक होता है। तो सब धर्मों में, सब पन्थों में, सब मानवों में सत्य का जो अंश है, उसको ग्रहण करना चाहिए। हमको सत्यग्राही बनना चाहिए, यह जो शिक्षा है भगवान महावीर की, बाबा पर गीता के बाद उसी का असर है। गीता के बाद कहा, लेकिन जब देखता हूँ तो मुझे दोनों में फरक ही नहीं दीखता है।"[2]

विनोबा जी के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर के विचार-दर्शन से वे कितने प्रभावित थे।

काकासाहेब कालेलकर भगवान महावीर के तत्त्व-चिन्तन की प्रासंगिकता का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं, "आज जब संसार अनेक दृष्टियों से व्याकुल हो उठा है, तब इस व्यापक जीवन की मुख्य उलझन का हल ढूँढ़ना जरूरी हो गया है। इसके लिए महावीरों की आवश्यकता है, प्रयोग-वीरों की आवश्यकता है। ऐसे लोग अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाने के लिए महावीर के जीवन को समझेंगे और स्वयं ही ऊँचे उठने का प्रयत्न करेंगे। महावीर के स्मरण और चिन्तन से हम ऐसी प्रेरणा प्राप्त करें और अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का उद्धार करें।"[3]

भगवान महावीर के चरित्र की तपसाधना, ज्ञानसाधना, ध्यान और आत्मसंयम की भावना के अध्ययन से मनुष्य का व्यक्तित्व उभरता है और उनके व्रतों के पालन

---

1. डॉ. नरेन्द्र भानावत : भगवान महावीर आधुनिक सन्दर्भ में, पृ. 55
2. विनोबा भावे : जैनधर्म मेरी दृष्टि में, पृ. 40
3. काकासाहेब कालेलकर : महावीर का जीवन सन्देश युग के सन्दर्भ में, पृ. 66

से आत्मकल्याण के साथ-साथ संसार की अनेक समस्याओं का समाधान होता है। यही कारण है कि भगवान महावीर के चरित्र का वैयक्तिक तथा सार्वजनीन महत्त्व निर्विवाद है।

आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि लिखते हैं—"हमारा विश्वास है, भगवान महावीर ने जिन सिद्धान्तों का उपदेश दिया था, उनका उन्होंने स्वयं सफल प्रयोग किया था। वे वर्तमान सन्दर्भ में भी उतने ही उपयोगी हैं, जितने ढाई हजार वर्ष पूर्व थे। आज उनके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।"[1]

उक्त उद्धरण से भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता पर प्रकाश पड़ता है।

अटलबिहारी वाजपेयी का कथन है—"भगवान महावीर के बारे में इतना अवश्य कहूँगा कि जो बाह्य शत्रुओं से लड़ते हैं उसे वीर पुरुष कहते हैं और जो पंचेन्द्रियों को जीतकर आत्मविकास में विजय प्राप्त कर लेता है, उसे महावीर कहते हैं।"[2]

भगवान महावीर का चरित्र आज के युवकों को आत्मविकास के लिए इन्द्रियनिग्रही, संयमी रहने की प्रेरणा देता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है—"भगवान महावीर ने अपने डिण्डिम नाद से मोक्ष का ऐसा सन्देश हिन्द में विस्तृत किया है कि धर्म यह मात्र सामाजिक रूढ़ि नहीं, किन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष यह साम्प्रदायिक क्रियाकाण्ड के पालन से मिलता नहीं, किन्तु सत्य धर्म के स्वरूप का आश्रय लेने से प्राप्त होता है और धर्म में मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद स्थायी नहीं रह सकता। कहते हुए आश्चर्य उत्पन्न होता है कि इस शिक्षण ने समाज में जड़ जमाये बैठे हुए विचार रूपी विघ्नों को, जड़ मूल से उखाड़ फेंका और सारे देश को वशीभूत किया।"[3]

उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान सन्दर्भ में भी समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, बाह्याडम्बर और विषमता को भगवान महावीर के विचारों को अपनाकर ही दूर किया जा सकता है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का कथन है—"चौबीस तीर्थंकरों में महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। वे जैनधर्म को पुनः प्रकाश में लाये। अहिंसा धर्म व्यापक बना। आजकल यज्ञों में पशु-हिंसा नहीं होती। ब्राह्मण और हिन्दू धर्म में मांसभक्षण और मदिरापान बन्द हो गया है तो वह इस जैनधर्म का प्रभाव है।"[4]

आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में भी पशुहिंसा, मांसभक्षण एवं मदिरापान जैसे

---

1. जैन जगत्, महावीर जयन्ती विशेषांक, अप्रैल 91, पृ. 12।
2. वही, अप्रैल 91, पृ. 12।
3. वही, अप्रैल 91, पृ. 27।
4. वही, अप्रैल 91, पृ. 27।

हिंसक आचारों से मुक्ति तथा उदात्त विचारों में प्रवृत्ति, मनुष्य समाज को भगवान महावीर के विचारों से ही प्राप्त हो सकेगी। और यही भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता है।

चरित्र की प्रासंगिकता के विविध आयाम

भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता के सम्बन्ध में उपर्युक्त मनीषियों के अभिमतों का अनुशीलन करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि भगवान महावीर के चरित्र के दो पक्ष हैं—एक आचारपक्ष और दूसरा विचारपक्ष। भगवान महावीर के चरित्र का आचार एवं विचारपक्ष आज भी प्रासंगिक है और आगे भविष्य में भी रहेगा। मनुष्य जीवन में आचारों के आदर्श-जीवनमूल्यों पर दृढ़ विश्वास और जीवन जगत् के व्यवहारों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके मानवतावादी दृष्टि से संयमपूर्वक आचरण करके आचार की शुद्धता, पवित्रता, सरलता रखना आदि बातें जो भगवान महावीर ने बतायी हैं, वे आज भी उतनी ही व्यक्तिगत स्तर पर महत्त्वपूर्ण हैं जितनी आज से ढाई हज़ार साल पहले थीं।

वस्तुतः देखा जाए तो आधुनिक रचनाकारों को भी मानव चरित्र के विकास के लिए असंख्य प्रेरणास्रोत भगवान महावीर के चरित्र में मिल सकते हैं। ऐसे प्रेरणास्रोत, जिनसे जीवन को स्वस्थ, निर्मल, विवेकशील और आचारशील बनाया जा सकता है। तात्पर्य, भगवान महावीर का आत्मवादी चरित्र वर्तमान युग की युवापीढ़ी के चरित्र निर्माण के लिए आज भी प्रासंगिक, प्रेरक और उपादेय है। आज के वैज्ञानिक युग में भी देश के शिक्षित, पठित और बुद्धिजीवी वर्ग के लिए व्यक्तिगत आत्मकल्याण, आत्मोत्कर्ष की दृष्टि से भगवान महावीर का चरित्र और जीवन-दर्शन प्रासंगिक है। क्योंकि भगवान महावीर आत्मवादी इतिहाससिद्ध महापुरुष हैं। उनका चरित्र मनुष्य का चरित्र है। उनके विचार मनुष्य के विचार हैं। उनका दर्शन मनुष्य का दर्शन है। भगवान महावीर ने ईश्वरीय कर्तृत्व को नकारा है। आत्मवादी सत्ता को प्रस्थापित किया है। उन्होंने भाग्यवाद की जगह परिश्रम-पुरुषार्थ की स्थापना की है। मनुष्य की सर्वोपरि महत्ता को स्थापित किया है। वे मनुष्य को किसी बाह्य ईश्वरीय शक्ति के अधीन नहीं मानते। मनुष्य को अपने कल्याण एवं सर्वतोमुखी विकास के लिए किसी की कृपा की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के कर्तृत्व पर इतना जबर्दस्त विश्वास भगवान महावीर ने व्यक्त किया है कि सुख-दुख का कर्ता और भोक्ता मनुष्य को मानकर उसमें स्वावलम्बन एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा निर्माण करके नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बनने का विश्वास जनसाधारण में निर्माण किया है। भगवान महावीर ने आत्मविकास की वैज्ञानिक जीवनदृष्टि प्रदान की है। भगवान महावीर की जीवन की दृष्टि को आज के समकालीन परिवेश में, व्यक्ति और समाज की

उपलब्धियों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों से समन्वित करके बौद्धिक स्तर पर पुनर्मूल्यांकन करके उसे आचरण में लाना आज की प्रासंगिकता है।

भगवान महावीर के अनीश्वरवादी होने के कारण ईश्वरवादियों ने उन्हें नास्तिक कहा है। जिसे हम नास्तिक कहते हैं, उसे अपने पर, अपने किये पर पूरी आस्था होती है। वह अपने किये का दोष न भगवान, ईश्वर पर मढ़ता है, न भाग्य पर। अपने किये के लिए वह अपने को ही जिम्मेदार मानता है। भगवान महावीर के विचारों में यह जगत् सत्य है, अनादि है, प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है, एकसमान है। इस सृष्टि में जो कुछ होता है उसका एक कारण होता है। जीव, जगत् और परमात्म पद विषयक इस वैज्ञानिक चिन्तन में भाग्य और ईश्वर को बिलकुल स्थान नहीं है। इस प्रकार भगवान महावीर ने रूढ़ अर्थ में ईश्वर की कल्पना और उसके तथाकथित चमत्कारों से जनसाधारण को मुक्ति दिलाकर उनमें आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, पुरुषार्थ और निर्भयता के भाव निर्माण किये। उन्हें आत्मस्वरूप का सम्यक् बोध कराके सत्कार्यप्रवृत्त किया है। इसीलिए भगवान महावीर के चरित्र के आत्मवादी चिन्तन को समकालीन युग-परिवेश में प्रासंगिक माना जाता है। भगवान महावीर के समस्त विचार उनके आचरण में उतरे और उनका आचरण एक आदर्श जीवन पद्धति का पर्याय बन गया। जन्म, जीवन और जगत् इन तीनों की सार्थकता का कालजयी नाम है--महावीर। उनके सत्य के महापौरुष ने समूचे तात्कालिक असत्य और हिंसा को जीता और वे वर्द्धमान से महावीर हो गये। इस परिप्रेक्ष्य में महावीर किसी एक समुदाय विशेष की धरोहर नहीं हैं, वे मानवता के प्राणों के धरोहर हैं। यदि 'सत्य' सबका है, अहिंसा सबकी है, क्षमा सबकी है तो महावीर एक विशेष समुदाय के नहीं हो सकते और न ही वे जाति या सम्प्रदाय विशेष के हो सकते हैं। समूची मानवता को समर्पित महावीर सिर्फ़ समूची मानवता के ही हो सकते हैं।

आज मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि तथाकथित सभ्यता के विकास के साथ उसकी सहज, सरल एवं स्वाभाविक जीवनशैली उससे छिन गयी है। आज जीवन के हर क्षेत्र में कृत्रिमता और छद्मों की बहुलता है। आसक्ति, भोगलिप्सा, भय, क्रोध, स्वार्थ, कपट की दमित मूल प्रवृत्तियों के कारण मानवता आज भी अभिशापित है। आन्तरिक संघर्षों के कारण सामाजिक जीवन अशान्त और अस्त-व्यस्त है। वैज्ञानिक प्रगति से समाज के पुराने सनातन मूल्य ढह चुके हैं। आज हम मूल्य रिक्तता की स्थिति में जी रहे हैं। आज हम विनाश के कगार पर खड़े हैं।

ऐसी सन्त्रस्त एवं दुःखद स्थिति में भगवान महावीर का चरित्र एवं उनके जीवन-दर्शनों से ही वर्तमान समस्याओं के समाधान हमें प्राप्त हो सकते हैं। वर्तमान मानव-जीवन की समस्याएँ हैं—(1) मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, (2) सामाजिक एवं जातीय संघर्ष, (3) आर्थिक संघर्ष, (4) वैचारिक संघर्ष। वर्तमान युग संघर्षयुग है। भगवान महावीर की जीवनगाथा सभी संघर्षों के पार रही है।

वीतरागता

वर्तमान युग में जो मानसिक तनाव बढ़ रहा है उसके मूल में वैषम्य की भावना है। मनुष्य की तृष्णा, मूर्च्छा, आसक्ति, वासना, अहंकार ही तनावों की मूल जड़ है। जितनी आसक्ति उतना दुःख, जितनी अनासक्ति उतना सुख, सुख-दुःख मनोभाव वस्तुगत नहीं, आत्मगत है। अतः मानसिक विकारों पर जय प्राप्त करना वीतरागता है। वीतरागता ही महावीर की दृष्टि में जीवन का सबसे बड़ा आदर्श है। आदर्श की प्राप्ति मनुष्य को समता-भाव की साधना से हो पाती है।

मानवतावाद

जन्म के आधार पर मानवता के जातिगत विभाजन को एवं अहंकार को निन्द्य माना है। जाति या कुल का अहंकार मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। मनुष्य महान् होता है—अपने सदाचार से एवं संयम, तप, त्याग के पुरुषार्थ से। मनुष्य अपने अन्तःकरण में निहित ममत्व और विकार भाव के कारण संकुचित और साम्प्रदायिक बनता है। फलतः भाई-भतीजावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, संकुचित राष्ट्रीयवाद ही सामाजिक एवं जातीय संघर्ष के मूल कारण रहे हैं। अतः भगवान महावीर का सन्देश है कि विश्व की सम्पूर्ण मानव जाति एक है, उसे जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, स्त्री-पुरुषभेद, राष्ट्र, भाषा, संस्कृति के नाम पर विभाजित करना, मानवता के प्रति सबसे बड़ा अपराध है। सामाजिक समता एवं समान न्याय के लिए मानवता के कल्याण की, विश्वमानव धर्म की जो समानधर्मा दृष्टि महावीर ने बतायी उस पर चलना ही आज उनके चरित्र की प्रासंगिकता है।

अपरिग्रह

आज का युग अर्थप्रधान एवं यौनप्रधान है। मनुष्य का स्वार्थ एवं कामवासना आज के जीवन संघर्ष के मूलभूत कारण हैं। फलतः समाज धनी और निर्धन, शोषक और शोषित, शासक और शासित, दलित, पीड़ित ऐसे वर्गों में विभाजित होने से जीवन के समस्त क्षेत्रों में संघर्ष व्याप्त हैं। समाज में जो विषमताएँ व्याप्त हैं, उसके मूल में मनुष्य की परिग्रही एवं वासनावृत्ति है। अतः महावीर ने इसके लिए अपरिग्रह, परिग्रह परिमाण और भोग--उपभोग परिमाण के व्रत, अणुव्रत और महाव्रत इन दो स्तरों पर प्रस्तुत किये। 'जिओ और जीने दो' का सन्देश दिया है। पंच अणुव्रतों का पालन करने से समाज में व्याप्त आर्थिक और यौन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हमें प्राप्त हो सकते हैं। भगवान महावीर ने मनुष्य की संचय वृत्ति, एवं कामोपभोग की वृत्ति पर संयम रखने का उपदेश देकर मानव जाति के आर्थिक एवं नैतिक संघर्षों के निराकरण का मार्ग प्रशस्त किया है।

अनेकान्त

आज मानव-समाज में धार्मिक संघर्ष, जीवन मूल्यों में वैचारिक संघर्ष, राजनीतिक दलों के संघर्ष अपनी चरम सीमा पर हैं। भगवान महावीर के विचारों में इस संघर्ष के मूल में एकान्तवादी दुराग्रही वृत्ति है। दूसरे धर्म, सम्प्रदाय, मतवाद को पूर्णतः मिथ्या कहना यही सबसे बड़ा मिथ्यात्व (अपराध) है। भगवान महावीर की दृष्टि में सत्य का सूर्य सर्वत्र प्रकाशित होता है। मनुष्य की बुद्धि सीमित है, वह सत्य के किसी अंश को ग्रहण करता है और दूसरों के सत्यांश दर्शन को मिथ्या कहता है। अतः दूसरों के विचारों के, मतवादों के, सिद्धान्तों के सत्यांश का समादर करके वस्तुस्वरूप के पूर्ण सत्य को जानने में प्रयत्नशील रहना चाहिए। मनुष्य की एकान्तवादी, दुराग्रही वृत्ति, वस्तु सत्य को देख पाने में उसे असमर्थ बना देती है। महावीर की शिक्षा आग्रह की नहीं, अनाग्रह की है। सत्य का आग्रही नहीं, सत्य का ग्राही होना है। यही अनेकान्तवादी दृष्टि भगवान महावीर के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता एवं मौलिकता है। भगवान महावीर ने जिस अनेकान्तवाद को प्रतिपादित किया, उसका मूल उद्देश्य विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों, राष्ट्रों, भाषाओं, संस्कृतियों के मतवादों के बीच समन्वय और सद्भाव स्थापित करना है। अपने ही धर्मवाद से मुक्ति मानना यही धार्मिक सद्भाव में सबसे बड़ी बाधा है। सर्वधर्मसमभाव अनेकान्तवादी दृष्टि से ही आज के परिवेश में सम्भव है। अतः भगवान महावीर के चरित्र का सबसे बड़ा योगदान है कि उन्होंने हमें आग्रह मुक्त होकर सत्य देखने की दृष्टि प्रदान की है। तदनुसार सम्यक् आचरण करने की प्रेरणा अपने प्रयोगधर्मी चरित्र से प्रदान की है।

इस तरह वीतरागी, अहिंसावादी, मानवतावादी, समतावादी, सहिष्णुतावादी, स्वावलम्बी, पुरुषार्थी, अपरिग्रही-संयमी और अनेकान्तवादी-सत्यान्वेषी जीवनदृष्टियों को अपनाकर ही आज के सन्दर्भ में भी मनुष्य समस्त संघर्षों से मुक्ति पाकर वास्तविक सुखी एवं सम्पन्न हो सकता है। उनके चरित्रादर्शों को श्रद्धापूर्वक विवेक के साथ आचरण में क्रियान्वित करना ही आधुनिक सन्दर्भ में भगवान महावीर के चरित्र की प्रासंगिकता है।

उपसंहार

महाकाव्य जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होता है। इस दृष्टि से यदि महाकाव्य की महत्ता पर विचार किया जाए तो वह सर्वोपरि काव्यरूप सिद्ध होता है। वैसे तो शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों के कारण महाकाव्य में महार्घता का समाहार अनिवार्यतः होता है। महाकाव्य सम्बन्धी समस्त मान्यताओं का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महान् कथानक, महान् चरित्र, महान् सन्देश और महान् शैली—इन चार महान् तत्त्वों से संघटित होने पर ही कोई काव्य महाकाव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। महाकाव्य की काव्यात्मकता की श्रेष्ठता का मुख्य आधार है कि उसमें नवीन सामाजिक संरचना का उदात्त संकल्प, राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधि स्वरूप, नवजागरण का महान् उद्घोष, सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा, आध्यात्मिक निष्ठाओं का परिष्कार एवं कलात्मक उत्कर्ष होता है।

आज के वैज्ञानिक युग में आधुनिकता एवं नवीनता के प्रति विशेष आग्रह पाया जाता है। साथ ही पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति के प्रति विशिष्ट रुचि भी दिखाई देती है। भारतीय समाज का मानस मूलतः अध्यात्मप्रवण एवं संस्कृतिमूलक है। साहित्य के माध्यम से यदि नये युग की नयी विचारधारा से समाज में जागृति करनी हो तो पुराणों एवं इतिहास के सर्वश्रुत चरित्रों का आधार ग्रहण करना आवश्यक होता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों का आश्रय ग्रहण कर अपने वांछित कथ्य को हम स्पष्ट कर सकते हैं।

वर्तमान युग की ख़ास विशेषता है—ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की। आज के युग की माँग है कि ऐतिहासिक महावीर का चरित्र तर्कबुद्धिसम्मत और इतिहाससम्मत हो। महावीर चरित्र लिखने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अत्यधिक आवश्यकता है। भगवान महावीर के जीवनवृत्त सम्बन्धी अलौकिक और असंगत बातें चित्रित की गयी हैं। उन्हें आज की नयी चेतनाबुद्धि ग्राह्य नहीं मानती। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से एवं घटनाओं को तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसकर भगवान

महावीर के चरित्र का आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनुशीलन-अनुसन्धान करना युगीन आवश्यकता रही है।

भगवान महावीर युगीन व्यवस्था में तर्क और विज्ञान का आश्रय लेना चाहते थे। उन्होंने भावुकता से मोड़ को कभी उत्तेजित नहीं किया। वे वैज्ञानिक विचारों की स्वाभाविक परिणतियों के महापुरुष थे। वे अपने चरित्रादर्शों से व्यक्तियों में क्रान्ति का शंख फूँकते रहे। इस तरह उन्होंने क्रान्ति की एक ऐसी अन्तर्धारा को जन्म दिया, जो कभी समाप्त नहीं होगी। आज भी उनकी वह धारा उतनी ही जीवन्त और समीचीन है। वस्तुतः वह इतनी शाश्वत है कि किसी भी युगीन सन्दर्भ में काम आ सकती है। इसी अर्थ में वर्तमान परिवेश में भगवान महावीर के चरित्र के आचार एवं विचार पक्ष की प्रासंगिकता है।

महावीर की समकालीन समाज-व्यवस्था में धर्म का आचरण दम्भपूर्ण और लोभ-परक था। आडम्बर, प्रदर्शन और अहंकार का भाव धर्माचरण में था। अकारण यज्ञ-हिंसा, श्रमिक वर्ग का शोषण, स्त्रियों और शूद्रों पर अन्याय और अत्याचार, धर्म के पुरोहितों ने संगठित होकर अपनी सुविधा प्राप्ति के लिए किया था। यथास्थिति बनी रहे, इसीलिए धर्म के पुरोहितों ने जीवनमूल्यों की व्याख्या मनमाने ढंग से की, जिससे सम्पन्न वर्ग को श्रमिक, पीड़ित, शोषित दलित वर्ग से समस्त लाभ प्राप्त हो सकें।

भगवान महावीर के विचारों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था विरोध का स्वर गूँजता है। हिंसक, संग्रहशील, दाम्भिक, प्रलोभन और अन्धविश्वासग्रस्त व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के लिए भगवान महावीर ने समाज के दलित, पीड़ित, शोषित, उत्पीड़ित सर्वहारा (सर्वस्व लुटा हुआ) वर्ग के मनुष्य मात्र के हित के लिए आध्यात्मिक और हितकारी सामाजिक व्यवस्था का उद्घोष किया। यही उनके चरित्र का ऐतिहासिक योगदान रहा है।

भगवान महावीर स्वयं क्षत्रिय राजपुत्र थे। लेकिन अपनी आन्तरिक करुणा अर्थात् मानवता प्रेम के कारण उन्होंने आत्म-साधना को अपनाकर स्वयं को निर्ग्रन्थ दिगम्बर बनाया। क्योंकि वर्तमान व्यवस्था से बाहर रहकर ही उसमें आमूल परिवर्तन किया जा सकता है। तद् युगीन प्रचलित व्यवस्था के समस्त निरीश्वरवादी विद्रोही—(योगी, आगमानुयायी, व्रात्य) भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, कपिल, कणाद, नागार्जुन, सरहप्पा, गुरुनानक आदि ने इस देश में, पुरोहितों, सत्ताधीशों, उच्चवर्णियों और पूँजीपतियों तथा मठाधीशों के जनसाधारण के हित विरोधी रवैयों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया और आम आदमी की महत्ता को प्रस्थापित करके उन्हें अध्यात्म एवं लौकिक क्षेत्र में उनके कल्याण के मार्ग प्रशस्त किये। व्यवस्था विरोध के संघर्ष की यह यात्रा युग-युग से वर्तमान युग तक चलती रही है। समाज-व्यवस्था की रचना में कबीर, नानक, गाँधी जैसे क्रान्तिकारी महात्मा पुरुष प्रयत्नशील रहे हैं। बुद्ध और महावीर ने अपने युग में

धर्म-विषयक जीवन-मूल्यों की पुनर्व्याख्या की। उन्होंने 'सत्य', 'अहिंसा' 'समानता', 'सामाजिक न्याय' की समानान्तर और नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। किन्तु खेद की बात यह है कि जिन बुनियादी जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए भगवान महावीर ने कठोर साधना की, जिस वर्ण-वर्ग-स्त्री-पुरुष भेद रहित साम्यवादी समाज व्यवस्था के लिए उन्होंने तत्त्व-चिन्तन किया उसे उनके अनुयायियों और पुजारियों ने संकोर्णता में सीमित कर दिया। एक विराट व्यक्तित्व के चिन्तन पर संकीर्ण साम्प्रदायिकता का लिबास चढ़ाया गया। भगवान महावीर के चरित्र को समग्रता में ग्रहण न कर सकने के कारण उनका व्यक्तित्व खण्ड-खण्ड होकर बिखरा हुआ है। अतः उनके समग्र चरित्र का सम्यक् अनुशीलन करना आज की प्रासंगिकता है। अमानवीय विषम व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत क्रान्तिकारी महापुरुषों के नाम पर इस देश में सिर्फ सम्प्रदाय, दल और पन्थ चलते रहे हैं। उनके अनुयायियों ने इन समतावादी, मानवतावादी महामानवों के साथ अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए विश्वासघात किया है। वर्तमान सन्दर्भ में आज यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि व्यवस्था विरोधी, समतावादी, मानवतावादी महान् साधकों के जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में जो भ्रम फैलाये गये हैं और जो अन्धविश्वास रूढ़ हो गये हैं उन्हें वैज्ञानिक अनुशीलन से दूर किया जाए। भगवान महावीर की जीवनी एवं उनके जीवन-दर्शन विषयक परम्परागत पौराणिक, काल्पनिक, रूढ़िवादी धारणाओं के भीतर छिपी उनकी मानवतावादी, ऐतिहासिक, सामाजिक, आध्यात्मिक चेतनापरक जीवनमूल्यों के सत्य की खोज करना आज के सन्दर्भ में प्रासंगिकता है।

उपर्युक्त तथ्यों के अनुसन्धान के लिए पहली आवश्यक शर्त यह है कि भगवान महावीर के नाम और उनकी मूर्ति के आसपास अन्धविश्वास और प्रलोभन से जकड़े हुए रूढ़िवादी पुराणमतवादी लोगों से भगवान महावीर को मुक्त करना होगा। और उसके लिए प्रचलित धर्म-व्यवस्था के विरोध में संघर्ष की मनोभूमिका को अपनाना पड़ेगा। तभी भगवान महावीर के विचारों के अर्थों और मर्मों का यथार्थ आकलन सम्भव हो सकेगा। आध्यात्मिक और सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन की दीर्घ संघर्षमयी यात्रा में हमें भगवान महावीर के मानवतावादी विचारों से लाभ हो सकेगा। अतः उनकी आत्मा से परमात्मा बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसन्धान बौद्धिक स्तर पर करने की आवश्यकता ही आधुनिक सन्दर्भ में भगवान महावीर के चरित्र की उपादेयता है।

मूलाधार ग्रन्थ (आधुनिक हिन्दी महाकाव्य)

अ.क्र	लेखक	ग्रन्थ	प्रकाशक	संस्करण
(क)	शर्मा, अनूप	वर्द्धमान	भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस-4।	प्र. सं. 1951
(ख)	जैन, वीरेन्द्रप्रसाद	तीर्थंकर भगवान महावीर	श्री अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंज (एटा) उत्तरप्रदेश।	प्र. सं. 1959
(ग)	जैन, धन्यकुमार 'सुधेश'	परमज्योति महावीर	श्री फूलचन्द जवरचन्द गोधा, जैन ग्रन्थमाला, 8, सर हुक्मचन्द मार्ग, इन्दौर।	प्र. सं. 1961
(घ)	रघुवीरशरण 'मित्र'	वीरायन	भारतोदय प्रकाशन, 204-ए, वैस्ट एण्ड रोड, सदर, मेरठ।	प्र. सं. 1974
(ङ)	डॉ. गुप्त, छैलबिहारी	तीर्थंकर महावीर	श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, 48, सीतलामाता बाजार, इन्दौर, मध्यप्रदेश।	प्र. सं. 1976
(च)	यौधेय, अभयकुमार	श्रमण भगवान महावीर चरित्र	भगवान महावीर प्रकाशन संस्थान, बी/70, जैन नगर, मेरठ, उत्तर प्रदेश।	प्र. सं. 1976

सहायक ग्रन्थ सूची

सं. श्री. अमरमुनि	सचित्र तीर्थंकर चरित्र	पद्म प्रकाशन, नरेला मण्डी, दिल्ली।	प्र. सं. 1995
असग	वर्द्धमान चरितम्	श्री जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर।	प्र. सं. 1974
डॉ. उपाध्ये आ. ने.	महावीर युग और जीवन-दर्शन	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली।	प्र. सं. 1974
कालेलकर काकासाहेब	महावीर का जीवन सन्देश युग के सन्दर्भ में	राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर।	प्र. सं. 1982
डॉ. कुलकर्णी गो.रा.	पौराणिक काव्य : आधुनिक सन्दर्भ	विद्या विहार, आचार्य नगर, कानपुर।	प्र. संस्करण
कुसुमप्रज्ञा समणी	आचार्य तुलसी साहित्य : एक पर्यवेक्षण	जैन विश्व भारती लाडनूं, राजस्थान।	प्र. सं. 1991
कौसाम्बी धर्मानन्द	भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।	प्र. सं. 1993
डॉ. खण्डेलवाल, जयकिशन प्रसाद	ऐतिहासिक महापुरुष तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर	वीर-निर्वाण भारती, तीरगरान ट्रस्ट, मेरठ-2।	प्र. सं. 1973
डॉ. खण्डेलवाल, जयकिशन प्रसाद	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।	तेरहवाँ सं. 1990
खेतान, भगवतीप्रसाद	महावीर निर्वाण भूमि पावा : एक विमर्श	पार्श्वनाथ शोध पीठ, वाराणसी-5।	प्र. सं. 1992
डॉ. गिरि, कुमुद	जैन महापुराण : कलापरक अध्ययन	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई. टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी।	प्र. सं. 1995
गुप्त, देवीप्रसाद	हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त	अपोलो पब्लिकेशन, सवाई	प्र. सं. 1968

	और मूल्यांकन	मानसिंह हाई वे जयपुर 3।	
डॉ. गुप्त, देवीप्रसाद	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य	गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर, राज.।	प्र. सं. 1975
डॉ. गुप्त, रमेशचन्द्र	तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार	पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी।	प्र. सं. 1988
जिनसेन आचार्य	महापुराण	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।	प्र. सं. 1951
जैन, कामताप्रसाद	हिन्दी जैनसाहित्य का संक्षिप्त इतिहास	भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।	प्र. सं. 1947
जैन, पवनकुमार	जैन कला में प्रतीक	जैन साहित्य सदन, ललितपुर।	प्र. सं. 1988
डॉ. जैन, सागरमल	अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा	पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी।	प्र. सं. 1988
डॉ. जैन, जगदीशचन्द्र	प्राकृत साहित्य का इतिहास	पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी।	प्र. सं. 1961
ब्र. जैन, हरिलाल	जैन धर्म की कहानियाँ भाग : 9, तीर्थंकर भगवान महावीर	अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, महावीर चौक, खैरागढ़, मध्यप्रदेश।	प्र. सं. 1996
डॉ. जैन, हरीन्द्रभूषण	जैन अंगशास्त्र के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास	सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा-2।	प्र. सं. 1974
डॉ. जैन, नेमिचन्द्र	प्रणाम महावीर	हीरा भैया प्रकाशन, कनाडिया रोड, इन्दौर, मध्यप्रदेश।	प्र. सं. 1992
डॉ. जैन, नेमिचन्द्र	वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर	वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर।	तृ. सं. 1977

डॉ. जैन, सागरमल	ऋषिभाषित : एक अध्ययन	पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी	प्र. सं. 1988
डॉ. टण्डन, प्रेमनारायण	अनूप शर्मा कृतियाँ और कला	हिन्दी साहित्य भण्डार, अमीनाबाद, लखनऊ।	प्रथम संस्करण
डॉ. ठाकुर, देवेश	आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ	संकल्प प्रकाशन, मुम्बई।	द्वि. सं. 1992
डॉ. तिवारी, भगवानदास	भगवान महावीर जीवन और दर्शन	महावीर शिक्षण संस्था, जयकुमार नगर, बीजापुर रोड, सोलापुर (महाराष्ट्र)।	प्र. सं. 1992
तुलसी आचार्य	भगवान महावीर	भारत जैन महामण्डल, मुम्बई।	प्र. सं. 1974
डॉ. दिव्य गुणाश्री	हिन्दी के महावीर प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन	विचक्षण स्मृति प्रकाशन, अहमदाबाद।	प्र. सं. 1998
दिवाकर, सुमेरुचन्द्र	महाश्रमण महावीर	आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ग्रन्थमाला, स्तवनिधि (मैसूर)	प्र. सं. 1968
देशभूषणजी महाराज	भगवान महावीर और उनका तत्त्वदर्शन	श्री. पारसदास श्रीपाल जैन, मोटरवाले, श्यामाप्रसाद मुखर्जी मार्ग, दिल्ली-6	द्वि. सं. 1972
डॉ. पाठक, शोभनाथ	भगवान महावीर	पाठक प्रकाशन, श्यामला हिल्स, भोपाल।	संशोधित सं. 1989
डॉ. भास्कर, भागचन्द	जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास	नागपुर विद्यापीठ, नागपुर।	प्र. सं. 1977

सं. डॉ. मानावत, नरेन्द्र	भगवान महावीर आधुनिक सन्दर्भ में	श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, समताभवन, बीकानेर, राजस्थान।	प्र. सं. 1974
भावे, विनोबा	जैन धर्म मेरी दृष्टि में	भारत जैन महामण्डल, हार्निमन सर्किल फोर्ट, बम्बई।	प्र. सं. 1974
'महाप्रज्ञ' युवाचार्य	श्रमण महावीर	जैन विश्वभारती, लाडनूं।	तृ. सं. 1990
डॉ. मोरे, वसन्त केशव	हिन्दी साहित्य में वर्णित छत्रपति शिवाजी के चरित्र का मूल्यांकन	अप्रकाशित शोधप्रबन्ध	1971
यतिवृषभ आचार्य	तिलोयपण्णत्ति भाग 1	सं. आदिनाथ उपाध्ये, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर।	प्र. सं. 1943
रांग्रा, रणवीर	हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास	भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली।	प्र. सं. 1961
डॉ. वर्मा, जयनारायण	हिन्दी साहित्य का इतिहास	के. एल. पचौरी प्रकाशन, दिल्ली-51	प्र. सं. 1988
विद्यानन्द मुनि	तीर्थंकर वर्द्धमान	श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, सीतलामाता बाजार, इन्दौर मध्यप्रदेश।	द्वि. सं. 1975
डॉ. शर्मा, विश्वबन्धु	साठोत्तर हिन्दी महाकाव्यों में पात्र-कल्पना	मन्थन पब्लिकेशन्स, मॉडल टाउन, रोहतक, हरियाणा।	प्र. सं. 1985
शास्त्री, कैलाशचन्द्र	जैन साहित्य का इतिहास (प्रथम भाग)	श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, डुमराव कॉलोनी अस्सी,वाराणसी-5।	प्र. सं. 1975
डॉ. शास्त्री, नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (खण्ड 2)	श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद कार्यालय, वर्णीभवन, सागर (मध्यप्रदेश)।	प्र. सं. 1974

डॉ. शास्त्री, नेमिचन्द्र	प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध, संस्थान, वाराणसी।	प्र. सं. 1966
शास्त्री, पद्मचन्द्र	तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर	श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, सीतलामाता बाजार, इन्दौर, मध्यप्रदेश।	प्र. सं. 1974
शास्त्री, कैलाशचन्द्र	जैनधर्म	मन्त्री साहित्य विभाग, भा. दि. जैन संघ, चौरासी, मथुरा।	द्वि. सं. वी. नि. नि. सं. 2475
शास्त्री, कैलाशचन्द्र	समणसुत्तं	सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।	द्वि. सं. 1975
डॉ. शास्त्री, देवेन्द्रकुमार	तीर्थंकर महावीर	श्री वीर निर्वाण महोत्सव-समिति, नीमच (मन्दसौर), मध्यप्रदेश।	प्र. सं. 1975
डॉ. शास्त्री, नेमिचन्द्र	आदिपुराण में प्रतिपादित भारत	गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी-5।	प्र. सं. 1968
शास्त्री, कैलाशचन्द्र	जैन साहित्य का इतिहास, द्वितीय भाग	गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, प्रकाशन, वाराणसी-5।	प्र. सं. 1976
डॉ. सक्सेना, ललिताप्रसाद	हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्त्व (द्वितीय भाग)	निर्मल प्रकाशन संस्थान, बापूनगर, जयपुर-4।	प्र. सं. 1974
डॉ. सिंह, शम्भूनाथ	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	ओमप्रकाश बेरी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पिशाच मोचन, वाराणसी-1।	द्वि. सं. 1962
संघवी, सुखलाल	चार तीर्थंकर	पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी।	द्वि. सं. 1989
ज्ञानसागरजी महाराज	वीरोदय महाकाव्य	श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर, राजस्थान।	द्वि. सं. 1994

□□□